कुशीनगर जनपद की कला और पुरातत्व

ART AND ARCHEOLOGY OF KUSHINAGAR DISTRICT

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोधकर्ता
लक्ष्मण प्रसाद

पर्यवेक्षक
प्रो० जे०एन० पाल

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलहाबाद विश्वविद्यालय
इलहाबाद

2002

3774-10
6955
T-993
T-9938

प्रारम्भिक ऐतिहासिक सस्कृतियाँ इस क्षेत्र के सम्पूर्ण भू–भाग में विकसति हुई दिखायी देती है।

मेरे शोध क्षेत्र (कुशीनगर जनपद) का इतिहास एवं पुरातत्व बहुत अधिक प्राचीन नहीं दिखायी पडता । मध्य गंगा घाटी के अन्य क्षेत्रों की भाँति यहाँ पाषाण युगीन संस्कृतियॉ विकसित हुई नहीं दिखायी पड़ती है, जो बरबस हमें यह सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं कि इस जनपद में इन संस्कृतियों का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था फिर यह क्षेत्र और अधिक गहन सर्वेक्षण की अपेक्षा रखता है। यद्यपि इस क्षेत्र में पुरातात्विक सर्वेक्षण का कार्य 18वीं–19वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गया था और तब से लेकर आज तक व्यक्तिगत और संस्थागत दोनो तरह के पुरातात्विक कार्य होते रहे हैं, जिसमें मैनें एक नयी कड़ी जोड़ने का प्रयास किया है।

यद्यपि भगवान बुद्व और महावीर के परिनिर्वाण स्थल से सम्बंधित होने के कारण कुशीीनगर जनपद का इतिहास किसी से छिपा नही है। जहाँ तक पुरातात्विक इतिहास की बात है, तो इस दृष्टि से भी यह जनपद अछूता नहीं है। फिर भी जनपद मे अनेक ऐसे पुरास्थल उपेक्षित पड़े हैं जिनका उत्खनन तो क्या गहन सर्वेक्षण भी नही हुआ है। ऐसी स्थिति में उपेक्षित एवं अप्रकाशित पुरास्थलों की खोज, अभिलेखों, प्रतिमाओं तथा अन्य पुरा–सामाग्रियों का विवरण, प्रकाशन एवं उनके सापेक्षिक महत्व का प्रतिपादन अपरिहार्य हो गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ‘कुशीनगर जनपद की कला और पुरातत्व इन्हीं उद्देश्यों की अंशतः पूर्ति करता है।

मैंने न केवल नये पुरास्थलों को ही चिन्हित करने का प्रयास किया है, अपितु पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं द्वारा चिन्हित स्थलों को अपने नजरियें से भी देखने का प्रयास किया है कुशीनगर जनपद पर बहुत से शोध–पत्र एवं पत्रिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, लेकिन उनका समग्र संकलन एक साथ कहीं नहीं मिलता । जन–सामान्य एवं विद्वानों में यह बात अरसे से खटकती रही है, जिसका कुछ हद तक समाधान मैने अपने शोध प्रबन्ध के रूप में करने का प्रयास किया है।

जनपद में विकसित संस्कृतियों के विकास के स्वरूप का निर्धारण करना प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य है। छोटी नदियों, नालों, झीलों, तालाबों तथा बडी नदियों की उपत्यकाओं में फली–फूली संस्कृतियों के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्धारण और इस क्षेत्र की संस्कृतियों के सामाजिक और आर्थिक विकास को निर्धारित करने के उद्देश्य से भी इस शोध विषय का चयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 5 अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में कुशीनगर जनपद की भौगोलिक स्थिति, प्रशासनिक व्यवस्था, जनसंख्या, जल–निकास तंत्र, पशु जगत वनस्पति जगत, सड़क एवं रेलमार्ग और अवशिष्ट आदिम जातियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो पुरातात्विक अध्ययन क्षेत्र की पृष्टभूमि प्रस्तुत करता है। द्वितीय अध्याय में विभिन्न साहित्यिक, ऐतिहासिक पौराणिक और पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर इस क्षेत्र का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में जनपद में हुए पूर्ववर्ती पुरातात्विक उत्खननो एवं सर्वेक्षणों से प्राप्त पुरासामग्रियों का विशद वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। चतुर्थ अध्याय में शोधार्थी द्वारा जनपद में किये गये पुरातात्विक सर्वेक्षण से ज्ञात स्थलों एवं उनसे प्राप्त पुरासामग्रियों तथा कलाकृतियों आदि का यथेष्ट विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि कुछ स्थल ऐसे हैं जिनके विषय में पहले से कुछ सूचना थी, किन्तु शोधार्थी ने पुनः उनका सर्वेक्षण कर उनके विषय में उपलब्ध सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पाँचवें अध्याय में शोध प्रबन्ध का सार एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची संलग्न है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्रख्यात पुरातत्वविद् एवं कला–मनीषी परम आदरणीय गुरूवर प्रो0 जे0 एन0 पाल के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। उनके विचार–विमर्श एवं मार्गदर्शन से लाभान्वित होने के कारण मैं स्वयं को भाग्यशाली मानता हूँ। विभिन्न शैक्षणिक कार्यो में अपनी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने जिस आत्मीय भाव से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अंतिम रूप प्रदान किया है, उसके लिए मै उनका हृदय से आभारी हूँ। उनका मुझे सदैव स्नेह, प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं

शुभ चिन्तकों में प्रो0 मैनेजर पाण्डेय (जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली), प्रो0 अनिरूद्ध प्रसाद सिंह (विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय), डा0 अवनीश चन्द्र मिश्र, डा0 केशव पाठक (किसान डिग्री कालेज,सेवरही), राजवन्त राव (गोरखपुर विश्वविद्यालय), चन्द्रमौलि शुक्ल (महावीर डिग्री कालेज, पावानगर, फाजिलनगर) अशोक कुमार सिंह (निदेशक, राजकीय बौद्ध संग्रहालय, कुशीनगर), कृष्णानन्द त्रिपाठी, (गोरखपुर विश्वविद्यालय), श्री इन्द्रदेव मिश्र, त्रिपिटकाचार्य भिक्षु बुद्धमित्र, भिक्षु सन्तज्ञानेश्वर और श्री शिव कुमार त्रिपाठी ने मुझे सदैव इस कार्य के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित ही नहीं किया है अपितु अपने—अपने ढंग से सहायता भी की हैं। मैं सभी का हृदय से आभारी हूँ।

शोध प्रबन्ध हेतु बहुमूल्य विचारों एवं सुझावों के लिए प्रो0 राधाकान्त वर्मा (पूर्व विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, एवं कुलपति अ0प्र0 सिंह विश्वविद्यालय रीवा), प्रो0 देशबन्धु पाण्डेय (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी एवं प्रो0 डी0 एन0 त्रिपाठी (पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर) औंर डा0 जितेन्द्र कुमार (निदेशक, उ0प्र0 राज्य संग्रहालय, लखनऊ) का हार्दिक आभारी हूँ।

विभाग के कर्मचारियों में डा0 सुशील त्रिवेदी, अनोखे लाल एवं सतीश राय से प्राप्त सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करता हूँ। सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद यादव, वी0के0 खत्री औंर कमलेश कुमार से प्राप्त तकनीकी सहयोग के लिए मैं उनका आभारी हूँ। छायाचित्रों के लिए सर्वश्री राजेश कुमार यादव एवं संतोष कुमार गुप्त ने जिस लगन और उत्साह से आत्मीय सहयोग प्रदान किया हैं, मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

यहाँ उन सभी मित्रों के नामों का उल्लेख कर पाना संभव नहीं हैं, जिन्होंने सदैव मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित ही नहीं किया, अपितु प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग भी प्रदान किया हैं, उनके प्रति आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। अभिन्न मित्रों में हरेन्द्र प्रताप सिंह, विनोद कुमार

जायसवाल, अशोक कुमार सिंह, बी0डी0जोशी, मनुसिंह, दुर्गेश कुमार, मुकेश कुमार वर्मा, निर्मल द्विवेदी, सतीश चन्द्र मिश्र, गौरी शंकर मौर्य, अनिल कुमार यादव आदि सभी के प्रति ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ। राधेश, दिनेश, शिव शंकर, बृजेन्द्र, आशानन्द के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। आदरणीया गुरू पत्नी जो माँ सदृश्य हैं, से प्राप्त स्नेह एवं आशीर्वाद के लिए मैं उनके प्रति सादर श्रद्धानत हूँ।

सर्वेक्षण के दौरान पुरास्थलों के समीपस्थ गाँवों के उन अज्ञात व्यक्तियों का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सहयोग दिया हैं।

अन्ततः मैं अपने परिवारजनों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने असीम धैर्य के साथ मेरे मनोबल में वृद्धि करते हुए मुझे निरन्तर प्रेरणा और सहयोग प्रदान किया हैं। विशेष कर मैं अपने अग्रज परमादरणीय श्री मैनेजर गुप्त के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने जीवन के अनेक झंझावतों को सहन करते हुए न केवल मेरी खुशी में ही अपने सुखों का अनुभव किया अपितु उच्च अध्ययन के लिए सदैव सत्प्रेरणा प्रदान किया, के चरणों में सादर नतमस्तक हूँ। संगीता, सारिका, रंजीता, विकी, सरोज, रिकी के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने येन केन प्रकारेण इस कार्य में मेरी मदद की हैं।

अपनी जीवन संगिनी श्रीमती सीमा गुप्ता के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने घर गृहस्थी के अर्न्तजाल से मुझे सर्वथा निश्चिन्त रखा।

इस शोध प्रबन्ध के शुद्ध एवं व्यवस्थित टंकण के लिए मैं अपने युवा एवं कर्मठ मित्र श्री ओम प्रकाश गुप्त के प्रति आभार एवं, कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने हार्दिक रूचि लेकर अत्यन्त कम समय में यह कार्य पूर्ण किया।

दिनांक : 15–12–2002

लक्ष्मण प्रसाद

रेखा चित्रों एवं तालिकाओं की सूची

रेखा चित्र 1 : कुशीनगर जनपद का रेखाचित्र

रेखा चित्र 2 : कुशीनगर : साइट प्लान

रेखा चित्र 3 : बुद्ध की महापरिनिर्वाण प्रतिमा

रेखा चित्र 4 : जनपद कुशीनगर के पुरास्थल

रेखा चित्र 5 : जैन तीर्थंकर की प्रस्तर प्रतिमा, देवरहा (छावनी, पडरौना)

तालिका 1 : जनपद में सिंचाई का तुलनात्मक विवरण

तालिका 2 : जनपद के पुरातात्विक स्थल (तहसीलवार) एवं उनकी स्थिति

छायाचित्रों की सूची

छायाचित्र संख्याः— 1. मुख्य स्तूप, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः— 2. बुद्ध का महापरिनिर्वाण मंदिर, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः— 3. कुशीनगर के खण्डहर का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः— 4. बुद्ध की भूमि,स्पर्श मुद्रा में प्रतिमा, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः— 5. रामाभार स्तूप, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः— 6. तीन स्तूप युक्त मिट्टी की मुहर (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 7. डिजाइनदार ठप्पा (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 8. ध्यानावस्थित बुद्ध की मुहर (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 9. तीन ईंटों से निर्मित ध्यानी उपासक (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 10. काले पत्थर की सिररहित भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 11. हस्ति एवं अश्व की मृण्मूर्ति (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 12. हारीति की मृण्मूर्ति (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 13. महापरिनिर्वाण विहार अभिलिखित मुहर (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

छायाचित्र संख्याः— 14. मुकुटबन्धन विहार अभिलिखित मिट्टी की मुहर जिसमें शीर्ष पर बुद्ध की जलती हुई चिता तथा प्रार्थनारत महाकश्यप को दिखाया गया है। (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

छायाचित्र संख्याः— 15. देवी की सेवा करते हुए दासियों की मृण्मूर्ति (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

छायाचित्र संख्याः— 16. मिट्टी के फलक पर बुद्ध के जन्म का दृश्य (उत्तर प्रदेश राज्य संग्रहालय, लखनऊ के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 17. सठियाँव से प्राप्त नारी की मृण्मूर्ति (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 18. फाजिल नगर से प्राप्त अलंकरित मृण्मूर्तिया मूर्ति (प्राचीन इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्या– 19. ब्राह्मी में श्रेष्ठिग्रामाग्रहारस्य अंकित मिट्टी की मुहर, गुप्तकालीन (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः–20. गुप्तकालीन अलंकृत ईंटें उस्मानपुर (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः–21. शक, कुषाण तथा पह्लव कालीन मृण्मूर्तिया (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः– 22. गंगुआ टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः–23. काले प्रस्तर की उमा–माहेश्वर की आलिंगन मुद्राआ में प्रतिमा।

छायाचित्र संख्याः– 24. नवग्रह की खण्डित प्रस्तर प्रतिमा, शिव सरेया।

छायाचित्र संख्याः– 25. काले प्रस्तर की वामन मूर्ति शिव सरेया।

छायाचित्र संख्याः– 26. चतुर्भुजी विष्णु की वैकुण्ठ प्रतिमा, सरेयाँ।

छायाचित्र संख्याः– 27. मातृ–शिशु की प्रतिमा– सरेयाँ।

छायाचित्र संख्याः– 28. काले पत्थर की सूर्य प्रतिमा, सियरहा।

छायाचित्र संख्याः– 29. एकमुखी शिवलिंग, प्रतिमा, सियरहाँ।

छायाचित्र संख्याः– 30. नृत्यरत चतुर्भुजी गणेश, सियरहाँ।

छायाचित्र संख्याः–, 31. माहेश्वर की आलिंगन मुद्रा में प्रतिमा, पुरैना कटेया।

छायाचित्र संख्याः– 32. शिशु को दूध पिलाती स्त्री की प्रतिमा, पुरैना कटेया।

छायाचित्र संख्याः– 33. देवरिया वृत के स्तूपाकार, ईंट निर्मित टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 34. धारमढियाँ टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 35. बालुए पत्थर से निर्मित षोडसभुजी गणेश प्रतिमा, उजारनाथ।

छायाचित्र संख्याः– 36. मंदिर में स्थापित चतुर्भुजी पार्वती की प्रतिमा, उजारनाथ।

छायाचित्र संख्याः– 37. अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमा, सपही खास।

छायाचित्र संख्याः– 38. बलुआ पत्थर से निर्मित गुप्तयुगीन सूर्य की प्रतिमा, तुर्कपट्टी ।

छायाचित्र संख्याः– 39. काले पत्थर से निर्मित पाल युगीन सूर्य की प्रतिमा, तुर्कपट्टी।

छायाचित्र संख्याः– 40. सपही टड़वाँ से प्राप्त अरबी लेखयुक्त ताम्रसिक्के।

छायाचित्र संख्याः– 41. फाजिलनगर के टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 42. सठियाँव टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 43. खाँचेदार मिट्टी का लोढ़ा, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः– 44. अलंकृत, लटकन, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः– 45. अलंकृत, दो कलश नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः– 46–51 नारी एवं पुरुष की विविध खण्डित मृण्मूर्तियाँ, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः– 52. मृण्मूर्तिया के खण्डित पैर, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः– 53. बलुये पत्थर से निर्मित चामुण्डा देवी की प्रतिमा, बेईली।

छायाचित्र संख्याः— 54. अष्टपदीय वृत्ताकार स्तूप, धनहाँ।

छायाचित्र संख्याः— 55. काले पत्थर की ब्रह्म की मूर्ति, बकुलहर ।

छायाचित्र संख्याः— 56. उस्मानपुर (वीरभारी) के टीले का विहंगम दृश्य ।

छायाचित्र संख्याः— 57. ईंट निर्मित वर्गाकार स्तूप, सुमही बुजुर्ग।

छायाचित्र संख्याः— 58. सूर्य प्रतिमा, छहूँ ।

छायाचित्र संख्याः— 59. छः शिशुओं के साथ माँ वारा की प्रतिमा, छहूँ ।

छायाचित्र संख्याः—60. महापरिनिर्वाण स्तूप, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः— 61. हत्थायुक्त कड़ाही, खिलौना गाड़ी, स्पिन्कलर पहियाँ, रस्सीछाप घड़े का टुकड़ा, बलडीह।

छायाचित्र संख्याः— 62. रस्सी के छाप युक्त मृद्भाण्ड, बलडीहा।

छायाचित्र संख्याः— 63. कैरिनेटेड हाड़ी, वड़गाँव ।

छायाचित्र संख्याः— 64. स्तूपाकार टीला, देवरहा।

छायाचित्र संख्याः— 65. वनमोर्चा से प्राप्त ईंटों से निर्मित चौड़ी दीवारें ।

छायाचित्र संख्याः— 66. पपउर टीले का विहंगम दृश्य ।

प्राक्कथन		ii-vii
रेखाचित्रों एवं तालिकाओं की सूची		viii
छायाचित्रों की सूची		ix-xi
अध्याय 1	कुशीनगर जनपद का भौगोलिक परिदृश्य : स्थिति, तहसील, प्राकृतिक अवस्था, जलवायु, नदियाँ, झीले और तालाब तथा आदिम जातियाँ	1-47
अध्याय 2	कुशीनगर जनपद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः साहित्यिक विवरणों, अभिलेखों, मुद्राओं और स्मारकों के आधार पर	48-114
अध्याय 3	कुशीनगर जनपद में पूर्ववर्ती पुरातात्विक अनुसंधानों का विवेचन	115-153
अध्याय 4	कुशीनगर जनपद में पुरातात्विक अन्वेषण और कला अवशेषों का अध्ययन	154-203
अध्याय 5	उपसंहार	204-209
	सन्दर्भ-सूची	210-222
	छाया चित्र	

अध्याय–1

कुशीनगर जनपद का भौगोलिक परिदृश्य

मानव के सांस्कृतिक विकास पर भौगोलिक परिस्थितियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल में जब मानव के भौतिक और सांस्कृतिक उपादान बहुत कम थे, पृथ्वी तल पर घटित होंने वाली भौगोलिक घटनाओं का उसके जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए प्रतिनूतन काल के जलवायु सम्बंधी तीव्र उतार–चढ़ावों के साथ मानव के विकास का इतिहास अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । वनस्पति, जीव–जन्तु तथा पृथ्वी तल पर प्रवाहित होने वाले जल की मात्रा का पुरातात्विक अध्ययन के लिए ज्ञान नितान्त आवश्यक हैं। मानव के सन्निवेश (settlement pattern) सम्बंधी अध्ययन के लिए भौगोलिक ज्ञान आवश्यक है। जनसंख्या का वितरण, संसाधनों के दोहन आदि के अध्ययन के लिए भूगोल का ज्ञान अपेक्षित है।

इस प्रकार किसी क्षेत्र के इतिहास के निर्धारण में भूगोल के अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पुरातत्व बहुत कुछ उस क्षेत्र के भूगोल पर आधारित होता है। भूगोल के ज्ञान के बिना पुरातत्व का अध्ययन अपूर्ण है। सुब्बाराव[1] के अनुसार भारत में सांस्कृतिक विकास की पद्धति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए भौगोलिक कारकों का ज्ञान होना चाहिए। अतः इस अध्याय में जनपद के भौगोलिक विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

कुशीनगर पहले देवरिया जनपद का एक हिस्सा था। 13 मई 1994 ई0 को तत्कालीन शासन द्वारा जनपद देवरिया के उत्तरी भाग को अलग करके एक नये जनपद के रूप मे 'जनपद पडरौना' का सृजन किया गया। 19 जून 1997

[1] बी0 सुब्बाराव, *द पर्सनालिटी ऑफ इण्डिया* (द्वितीय संस्करण), बड़ौदा, 1958, पृष्ठ 8।

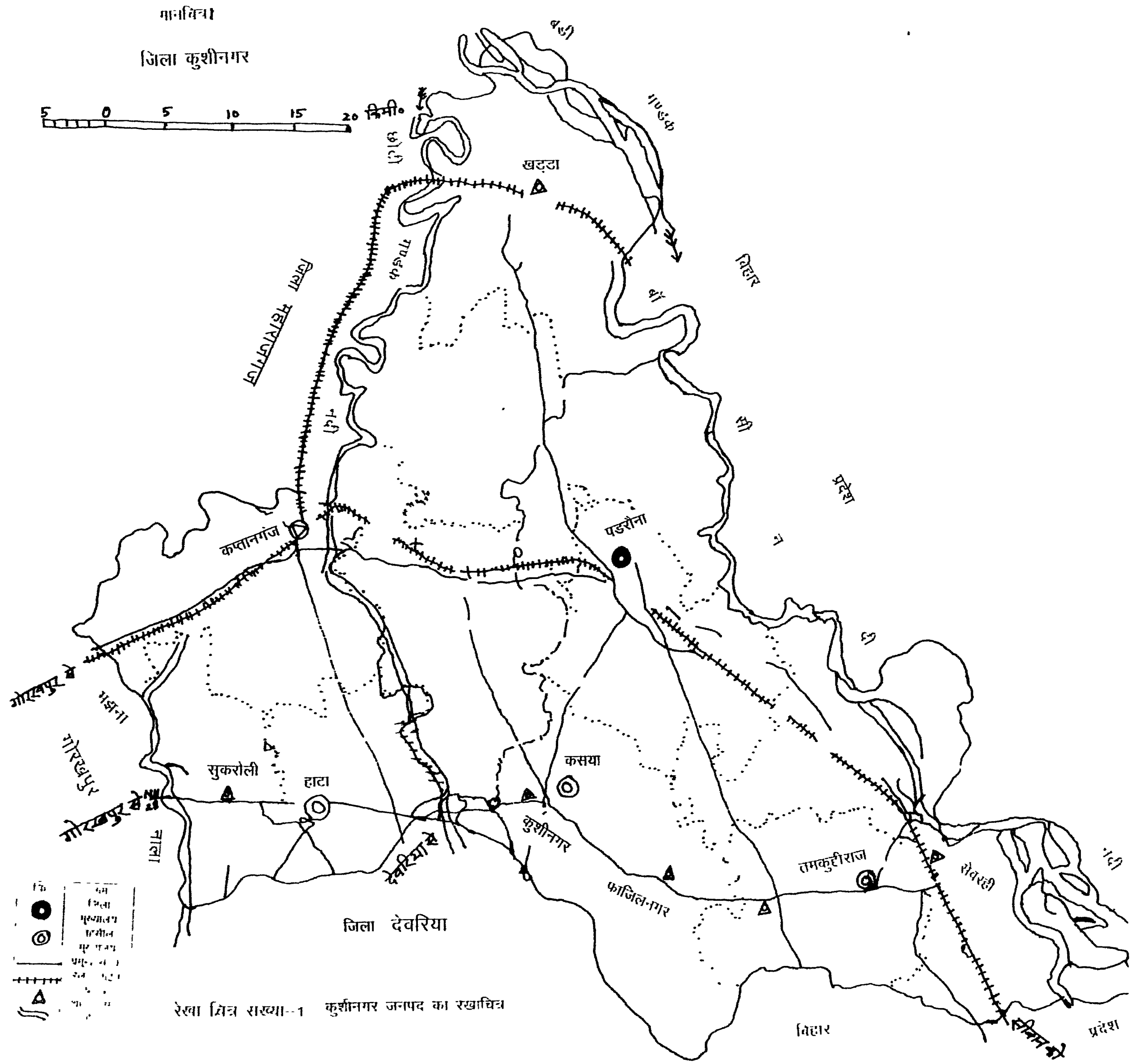

रेखा चित्र संख्या-1 कुशीनगर जनपद का रेखाचित्र

ई0 को तत्कालीन मुख्यमंत्री द्वारा जनपद का नाम महात्मा बुद्ध की निर्वाण–स्थली कुशीनगर के नाम पर पडरौना से कुशीनगर कर दिया गया। जनपद का मुख्यालय पडरौना हैं तथा यह गोरखपुर मण्डल का अंग है।

स्थिति :

कुशीनगर उत्तर प्रदेश के उत्तर–पूर्व में 26^0 35′ सें 27^0 18′ उत्तरी अक्षांश तथा 83^0 32′ सें 84^0 26′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।[1] इस जनपद के दक्षिण–पश्चिम मे गोरखपुर, पश्चिम मे महाराजगंज, दक्षिण मे देवरिया, उत्तर मे नेपाल तथा उत्तर–पूर्व में बिहार प्रदेश के पश्चिमी चम्पारण एवं गोपालगंज जिले इसकी सीमाओ का निर्धारण करते हैं। बड़ी गण्डक और उसकी शाखा बॉसी नदी इस जिले की उत्तरी–पूर्वी सीमा निर्धारित करती हैं, जो इसे बिहार प्रदेश से अलग करती है। छोटी गण्डक नदी और मझना नाला जिले की लगभग तीन.चौथाई पश्चिमी तथा दक्षिणी–पश्चिमी सीमा निर्धारित करती है और इसे महाराजगंज तथा गोरखपुर जनपद से अलग करती हैं। (रेखाचित्र संख्या–1)। भौगोलिक दृष्टि से यह जनपद हिमालय की तराई–अंचल के पूर्वी भाग में स्थित है तथा विशाल सिंधु–गंगा के मैदान का छोटा सा हिस्सा है।

1991 की जनगणना के अनुसार जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 2873.5 वर्ग किलोमीटर है।[2] क्षेत्रफल की दृष्टि से इस जिले का राज्य में 44 वॉ स्थान है जो प्रदेश का 1.6 प्रतिशत एवं मण्डल का 24.52 प्रतिशत है। पश्चिम (सुकरौली) से पूर्व (पिपरा घाट) इस जनपद की लम्बाई लगभग 80 किलोमीटर तथा उत्तर (मरिचहवा) से दक्षिण (कसया) लगभग 70 किमी0 है।[3]

जनपद कुशीनगर में कुल चार तहसीलें (पडरौना, हाटा, कसया तथा तमकुहीराज), 14 विकास खण्ड, 1 नगर पालिका परिषद, 6 नगर पंचायत, 140

---

[1] वरूण, डी0पी0,1988, *गजेटियर्स ऑफ इण्डिया उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट देवरिया,* पृष्ठ 1 के आधार पर शोधार्थी द्वारा निर्धारण।

[2] *सामाजार्थिक समीक्षा, जनपद कुशीनगर,* 2000–2001, पृष्ठ 2।

[3] शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद, 1998, *कुशीनगर का भौगोलिक परिचय,* गोरखपुर, पृष्ट 14।

न्याय पंचायत, 957 ग्राम पंचायत तथा 1638 ग्राम हैं। आबाद ग्रामों की संख्या 1,567 तथा गैर आबाद ग्रामों की संख्या 71 है। जनपद में कुल 17 पुलिस स्टेशन (शहरी–7, ग्रामीण–10), 15 सिनेमा घर (शहरी–12, ग्रामीण–3), 213 डाकघर (नगरीय–10, ग्रामीण–203), 105 बस स्टेशन (नगरीय–7, ग्रामीण–98), 18 रेलवे स्टेशन (नगरीय–5, ग्रामीण–13) तथा 43 राष्ट्रीयकृत बैंक शाखाएँ हैं।[1]

कुशीनगर जनपद सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य के सघनतम आबादी वाले जिलों में से एक है। यद्यपि यह जनपद क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रान्त में 44 वें स्थान पर है, लेकिन जनसंख्या की दृष्टि से इसका स्थान 22 वॉ है। उल्लेखनीय है कि यह सघन जनसंख्या जनपद के बड़े नगरों के कारण नहीं अपितु ग्रामीण जनसंख्या के सघनता के कारण है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 28,91,933 (राज्य का 1.74 प्रतिशत) है, जिनमें 27,59,414 ग्रामीण तथा 1,32,529 नगरीय जनसंख्या निवास करती है। पुरूषों की जनसंख्या 14,74,884 तथा महिलाओं की जनसंख्या 14,17,049 है। जनसंख्या में दशकीय ,वृद्धि दर 28.17 प्रतिशत रही। जनपद का जनसंख्या घनत्व 994 व्यक्ति प्रति किलोमीटर है, जो प्रदेश में 12 वॉ स्थान रखता है। स्त्री–पुरूष अनुपात 961 / 1000 है। जिले की कुल साक्षरता दर 48.43 % (कुल 11, 25, 939) है, जिनमें पुरूषों की साक्षरता दर 65.35 प्रतिशत : (कुल 7,74,171) तथा महिलाओं की साक्षरता दर 30.85 प्रतिशत (कुल 3,51,768) है।[2]

तहसीलें :

कुशीनगर जिले में वर्तमान समय में 4 तहसीले है – पडरौना, हाटा, तमकुहीराज (सृजन वर्ष 1987) और कसया (सृजन वर्ष 1995)। जनपद के दक्षिण–पश्चिम में हाटा तहसील, दक्षिण–पूर्व में तमकुहीराज तथा दक्षिण में कसया

[1] *विकास पुस्तिका, कुशीनगर,* 2001–02

[2] जनगणना निदेशालय भारत सरकार, गृह मंत्रालय अ0शा0 पत्रांक सीटी 833/D.C.O. U.P. / 73 - 2001

तहसील है। इन तीनो तहसीलों से तीन ओर से घिरा पडरौना तहसील जिले के मध्य में है, जो जिले की पूर्वोत्तर सीमा पर स्थित है।

पडरौना तहसील :

यह तहसील जिले के केन्द्रीय और उत्तरी–पूर्वी भाग से मिलकर बनी है। इसके उत्तर तथा पूर्व में बिहार प्रदेश, पश्चिम में महाराजगंज जिला एवं हाटा तहसील, दक्षिण में कसया तहसील तथा दक्षिण–पूर्व में तमकुहीराज तहसील है। इसके उत्तरी और पूर्वी भाग में बडी गण्डक और उसकी शाखा बाँसी नदी इसको बिहार प्रदेश से तथा पश्चिमी भाग में छोटी गण्डक नदी इसको महाराजगंज जिले से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 1040.10 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 6,50,106 है। तहसील के कुल ग्रामों की संख्या 560 है जिनमें आबाद ग्रामों की संख्या 512 तथा गैर आबाद ग्रामों की संख्या 48 है।

हाटा तहसील :

यह तहसील जिले के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। इसके दक्षिण में देवरिया जिला, पश्चिम में गोरखपुर जिला, उत्तर–पूर्व में पडरौना तहसील तथा महाराजगंज जिला एवं दक्षिण पूर्व में कसया तहसील स्थित है इसके पश्चिमी भाग में मझना नाला इसको गोरखपुर जनपद से अलग करता है। इसका क्षेत्रफल 79,802 हेक्टेयर तथा जनसंख्या 8,11,625 है। हाटा तहसील के कुल ग्रामों की संख्या 403 है, जिनमें आबाद ग्रामों की संख्या 400 तथा गैर आबाद ग्रामों की संख्या 3 है।

तमकुहीराज तहसील :

यह तहसील जिले के दक्षिण–पूर्व में स्थित है। इसके उत्तर–पश्चिम में पडरौना तहसील, दक्षिण–पश्चिम में कसया तहसील, उत्तर–पूर्व में बिहार प्रदेश का पश्चिमी चम्पारन जिला तथा दक्षिण–पूर्व में गोपालगंज जिला स्थित है। उत्तर–पूर्व में बड़ी गण्डक और उसकी सहायक बाँसी नदी इसको बिहार प्रदेश से अलग करती हैं। इसका क्षेत्रफल 65,311 हेक्टेयर तथा जनसंख्या 6,55,184 है।

तहसील के कुल ग्रामों की संख्या 377 हैं, जिनमें आबाद ग्रामों की संख्या 359 तथा गैर आबाद ग्रामों की संख्या 18 है।

कसया तहसील :

इस तहसील का निर्माण जनपद के गठन के बाद 25 मार्च 1995 ई0 में पडरौना तहसील के 91 ग्राम, तमकुहीराज तहसील के 134 ग्राम तथा हाटा तहसील के 59 ग्रामों को मिलाकर किया गया। यह जिले के दक्षिणी भाग में स्थित है । इसके दक्षिण–पश्चिम में देवरिया जिला और हाटा तहसील, उत्तर–पूर्व में तमकुहीराज एवं पडरौना तहसील तथा दक्षिण–पूर्व में बिहार प्रदेश का गोपालगंज जिला स्थित है। इसका क्षेत्रफल 46,739.862 हेक्टेअर तथा जनसंख्या 4,08,991 है। तहसील के कुल गाँवों की संख्या 298 है, जिनमें आबाद ग्रामों की संख्या 286 तथा गैर आबाद ग्रामों की संख्या 12 है।

विकास खण्ड[1]

1. कप्तानगंज :

यह हाटा तहसील के अन्तर्गत आता है। इसके उत्तर और पश्चिम में महाराजगंज और गोरखपुर जिला, पूर्व में रामकोला विकास खण्ड तथा दक्षिण में मोतीचक एवं सुकरौली विकास खण्ड है। छोटी गण्डक नदी इसकी पूर्वी सीमा बनाते हुए इसे रामकोला से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 185.5 वर्ग कि.मी. तथा जनसंख्या 1,54,009 है, जिसमें महिलायें 73,731 और 95 ग्राम हैं।

2. रामकोला :

यह भी हाटा तहसील के अन्तर्गत आता है। इसके उत्तर–पश्चिम में महाराजगंज जिला, उत्तर में नेबुआ नौरंगिया विकास खण्ड, उत्तर–पूर्व में विशुनपुरा विकास खण्ड, पूर्व में पडरौना, दक्षिण में हाटा, दक्षिण–पश्चिम में मोतीचक तथा पश्चिम में कप्तानगंज विकास खण्ड स्थित है। छोटी गण्डक इसकी पश्चिमी सीमा

---

[1] विकासखण्ड के सभी आंकड़े 1991 की जनगणना पर आधारित हैं जो सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद–कुशीनगर, 2001, राज्य नियोजन संस्थान, उ0प्र0 से उद्धृत है।

के साथ बहती है। इसका क्षेत्रफल 188.7 वर्ग कि.मी. है तथा जनसंख्या 1,67,105 है, जिनमें महिलाएँ 80107 और 69 ग्राम है।

3. मोतीचक :

इसके उत्तर–पश्चिम में कप्तानगंज, उत्तर–पूर्व में रामकोला, दक्षिण–पूर्व में हाटा तथा दक्षिण पश्चिम में सुकरौली ब्लॉक स्थित है। यह हाटा तहसील के अन्तर्गत आता है। छोटी गण्डक इसकी पूर्वी सीमा के समानान्तर सीमा के अन्दर बहती है। इसका क्षेत्रफल 163.3 वर्ग किमी तथा जनसंख्या 1,32,663 है, जिसमें महिलाएँ 65,062 और 83 ग्राम हैं। एक ग्राम गैर आबाद है।

4. सुकरौली :

यह जिले के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। इसके पश्चिम में गोरखपुर, दक्षिण में देवरिया जनपद, उत्तर में कप्तानगंज, पूर्व में मोतीचक एवं हाटा ब्लॉक स्थित है। मझना नाला इसके पश्चिम सीमा को गोरखपुर से अलग करता है। इसका क्षेत्रफल 155.4 वर्ग किमी तथा जनसंख्या 1,33,402 है जिसमें महिलाएँ 65,150 और 105 ग्राम है।

5. हाटा :

इसके उत्तर में मोतीचक और रामकोला, पश्चिम में सुकरौली, पूर्व में कसया और पडरौना ब्लॉक तथा दक्षिण में देवरिया जनपद स्थित है। इसके बीच से होकर उत्तर–पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर छोटी गण्डक नदी बहती है जो देवरिया को चली जाती हैं। इसका क्षेत्रफल 167.42 वर्ग किमी तथा जनसंख्या 147045 है, जिसमें महिलाएँ 72,094 और 110 ग्राम है।

6. खड्डा :

यह जनपद के उत्तरी भाग में स्थित है। इसके उत्तर–पूर्व में बिहार प्रदेश का पश्चिमी चम्पारन जिला तथा पश्चिम में महाराजगंज जिला स्थित है। दक्षिण में नेबुआ नौरंगिया तथा विशुनपुरा ब्लॉक है। बड़ी गण्डक तथा उसकी

सहायक बॉसी नदी उत्तर–पूर्व में इसकी सीमा बनाती है और इसको बिहार प्रदेश के पश्चिमी चम्पारन जिला से अलग करती है। पश्चिम में छोटी गण्डक इसको महाराजगंज जिले से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 323.8 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,58,044 है जिसमें महिलाएँ 74,413 और 143 ग्राम है, जिनमें 26 गैर आबाद है।

7. नेबुआ नौरंगिया :

इसके पश्चिम में महाराजगंज जिला, उत्तर में खड्डा, पूर्व में विशुनपुरा तथा दक्षिण में रामकोला ब्लॉक स्थित है। इसके पश्चिमी सीमा का निर्माण छोटी गण्डक नदी करती है जो इसको महाराजगंज जिले से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 211.3 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 136557 है जिसमें महिलाँए 65,194 और 115 ग्राम हैं, जिनमें 4 गैर आबाद है।

8. विशुनपुरा :

इसके उत्तर में खड्डा, दक्षिण में पडरौना, पश्चिम में नेबुआ नौरंगिया तथा रामकोला ब्लॉक तथा पूर्व में बिहार प्रदेश का चम्पारन जिला स्थित है। बाँसी नदी इसकी पूर्वी सीमा बनाती है तथा इसको बिहार प्रदेश से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 217.7 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,55,132 हैं, जिसमें महिलाएँ 73,833 और 144 ग्राम हैं, जिनमें 11 गैर आबाद है।

9. पडरौना :

यह उत्तर में विशुनपुरा, पश्चिम में रामकोला व हाटा, दक्षिण में कसया, दक्षिण–पूर्व में तमकुही व दुधई ब्लॉक तथा उत्तर–पूर्व में बिहार प्रदेश के पश्चिम चम्पारन जिला से घिरा हुआ हैं। उत्तर–पूर्व में इसके सीमा का निर्माण बॉसी नदी करती है तथा इसको पश्चिमी चम्पारन जिले से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 295.34 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 274919 है जिसमें महिलाएँ 1,31,567 और 181 ग्राम हैं, जिनमें 7 गैर आबाद हैं।

10. कसया :

इसके उत्तर मे पडरौना, पश्चिम में हाटा, दक्षिण तथा दक्षिण–पश्चिम दिशा मे देवरिया जिला तथा पूर्व एवं दक्षिण पूर्व में तमकुही एवं फाजिलनगर ब्लॉक स्थित है। इसका क्षेत्रफल 120.3 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,09,832 है जिसमें महिलाएँ 5,30,92 और 78 ग्राम हैं, जिनमें 4 ग्राम गैर आबाद है।

11. दुधई :

इसके पूर्व तथा उत्तर–पूर्व में बिहार प्रदेश, दक्षिण पूर्व में सेवरही, दक्षिण–पश्चिम में तमकुहीराज तथा उत्तर–पश्चिम में पडरौना विकास खण्ड स्थित है इसके उत्तरी–पूर्वी सीमा का निर्माण बड़ी गण्डक नदी करती है तथा इसको बिहार से अलग करती है। इसका क्षेत्रफल 226.7 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,71,998 हैं, जिसमें महिलाएँ 83,102 और 91 ग्राम है।

12. फाजिलनगर :

यह दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम में कसया, पूर्व तथा उत्तर–पूर्व में तमकुहीराज ब्लाक तथा दक्षिण–पूर्व में देवरिया जिला व बिहार प्रदेश से घिरा है। इसका क्षेत्रफल 178.8 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 141652 है, जिसमें महिलायें 70963 और 126 ग्राम है, जिनमें 4 गैर आबाद है।

13. तमकुही:

यह पूर्व में सेवरही, उत्तर–पूर्व में दूदही, पश्चिम में कसया व फाजिलनगर तथा उत्तर–पश्चिम में पडरौना ब्लॉक और दक्षिण में बिहार प्रदेश के गोपालगंज जिला से घिरा है। इसका क्षेत्रफल 199.1 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,71,968 है, जिसमें महिलायें 85,862 और 164 ग्राम हैं, जिनमे 9 गैर आबाद है।

14. सेवरही:

यह पूर्व, उत्तर–पूर्व तथा दक्षिण में बिहार प्रदेश से तथा पश्चिम में तमकुहीराज और उत्तर–पश्चिम में दुदही ब्लाक से घिरा है। इसके पूर्वोत्तर सीमा का निर्माण बड़ी गण्डक नदी करती है और इसको बिहार से अलग करती है। इसका

क्षेत्रफल 239.6 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1,61,194 है, जिसमें महिलायें 88,871 और 130 ग्राम है, जिनमें 8 गैर आबाद है।

प्राकृतिक अवस्था

स्थलाकृति (**Topography**)

धरातल की बनावट हर जगह एक जैसी नही होती। कहीं उपजाऊ भूमि पायी जाती है तो कहीं ऊसर बंजर भूमि। कही नदियों की ऊँची नीची भूमि और जंगल ही जंगल पाये जाते हैं, तो कहीं पहाड़ी भूमि। एक जैसे प्राकृतिक दशाओं वाले भाग को अलग करके उस क्षेत्र को विभिन्न प्राकृतिक भागों में विभाजित किया जाता है।

कुशीनगर जनपद सिंधु–गंगा मैदान के जलोढ़ मिट्टी के महीन कणों से निर्मित एक लघु भाग है। यह बड़ी गण्डक, छोटी गण्डक तथा इनकी शाखाओं द्वारा लायी गयी जलोढ़ मिट्टी के जमाव का प्रतिफल है। कुशीनगर जनपद का सम्पूर्ण क्षेत्र मूलतः एक समतल मैदान है जिसकी सामान्य ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर है। इसलिए बड़ी एवं छोटी सभी नदियाँ और नाले इसी दिशा में बहते है। इसका धरातल बडी गण्डक तथा छोटी गण्डक द्वारा निर्धारित है। इन नदियों की शाखाएँ अनेक ऊँची–नीची भूमि, झील, बाढ़ क्षेत्र आदि स्वरूप धरातल पर निर्मित की है। जनपद के उत्तरी भाग में तीव्र ढाल है जिसकी दिशा उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर है। समतल मध्यवर्ती भाग में कहीं कहीं रेत के टीले है जिन्हे स्थानीय भाषा में धूस कहते है। मात्र बड़ी गण्डक को छोड़कर जनपद की शेष नदियों का जल सरयू (घाघरा नदी) में मिलता है। जनपद अपने भूमाकार में प्रकृतितः एक द्रोणी के रूप में होने के कारण वर्षा के जल को अपने भूमि से बाहर नही निकाल पाता और भूमि का बहुत बड़ा भाग महीनों तक जलमग्न रहता है। बड़ी गण्डक और छोटी गण्डक अपनी सहायिकाओं के साथ क्रमशः

पूर्वोत्तर और कुछ दूरी तक पश्चिमी सीमा का निर्माण करती है और स्थलाकृति के निर्धारण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जनपद का एक बड़ा भाग गण्डक द्वारा लायी गयी जलोढ़ मिट्टी का बना है, जिसे 'भाठ' के नाम से जाना जाता है।[1]

यह नदी के समय–समय पर स्थानान्तरण के कारण निर्मित हुआ है। कहीं–कहीं नदियों और उससे सम्बन्धित नालों के कारण ऊँचे–ऊँचे कगार भी देखने को मिलते है। कुछ बालू के टीले नदियों की घाटी में पाये जाते है। उन स्थानो पर जहॉ बालुकामयी भूमि की अनियमित पहाड़ियाँ पायी जाती है, वहाँ की भूमि काफी ऊॅची उठी होती है। इस बालुकामयी भूमि के कारण इसके समीपवर्ती भागों में कहीं तो भूमि नीची है, कहीं–कहीं झील बन गये हैं और कहीं–कहीं पर कंकरीले भूमि के खड्ड (Pebbles) पाये जाते है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में कोई नदी इस मार्ग से होकर बहती थी। जनपद में ऊँची भूमि की श्रेणी कसया और पडरौना के बीच में मिलती है। इसकी ऊँचाई जनपद में सबसे अधिक है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 128.6 मीटर है।[2] बाँगर अथवा ऊँची जमीन के विपरीत नदियों की नीची और बहुधा चौड़ी घटियाँ, समान्यतः कछार के रूप में जानी जाती है।[3]

प्राकृतिक रूप से भूमि की यह ऊॅचाई और नदियों के गहरे कछार उसके समतल होने में बाधा नहीं पहुँचाते अर्थात बाधक नही है। जनपद के मैदानी भाग की दूसरी विशेषता उसकी कछार भूमि है। प्रकृतितः ऊँची भूमि तथा जनपद में प्रवाहित नदियों की गहरी कछार भूमियाँ इस क्षेत्र की मैदानी भूमि के निर्माण में पर्याप्त भिन्नता प्रदर्शित करती हैं। समतल भूमि के कछार कहीं–कहीं बहुत चौड़े हो गये हैं और वर्षा के दिनों में इनका विस्तार समुद्र का दृश्य उत्पन्न करता है। जनपद के कछारी भूभाग का प्रभाव इसकी आर्थिक संरचना पर भी पड़ता है।

---

[1] वरूण, डी0पी0,1988, *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स : देवरिया*, पृष्ठ 3।

[2] पाण्डेय, राजबली, *गोरखपुर जनपद और उसके क्षत्रीय जातियों का इतिहास*, गोरखपुर, 1946, पृष्ठ 6; *विकास के नियोजित कदम* 1996–97, पडरौना, सूचना जन संपर्क विभाग, पृष्ठ 8।

[3] वरूंण, डी0पी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 3।

कछार में जहॉ नदियों की बाढ़ जमीन को उपजाऊ बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर अपने भीषण प्रवाह से कृषि तथा जन–माल को भारी क्षति पहुँचाती है। कभी–कभी तो गॉव के गॉव भीषण जल प्रवाह में बह जाते हैं और सहस्रो लोग आश्रयहीन हो जाते है।

जनपद के तराई भाग में ढाल उत्तर से दक्षिण 0.75 मीटर प्रति किलोमीटर है जबकि बॉगर और भाठ क्षेत्र में यह ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण पूर्व 0.90 मी0 प्रति किमी0 है। खादर क्षेत्र का ढाल उ0–प0 से द0–पू0 .15 मी0 प्रति किमी0 है।[1]

इस प्रकार ऊपज एवं बनावट की दृष्टि से जनपद के सम्पूर्ण भूमि को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

1. भाठ
2. बाँगर तथा
3. कछार

1. भाठ :

भाठ मिट्टी जनपद के कप्तानगंज, रामकोला, दुधई, पडरौना, नेबुआ नौरंगिया, सेवरही तथा तमकुही विकास खण्ड में पायी जाती है। गण्डक और छोटी गण्डक के मध्य कसया के दक्षिण का कुछ भाग भी इसमें शामिल है। इस क्षेत्र का ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पश्चिम की ओर है तथा समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 89 मी0 है। इसका निर्माण गण्डक, छोटी गण्डक और उनकी सहायक नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से हुआ है। खनुआ नाला और झरही नदी का किनारा भी भाठ है। बाँसी नदी तथा इसकी शाखाएँ भी इस क्षेत्र में आती है। बालू की मात्रा युक्त यह मिट्टी चिकनी, भुरभुरी, हल्की एवंम सफेद होती है। सफेदी का कारण मिट्टी में अनुपात से अधिक चूना का होना है। इस मिट्टी में पानी सोखने की क्षमता अधिक होती है। इसलिए इसमें बराबर नमी बनी रहती है। अतः इसमें सिंचाई की कम

---

[1] कुशवाहा, रमाकान्त, *देवरिया जनपद का प्रतीकात्मक अध्ययन*, 1993, पृष्ठ 46।

आवश्यकता पडती है और जुताई आसानी से हो जाती है। इस प्रकार कृषि की दृष्टि से यह भूमि उपयुक्त है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि खाद्य पदार्थ के साथ–2 वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन अत्यधिक मात्रा में होता है। गन्ना, हल्दी, मिर्च, अदरख सोठ, धनियां, ज्वार, बाजरा, गेहूँ आदि के लिए यह मिट्टी काफी उपयुक्त है, किन्तु मानव जीवन के लिए यह भूमि बहुत उपयुक्त और शक्ति सम्पन्न नही है। इस मिट्टी के बालू युक्त होने के कारण बरसात में अपरदन अधिक होता है तथा जल स्तर नीचा होने के कारण कुओं का निर्माण कठिन होता है।

भाठ की मिट्टी के दो प्रकार है : – 1. धूसी भाठ और 2. चउर भाठ[1]। धूसी भाठ का एक भाग कसया और पडरौना के बीच है जो समुद्र तल से 117.65 मीटर ऊँचा उठा हुआ है।[2]

2. बाँगर :

बाँगर पुरानी जलोढ़ मिट्टी से निर्मित ऊँचे मैदान होते है जिस पर नदियों के बाढ़ का पानी नहीं पहुँचता है। यह भू भाग हाटा तहसील के पश्चिमी भाग में स्थित अत्यन्त उपजाऊ एवं समतल मैदान है। इसके विपरीत खादर नये जलोढ़ों से बना मैदान होता है जिस पर हर साल बाढ़ का पानी पहुँच जाता है तथा नयी मिट्टी का जमाव करता है। यह मिट्टी काफी उपजाऊ होती है। इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई 84 मीटर तथा ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर पाया जाता है। बाँगर की एक पतली पेटी पडरौना में भी है, किन्तु यह जनपद के और बॉगरो से भिन्न है। इसका धरातल नीचा है। भाठ क्षेत्र मे भी झरही और खनुआ के बीच जगह जगह बॉगर है । इसी तरह छोटी गण्डक और खनुआ नदी के बीच बॉगर का एक विस्तृत क्षेत्र है। मिट्टी में बालू की मात्रा कम या अधिक होने के आधार पर बाँगर की भूमि को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है – दोमट, मटियार और बलुई। दोमट मिट्टी मुख्यतः जनपद के हाटा तथा पडरौना तहसील में पायी जाती है। कसया तथा तमकुही के पश्चिमी भाग में भी इस प्रकार की मिट्टी पायी जाती

---

[1] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 16।

[2] वरूण, डी0पी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 4।

है। यह मिट्टी अत्यधिक उपजाऊ है जिसमें लगभग सभी प्रकार की फसलें उगायी जाती है। फिर भी रबी की फसल के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर तथा साग–सब्जियाँ इस मिट्टी की प्रमुख फसलें हैं। इस भाग की जलवायु स्वास्थप्रद होने के कारण आबादी घनी है।

मटियार मिट्टी जनपद के लगभग हर क्षेत्र में पायी जाती है। ये मुख्य रूप से सम्पूर्ण ऊँच भूमि और झीलों तथा तालाबों के किनारे मिलती है। यह मिट्टी काफी कठोर तथा उपजाऊ होती है। इसमें खेती करने के लिए अधिक मेहनत करनी पड़ती है। जनपद के किन्ही–किन्ही भागों मे बलुई मिट्टी भी पायी जाती है जिसमें मोटे अनाजों का उत्पादन होता है। खास तौर से गण्डक, छोटी गण्डक तथा इनकी सहायक नदियों के किनारे यह मिट्टी अधिक मिलती है।

3. कछार:

नदियों के पार्श्ववर्ती भू–भाग को कछार कहा जाता है जिसे दियारा के नाम से भी जाना जाता है। जनपद के उत्तर–पूर्व में गण्डक के बगल में कछार का एक खण्ड है। गण्डक का दियारा भाग दो भागों में बँटा है। पहला भाग सुदूर उत्तर और दूसरा भाग सुदूर दक्षिण–पूर्व में है। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष बाढ़ के साथ मिट्टी आती है और भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती रहती है। गण्डक के कछार की मिट्टी में बालू की अधिकता होने के कारण उनकी उत्पादन शक्ति कम होती है। इस क्षेत्र के एक चौथाई से अधिक भाग पर केवल शरद् काल में ही कृषि कार्य होता है।

स्थलाकृति की उपरोक्त तीन विभाजनों के अतिरिक्त उत्तर में तराई की भूमि का अलग उल्लेख करना आपेक्षित है। यद्यपि कि जनपद के भीतर कोई पर्वत श्रेणी नही है, परन्तु हिमालय की चरण श्रृंखला इसकी उत्तरी सीमा के निकट आ पहुँचती है। हिमालय उत्तर से दक्षिण की ओर ढलता आया है जिसका प्राकृतिक प्रभाव जनपद के भू–स्थलाकृति पर भी पड़ा है। शिवालिक पहाड़ियों की चरण श्रृंखला के नीचे उनके समानान्तर भूमि का सिलसिला पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर होता गया है जिसे तराई कहते है। इसका अधिकांश भाग नेपाल में है।

जनपद कुशीनगर के तहसील पडरौना और हाटा का उत्तरी भाग इसके अन्तर्गत आता है।[1] यह जनपद के 326 वर्ग किमी0 क्षेत्र में स्थित है। इस क्षेत्र में छोटी–छोटी झीलें तथा गण्डक नदी की छोटी–छोटी शाखाएँ भी पायी जाती है। यह क्षेत्र जगलों से ढका हुआ है। इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कृषि भूमि पर स्वतः शीशम आदि वृक्ष उग आते है।प्राचीन काल में शाक्य और मल्ल राष्ट्र हिमालय की चरण श्रृंखला को स्पर्श करते थे।[2] भू–स्थलाकृति के निर्माण से तराई की स्थिति का ज्ञान होता है। तराई भूमि का निर्माण वर्षा कालीन जल और नदियों तथा नालों द्वारा वर्षा काल में बाढ़ जल से होता है। तराई की भूमि की बनावट ऐसी है कि बरसात का पूरा पानी नालों द्वारा यहां से बाहर नही निकल पाता और यहीं धरती में समस जाता है। फलतः समस्त भूमि आर्द्र हो जाती है और नमी युक्त बनी रहती है जो मानव जीवन के लिए अस्वास्थ्यकर है। जनपद की समस्त भूमि का उत्तरी भाग किस प्रकार तराई भूमि में परिवर्तित हो गया यह विचारणीय है, क्योकि तराई क्षेत्र में प्राचीन काल में आर्यो के अनेक उपनिवेश हिमालय की तलहटी में बसे हुए थे। संभवतः भौगर्भिक कारणों से भूकम्प आदि के प्रकोप से यहाँ की भूमि नीचे दब गई।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय के वर्द्धमान आकार के कारण उसके नीचे की शिवालिक श्रेणी के धंसने के कारण संबद्ध क्षेत्र भी नीचे धँस गई होगी जिससे तराई का क्षेत्र एक द्रोणी के रूप में बन गई होगी जहॉ से वर्षा का जल बाहर न निकल कर उसी भूमि में रिस जाता है और सम्पूर्ण तराई क्षेत्र की पट्टिका सदा आर्द्र भूमि के रूप में बनी रहती है। जनपद के तराई भू–भाग का अधिकांश भाग झाड़ियों एवं जंगलों से भरा हुआ था। अद्यतन जंगलों को काटकर कृषि भूमि बनती जा रही है। यह उपजाऊ भूमि है तथा धान की अच्छी पैदावार होती है। गन्ना की खेती भी बहुतायत से की जाती है। बड़ी गण्डक, छोटी गण्डक

[1] शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद, 1998, *कुशीनगर का भौगोलिक परिचय,* गोरखपुर, पृष्ट 15।

[2] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 5।

[3] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 5।

तथा झरही नदी इसी भाग से होकर बहती हैं। इस भाग में आबादी घनी है। खड्डा एवं छितौनी इस भाग के मुख्य नगर हैं।

नदियाँ :

जनपद की प्रमुख नदियों में बड़ी गण्डक, छोटी गण्डक तथा इनकी विभिन्न सहायक नदियां है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, जनपद का सामान्य ढाल, उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की दिशा में है और छोटी–बडी सभी नदियां इसी दिशा में बहती है। केवल बड़ी गण्डक को छोडकर शेष सभी नदियों का पानी उत्तर भारत की एक प्रमुख नदी सरयू जो घाघरा नाम से भी प्रसिद्ध है, में मिलती है।

बड़ी गण्डक :

गण्डक नदी जिले की सबसे प्रमुख गंगा की ऊपरी सहायक नदी है। यह मध्य हिमालय में नेपाल की उत्तरी सीमा और तिब्बत मे विस्तृत हिमालय की अन्नपूर्णा पहाड़ियों के समीप मानगमोट और कुतांग के समीप से निकलती है[1] तथा निचले नेपाल की पहाड़ियों से होते हुए त्रिवेणी घाट पर सर्वप्रथम समतल भूमि पर उतरती है। त्रिवेणी पडरौना के उत्तर पश्चिम में 28 मील की दूरी पर है। नेपाल से जब यह नदी चलती है तो इसमें बाँयी तरफ से चार और दाहिनी तरफ से दो सहायक नदियाँ मिलती है। अपने सहायक नदियों के कारण नेपाल में इसे सप्तगण्डकी के नाम से पुकारा जाता है। इसका मुख्य प्रवाह बिहार में है।यह नदी नेपाल की सीमा को पार कर बिहार के पश्चिमी चम्पारन जिले में प्रवेश करती है तथा उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा को अलग करते हुए पटना के पास गंगा में मिल जाती है। अपने देश में इसका प्रचलित नाम नरायणी[2] और नेपाल में शालीग्रामी[3] हैं क्योकि इसी तलहटी में बीच में सफेद पट्टीयुक्त काले रंग के

---

[1]कुमार अरविन्द, शांडिल्य, यतीन्द्र, *बिहार एक खोज*, पृष्ठ 199।

[2] *पदम पुराण*, रा0प्र0 21.4।

[3] *वाराहपुराण*, रामेश्वरादि महिमाध्याय।

सुडौल गोल पत्थर अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होते है और हिन्दुओं द्वारा नरायण अथवा शालीग्राम के रूप में इसकी पूजा की जाती है। यह वही प्रसिद्ध नदी है जिसमें पौराणिक गज ग्रह युद्ध हुआ था और गज की पुकार सुनकर भगवान ने ग्रह का वध कर गज की प्राण बचायी थी। इसमें सदैव जल प्रवाहित होने के कारण कुछ लेखको ने इसकी पहचान महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) में उल्लिखित सदानीरा नदी से की है। प्राचीन काल में कोसल राज्य और विदेहराज्य की सीमा सदानीरा ही थी।[1] कुशीनगर जनपद में यह नदी हाटा तहसील के उत्तरी सिरे पर करवनियाँ गांव के पास प्रवेश करती है और इससे होकर दक्षिण– पूर्व में सात किमी बहने के बाद छितौनी रेलवे स्टेशन के पास जनपद से अलग हो जाती है। पुनः यह नदी तमकुहीराज तहसील के साहबगंज के पास जिले को स्पर्श करती है और दक्षिण पूर्व की ओर बहते हुए बिहार में प्रवेश कर जाती है तथा कुशीनगर जनपद को बिहार राज्य के पश्चिमी चम्पारन जिले से अलग करती है। इस प्रकार यह नदी जनपद की उत्तरी पूर्वी सीमा का निर्माण करती है। जिले में इस नदी की तलहटी प्रस्तर युक्त है, पानी ठंढा और स्वच्छ है तथा इसकी धारा बहुत तेज है।
बड़ी गण्डक में अचानक और प्रायः बाढ़ आ जाती है जिसके कारण हाटा, पडरौना तथा तमकुहीराज तहसील में इसके किनारे स्थित गांव को भारी नुकसान पहुंचता है। इसका पानी उपनदियों में पहुँच कर बहुत तबाही मचाता है और पर्याप्त मात्रा में मिट्‌टी भी जमा कर देता है। झरही और बांसी इसकी सहायक नदियाँ हैं।
यह शक्तिशालिनी नदी कहीं भी छिछली नहीं है। इसका पानी सिचाई के लिए प्रयुक्त नही होता। पूर्व में यह नदी अपनी धारा को कई बार बदल चुकी है और इसकी यह प्रवृत्ति पूर्व की ओर खिसकने की है।

छोटी गण्डक :

छोटी गण्डक नदी बड़ी गण्डक नदी की एक शाखा है जो नेपाल में बाघवन से निकलकर महाराजगंज जनपद को पार करती हुई कुछ दूरी तक

[1] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 11।

कुशीनगर जनपद के उत्तरी–पश्चिमी भाग की सीमा बनाती है तथा जनपद को महाराजगंज जनपद से अलग करती है। यह नदी चौड़ी कम किन्तु गहरी अधिक है। यह नदी जनपद में सर्वप्रथम हाटा तहसील के उत्तरी–पश्चिमी सिरे पर स्थित कप्तानगज विकास खण्ड के उत्तरी भाग में प्रवेश करती है और दक्षिण दिशा में तहसील के बीचो–बीच बहती हुई देवरिया जनपद में प्रवेश कर जाती हैं और सलेमपुर होकर अन्ततः सिमारी के पास सरयू नदी मे मिल जाती है। इसकी खास विशेषता यह है कि सरयू नदी के साथ संगम बनाने तक इसका जल विमल रहता है। घाघी, खमुआ और मौन इसकी सहायक नदियाँ हैं जिनमें केवल बरसात की अवधि मे ही जल प्रवाहित होता है और फिर सूख जाता है।

मझना :

यह नदी हाटा तहसील के कप्तानगंज विकास खण्ड मे स्थित मंसूरगंज के पास से निकलती है। यह हाटा तहसील की पश्चिमी सीमा बनाते हुये कुशीनगर जनपद को गोरखुपर जनपद से अलग करती है। यह दक्षिण दिशा में बहते हुए सुकरौली से कुछ दूरी पर देवरिया जनपद मे प्रवेश करती है और उसी दिशा में रास्ते में बरी, बरहरी, करना तथा कटना की धाराओं के साथ मिलकर अन्ततः राप्ती से जा मिलती है।

इसका प्रवाह धीमा है और यह संकीर्ण व तेज मोड़ के साथ थोड़ी सी बालू मिश्रित सख्त चिकनी मिट्टी से होकर बहती है। इसके अपने किनारे हैं और इसके किनारे स्थित खेतों को कम नुकसान पहुँचता है।

मन :

यह छोटी गण्डक की मुख्य सहायक नदी है। यह महाराजगंज जनपद के दक्षिणी–पूर्वी भाग से निकलती है। यह कुशीनगर जनपद में हाटा तहसील में कप्तानगंज से लगभग 4 किमी0 उत्तर–पश्चिम में प्रवेश करती है और पश्चिम से होकर दक्षिण–पूर्व दिशा में बहते हुए हेतिमपुर के पास देवरिया जनपद की सीमा पर छोटी गण्डक से मिल जाती है। इस नदी का बहाव बलुई पहाड़ियों

के टूटे हुए किनारे से प्रवाहित होता है। इसका सामान्य झुकाव उत्तर और दक्षिण की ओर है। यह बारह मासी नदी है।

खनुआ :

यह नदी जो कि छोटी गण्डक का एक नाला है, इसका स्रोत महुआडीह के पास है। यह दक्षिण–पूर्व की दिशा में अपनी बाँयी तरफ पडरौना कसया व तमकुही तहसील को तथा अपनी दायीं तरफ देवरिया जनपद को अलग करते हुए बढ़ती है। सोंडा से मिलने के बाद यह दक्षिण–पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और देवरिया को सीवान से अलग करती है। बरसात के दिनों में यह महत्वपूर्ण हो जाती है और बॉगर क्षेत्र के जल निस्तारण की मुख्य स्रोत बन जाती है। यह रजवाबार में प्रवेश करते हुए घाघी, भलुआ और कुछ अन्य नालों के पानी को ग्रहण करता है । यह कसया के पास रामभार ताल से होकर बहता है और बाढ की दशा में कसया के पड़ोस में भारी नुकसान पहुँचाता है।

सोंडा :

इस नदी का स्रोत कुचिया गाँव के पास है और यह दक्षिण की ओर तहसील पडरौना से होकर (बारीपट्टी तक) बहती है। इसके बाद दक्षिण–पश्चिम में मुड़कर खनुआ में मिल जाती है। यद्यपि कि यह एक तुच्छ नदी है लेकिन अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इसका कुछ महत्व है।

झरही :

यह नदी तमकुहीराज तहसील के उत्तरी भाग में दुधई ब्लॉक के बाँसगाँव के पास से निकलती है। झरही जो कि अब घाघरा की एक सहायक नदी है, गण्डक की एक पुरानी शाखा है यह तमकुहीराज के पास से होते हुए डिबनी बंजरवा गाँव के पास कुशीनगर जनपद को छोड़ देती है और बिहार प्रदेश के गोपालगंज जिले में प्रवेश कर जाती है। आगे चलकर सिवान और देवरिया जनपद की सीमा बनाते हुए अन्ततः सरयू में मिल जाती है।

बाँसी : यह नदी जो गण्डक नदी की एक मात्र सहायक नदी है, सोता गण्डक के नाम से भी जानी जाती है। यह छितौनी के पास से निकलती है और

कुशीनगर जनपद को बिहार से अलग करती है। यह जनपद में कुल 77 किमी0 की लम्बाई में बहती है। यह पडरौना तहसील में बैकुंठपुर के उत्तर से सर्वप्रथम जिले में प्रवेश करती है और जनपद के उत्तर–पूर्व तथा पूर्व मध्य भाग से दक्षिण पूर्व की ओर बहती है और सेवरही विकास खण्ड के तरकौलियां गॉव के पास सोता से मिलकर गण्डक में गिर जाती है।

बनरी :

यह नदी छोटी गण्डक का एक नाला है। इसका स्रोत हाटा तहसील में लखुआ गॉव के पास है। यह हाटा तहसील से होकर दक्षिण–पूर्व की ओर बहती है और बाँसी घाट के पास बाँसी नदी में मिल जाती है।

दूसरी बनरी पश्चिमी बनरी के रूप मे जानी जाती है यह उस बिन्दु से जहाँ बनरी छोटी गण्डक से निकलती है, 12 किमी0 दक्षिण मे प्रकट होती है। अन्त में यह घाघी मे मिलती है और दक्षिण की ओर मुड़कर खनुआ में गिरती है, जो वस्तुतः गण्डक का ही एक सिलसिला है।

उपरोक्त नदियों के अलावा जनपद की कुछ प्राचीन नदियाँ जो प्रायः विलुप्त हो चुकी है या दूसरे नामो से अपना अस्तित्व बनाये हुये है, का उल्लेख भी आवश्यक है। जनपद की प्राचीन नदियों में हिरण्यवती, कुकुत्था तथा मही प्रमुख हैं। जनपद में आज से सहस्रो वर्ष पूर्व अनेक नदियाँ रही होगी, जिनका उल्लेख साहित्य में प्राप्त नही है। दूसरी ओर बौध ग्रंथो में प्रायः उन्ही नदियों का उल्लेख किया गया है जो राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थीं। अथवा बुद्ध की चारिका से सम्बद्ध रही । अनेक नदियाँ ऐसी रही होंगी जो अद्यावधि अस्तित्व में है, परन्तु साहित्य में उल्लेखित नही है। आधुनिक अस्तित्वमान लघु नदियाँ यह संकेत करती है। प्राचीन काल में इनका आकार और प्रकार वृहद रहा होगा, जो प्राकृतिक परिवर्तनों तथा अनेकविध अपरदनों तथा निक्षेपो से भर गयी है।[1]

---

[1] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, ।

हिरण्यवती :

मल्लभूमि की यह एक प्रसिद्ध नदी थी जो कुसीनारा के पास से होकर बहती थी। दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत्त में हिरण्यवती नदी के तट पर कुशीनारा के मल्लों के उपवतन नामक शालवन का उल्लेख है।[1] पंडित राहुल सांकृत्यायन[2] तथा भरत सिंह उपाध्याय[3] के मतानुसार आधुनिक सोनरा नाला ही हिरण्यवती है जो रामाभार ताल से निकलकर सिसवा गाँव के पूर्व से होकर बहते हुए कुलकुला स्थान के पास खनुआ में मिलती है, जहाँ पर घाधी भी आ मिलती है। परन्तु डा0 राजबली पाण्डेय[4] एवं डा0 विमलचरण लाहा[5] ने हिरण्यवती की पहचान छोटी गण्डक से किया है। राजबली पाण्डेय के अनुसार सम्भवतः अपने निर्मल जल अथवा बालू के साथ हिरण्य (स्वर्ण) कण लाने के कारण यह हिरण्यवती कहलाती है। भिक्षु धर्मरक्षित[6] वर्तमान कुसम्हीनारा तथा हिरवा की नारी नामक नाले को हिरण्यवती का पर्याय मानते है। कुसम्हीनारा विशुनपुर गाँव के पूर्व में उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है। हिरवा की नारी रामाभार ताल और अनिरूधवा के बीच से होता हुआ डुमरी गाँव के पूर्व से जाकर शिवराजपट्टी के पास खनुआ मे मिलता है। धर्मरक्षित का तर्क है कि सन् 1911 ई0 में रामाभार के स्तूप की खुदाई में ताल के पश्चिमी किनारे, स्तूप से कुछ दक्षिण और उत्तर लट्ठों के बधें हुए बेड़े मिले थे और अब भी विशुनपुर गाँव के उत्तर बकया ताल में साखू के गिरे पेड़ों की लकड़ियां और उनकी जड़ें मिलती है। डा0 वोगेल[7] को कुशीनगर की पूर्वी चहारदीवारी वर्तमान भूमि के सतह से 12 फीट नीचे मिली थी और उसके ऊपर नदी द्वारा

---

[1] *दीघनिकाय,* महापरिनिर्वाण सुत्त, 2/3।

[2] सांकृत्यायन, राहुल, *बुद्धचर्या,* पृष्ठ 572।

[3] उपाध्याय, भरत सिंह, *बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल,* पृष्ठ 134।

[4] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 10।

[5] लाहा, विमलचरण, *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल,* पृष्ठ 53।

[6] धर्म रक्षित, भिक्षु, *कुशीनगर का इतिहास,* पृष्ठ 32।

[7] *आक्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* एनुअल रिपोर्ट, 1905–6, पृष्ठ 75।

बिछाये हुए बालू का ढेर जमा था। कनिंघम[1] ने रोहनाला को हिरण्यवती बतलाया है। रोहनाला कुसम्हीनारा के पूर्व और कसया के पश्चिम में है, जो उत्तर से आकर सीधे रामाभार ताल में मिलता है।

कुकुत्था :

मल्लगणराज्य की उत्तरी और दक्षिणी राजधानियों की प्राकृतिक सीमा–विभाजक–रेखा के रूप में कुकुत्था नदी का उल्लेख बौद्ध ग्रंन्थों में किया गया है। दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त में उल्लिखित है कि वैशाली से कुशीनगर के अन्तिम यात्रा में चलते हुए भगवान बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण के पहले इस नदी का जल ग्रहण किया था और स्नान किया था[2] तथा उसे पार कर एक आम्रवन में विश्राम किया था। दीघनिकाय की अट्ठकथा[3] के अनुसार यह आम्रवन इस कुकुत्था नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था। भिक्षु धर्मरक्षित[4] और ए0सी0एल0 कार्लाइल ने इसकी पहचान वर्तमान फाजिलनगर और कुशीनगर के बीच प्रवाहित होने वाली घाघी नदी से किया है। इसमें सदा पानी भरा रहता है। भरत सिंह उपाध्याय[5] और विमलचरण लाहा[6] इसका समीकरण बरही नामक छोटी सी नदी से करते है जो कसया से 8 मील नीचे छोटी गण्डक में मिलती है। कनिंघम[7] ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कसया से 8 मील नीचे जाकर यह नदी छोटी गण्डक के दक्षिणी छोर पर मिलती है। उन्होने इसे आधुनिक बाड़ी या बरही या बान्धी नाला कहा है।

---

1 *आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* रिपोर्ट, 1861–62, वाल्यूम I।

2 *दीघनिकाय,* अट्ठकथा 2, 3।

3 तत्रैव, पृष्ठ 130।

4 धर्मरक्षित, *संयुक्त निकाय* (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 10 ; धर्मरक्षित, *कुशीनगर का इतिहास,* पृष्ठ 30।

5 उपाध्याय, भरत सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 134, 367।

6 लाहा, विमलचरण, *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल,* पृष्ठ 150।

7 कनिंघम, ए0, *ऐंशिएंट ज्याग्राफी आफ इण्डिया,* पृष्ठ 367।

मही :

डा0 भरत सिंह उपाध्याय[1] और भिक्षु धर्मरक्षित[2] ने इसकी पहचान वर्तमान बडी गण्डक से की है किन्तु डा0 विमल चरण लाहा[3] ने इसे गण्डक की एक सहायक नदी बताया है। संयुक्त निकाय[4] में इसकी गणना पंच महानदियों–गंगा, यमुना, अचिरावती (राप्ती), सरभू (सरयू) और मही में की गयी है। अंगुतर निकाय[5] और मिलिन्दपञ्हों[6] में भी इस नदी का उल्लेख है। सुत्त निपात[7] के धनिय सुत्त से ज्ञात होता है कि एक बार भगवान बुद्ध महीनदी के किनारे खुली कुटी में रात भर के लिए ठहरे थे।

सोना नदी :

दीघनिकाय[8] में कहा गया है कि पावा (वर्तमान फाजिलनगर) से कुछ दूरी पर मार्ग में भगवान बुद्ध ने आनन्द से पानी मंगाकर जलपान किया था। आनन्द ने जिस छोटी नदी से जल लाया था, उसकी पहचान धर्मरक्षित[9] तथा ए0सी0एल0 कार्लाइल[10] वर्तमान सोना नामक नदी से की है। कार्लाइल ने इसके तीन नाम बताये है–सोना, सोनवा, अन्हया। यह नदी सठियॉव गाँव से कुछ मील पश्चिम में स्थित हैं। अब उसका प्रवाह–स्थान मात्र अवशेष है।

---

1 उपाध्याय भरत सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 132।

2 धर्मरक्षित, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10।

3 लाहा, विमरण चरण, *इण्डोलॉजिकल स्टडीज,* भाग 3, पृष्ठ 100।

4 *संयुक्त निकाय,* भाग 2, पृष्ठ 823।

5 *अंगुत्तर निकाय,* जिल्द 4, पृष्ठ 101।

6 *मिलिन्दपन्हों,* पृष्ठ 73 (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

7 उपाध्याय, भरत सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 132।

8 दीघनिकाय, अट्ठकथा, 2।3।

9 धर्मरक्षित, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 28।

10 ए.एस.आई.आर, वाल्यूम 22, पृष्ठ 30, 31।

झील और तालाब :

प्राकृतिक भूगोल के निर्माण में भूगर्भ की आन्तरिक कियाएं प्रभावी होती है। भूगर्भ में विद्यमान विभिन्न आर्द्र एवं आग्नेय तत्वों के कारण स्थान–स्थान पर झीलों, तालाबों और कुण्डों का निर्माण हो जाता है। इनके निर्माण की प्रकिया शनै–शनै सहस्रो वर्षो में एकत्रित उद्वेग से अचानक होता है जिसका ऐतिहासिक काल निर्धारण भूगर्भ विज्ञान अथवा पुरा प्राकृतिक विज्ञान के द्वारा ही किया जा सकता है।

झील धरातल पर फैले हुए गड्ढे है, जिनमें जल भरा होता है। सामान्य रूप से छोटे गड्ढों को पोखर और इससे कुछ बड़ो को तालाब और इनसे बड़ो को झील कहा जाता है। अतः झील जल के वे स्थिर भाग है जो चारों तरफ से स्थल खण्डों से घिरे होते है। दूसरे शब्दों में झीलें भूपटल के वे आन्तरिक जलाशय है, जो विभिन्न आकार, विस्तार और गहराई के चट्टानी बेसिनों में बन जाते है।

झीलो की उत्पत्ति के लिए किसी पूर्व स्थित गड्ढे की उपस्थिति पानी को एकत्र होने के लिए जरूरी होता है। इसके अलावा अधोभौमिक जल–तल की उपस्थिति धरातल के नजदीक या गड्ढे के तल से ऊँची होना आवश्यक होता है जिससे जल की पूर्ति होती रहे। पर्याप्त मात्रा में जल की प्राप्ति या तो बरसा के माध्यम से या झील में गिरने वाली नदियों द्वारा जरूरी होती है क्योंकि कुछ नदियों का उद्भव झीलों से भी होता है। जल आपूर्ति के अतिरिक्त खाद्य समाग्री के स्रोत होने के कारण इन झीलों का आदिमानव के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था।

कुशीनगर जनपद में कोई बड़ी झील नहीं है जिसका उल्लेख किया जा सके परन्तु जल जमाव हेतु बड़ी संख्या में गडढे मिलते हैं, जहां वर्षा का जल बड़ी मात्रा में एकत्र हो जाता है। पानी के बाहर निकलने का कोई रास्ता न होने कारण इनका आकार बढ़ता गया और कालान्तर में ये विशाल ताल बन गये। तालों के अतिरिक्त कुछ छोटी मोटी झीलें भी है। ताल और झील नदियों के छोड़नों से

या भौगर्भिक कारणों से पृथ्वी के दब जाने से बने हैं।[1] इनका जल गर्मियों में कम हो जाता है और किसी किसी का कुछ भाग सूख जाता है।

जनपद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ताल रामाभार ताल है, जो कसया के दक्षिण लगभग एक किमी दूर कसया—देवरिया मार्ग के पश्चिम में स्थित है। गर्मियों मे यह क्षीण होकर लम्बाई में लगभग एक किमी0 तथा 180 मी0 चौड़ा रह जाता है, परन्तु बरसात में खनुआ नदी की बाढ़ से इस ताल का विस्तार दूना बढ़ जाता है। कभी कभी इसका पानी कसया को चारों तरफ से घेर कर उसको टापू बना देता है। जनश्रुतियों के अनुसार इस ताल का नाम कोसल के राजा राम के नाम पर पड़ा है। इसके ही किनारे कुशीनगर के मल्ल राजाओं का मुकुटबन्धन होता था मल्लों द्वारा इसी के किनारे भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष पर स्तूप बनवाया गया था जिसका भग्नावशेष आज भी रामभार स्तूप के नाम से विद्यमान है। इसका उपयोग सिंचाई और मछलियों के लिए किया जाता है। जनपद के अन्य झीलों में कुसेहर ताल जो हाटा तहसील में धारा के पास है तथा तमकुहीराज तहसील में तमकुही के दक्षिण—पूर्व में एक विस्तृत गडढ़ा है जो चखनी ताल कहलाता है जिसमें बरसात में अधिक मात्रा में पानी इकट्ठा हो जाता है उल्लेखनीय है। जनपद में तालों की संख्या कम होने का प्रमुख कारण है जनपद में नदियों की कमी। फिर भी छोटी गण्डक और बड़ी गण्डक के छोड़नों से कही—कहीं झील बन गये है। जनपद में तालाबों की संख्या भी नगण्य है और इनका कोई उल्लेखनीय योगदान भी नहीं है।

भू—गर्भ एवं खनिज :

भू—गर्भ शास्त्र वह विज्ञान है जो पृथ्वी के विगत इतिहास का अन्वेषण करता है। इसके द्वारा धरातल पर होने वाले परिवर्तनों को ठीक से समझने में मदद मिलती है। यह उन चीजों का भी अन्वेषण करता है जिनसे ब्रह्माण्ड में ग्रहों का स्वतंत्र इकाई के रूप मे निर्माण हुआ। भू—गर्भ विज्ञान का पुरातत्व से बहुत गहरा सम्बंध है। भू—गर्भ एवं मानव इतिहास के बीच का समय पुरात्व के परिधि में आता है। भू—गर्भ शास्त्र का जहां समापन होता है वहीं से पुरातत्व का प्रारम्भ होता है। ये

[1] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 14।

पृथ्वी के इतिहास के दो भिन्न काल है और समय के एक ही पैमाने के द्वारा नही मापे जा सकते है। इतिहास के वर्षो से भिन्न भू–गर्भीय वर्ष कई मिलियन वर्षो से मिलकर बना है। यह मिलियन वर्ष वह न्यूनतम समय है जो भू–गर्भीय घटनाओं को एक आकार लेने में लगा है। जहां हमारे ग्रहों के भू–गर्भीय इतिहास का अन्तिम अध्याय समाप्त होता है वहां मानव इतिहास, आद्यैतिहास और पुरातत्व प्रारम्भ होता है। स्तरीकरण का नियम पुरातत्व ने भू–तत्व विज्ञान से ही लिया है। संक्षेप में इसका अभिप्राय है कि नवीन सामग्री का निक्षेप (जमाव) पुरातन सामग्री के ठीक ऊपर होता है। भू–तात्विक जमावों के साथ प्राप्त मानवकृत पुरा–पाषाणिक औजारों एवं पुरातत्व की दृष्टि से उपयोगी अन्य पुरावशेषों की तिथियां सौर वर्षो में निश्चित करना आसान नहीं है। इसीलिए इनकी तिथि भू–तात्विक कालों में निर्धारित की जाती है। पुरा–पाषाणिक मानव का सांस्कृतिक विकास जिन परिस्थितियों में हुआ, उसकी समग्र जानकारी प्राप्त करने का भू–तत्व विज्ञान एक सशक्त माध्यम है।

भू–गर्भीय रूप से उत्तर भारत का मैदान संवेदनशील नही है। पूर्ववर्ती टर्शियरी युग में वहां एक गहरा बेसिन था जो नदियों द्वारा लाए गए मलबों से भर गया और बाद में जलोढ़ के रूप में ऊपरी और बाद के टर्शियरी द्वारा पूरा कर दिया गया।

कुशीनगर जनपद सिंधु–गंगा मैदान के जलोढ़ मिट्टी के महीन कणो से निर्मित एक लघु भाग है। इस जलोढ़ का जमाव हिमालय के ऊपर उठने के उपरान्त प्रारम्भ हुआ जो प्लीस्टोसीन युग से लेकर अब तक जारी है। जलोढ़ की एकदम ठीक–ठीक मुटाई ज्ञात नही है। जनपद का उत्तरी भाग तराई क्षेत्र के समीप स्थित है और यह रूखे पदार्थ के उपर महीन मिट्टी के परत की अधिकता से पहचाना जाता है।

जलोढ़ में बालू, सिल्ट, क्ले और कंकड़ विभिन्न अनुपात में मिले होते है। जलोढ़ का जमाव दो प्रकार का है :–बांगर अथवा पुराना जलोढ़ जो काले रंग का होता है, मध्य से ऊपरी प्लीस्टोसीन युग से सम्बन्धित है। सामान्यतः यह बाढ़ के स्तर के ऊपर थोड़ा सा उठा हुआ चौरस जमीन होता है ठोस कण एवं अशुद्ध

कैल्सियम कार्बोनेट के कण (कंकड़) बांगर के बनावट में पाए जाते है। खादर या नव जलोढ़ का काल ऊपरी प्लीस्टोसीन युग से अब तक माना गया है। यह हल्के रंग का ककड एवं रेह से मुक्त होता है।

खनिज :

जनपद की भूमि हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा लायी गयी नर्म और उपजाऊ मिट्टी की तहो से बनी है। इसलिए इसके भूगर्भ में खनिज पदार्थों की रचना कम हुयी है। अतः जनपद में मध्यम या विस्तृत आकार की कोई खान नहीं है जिससे खनिज पदार्थ प्राप्त किया जा सके। अभी जनपद का समुचित रूप से भौगर्भिक रूप से निरीक्षण नहीं हुआ है। सम्भव है आगे चलकर नये खनिज पदार्थों का पता लग जाये। जनपद में प्राप्त खनिजों में कंकड़, बालू, साल्ट पीटर तथा क्ले का उल्लेख किया जा सकता है।

कंकड़ :

यह उबड खाबड़ पत्थर के आकार का बालू चूना मिश्रित अशुद्ध पदार्थ होता है । यह जनपद के कुछ हिस्सें में कही–कही यथा कसया हाटा मार्ग पर पगरा गाँव में, कप्तानगंज हाटा मार्ग पर मथौली में और चंडकी देवी के स्थान के पास पाया जाता है। यह सड़क निर्माण और चूना बनाने के काम आता है।

बालू :

यहॉ कि नदियों में पर्याप्त मात्रा में बालू पाया जाता है, जो भवन निर्माण के काम में आता है। यह पडरौना तहसील में बाँसी नदी के किनारे बाँसी घाट के पास, हाटा तहसील में छोटी गण्डक के किनारे हेतिमपुर में तथा तमकुहीराज तहसील में सेवरही के उत्तर बाँसी नदी के किनारे शिवा घाट के पास निकाली जाती है। यहाँ पर बालू पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने के कारण इसे जनपद के बाहर भी भेजा जाता है। इससे काफी लोगों का जीविकोपार्जन चलता है।

शोरा (शाल्टपीटर) : यह एक प्रकार का सफेद पाउडर होता है जिसका उपयोग भोजन को संरक्षित करने, दियासलाई बनाने तथा गन पाउडर बनाने के

लिए होता है। तमकुहीराज तहसील में सेवरही के पास कच्ची अवस्था में इसका निर्माण अधिक मात्रा में होता है।

चिकनी मिट्टी :

यह एक प्रकार की सख्त और चिपचिपी मिट्टी है, जो पकाने पर कठोर हो जाता है। यह जनपद में लगभग हर जगह पायी जाती है। इसका उपयोग ईटें, खिलौने और बर्तन बनाने के लिए होता है।

जनपद कुशीनगर भूकम्प की दृष्टि से मध्यम तीव्रता वाले चतुर्थ जोन में पड़ता है। यहाँ हाल में कोई बड़ा विनाशकारी हलचल और भूमिगत परिवर्तन नही हुआ है। 4 जनवरी 1894 को गोरखपुर में जो झटका महसूस किया गया था, उससे नाम मात्र का नुकसान हुआ था। यह जनपद विशाल हिमालय की सीमा क्षेत्र से दूर नही है। वहां जब कोई बड़ा भूकम्प आता है तो उसका प्रभाव जिले में भी महसूस किया जाता है।

जलवायु :

सामान्यतया वर्ष भर में गर्मी, जाड़ा, वर्षा एवं हवा की औसत दशा को जलवायु कहते हैं। कुशीनगर जनपद की जलवायु समशीतोष्ण है। यहां न तो गर्मियों में प्रदेश के पश्चिमी जिलों की भॉति असह्य गर्मी और न जाड़ों में कड़ाके की ठंढी पड़ती है। इसका कारण है हिमालय की निकटता और वर्षा का आधिक्य। समुद्र तट से जनपद की दूरी भी पर्याप्त है। तराई क्षेत्र से नजदीक होने के कारण यहां की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक नहीं है।

जलवायु की दृष्टि से कुशीनगर जनपद को तीन भागों मे बाँटा जा सकता है[1]–

1. उत्तर का तराई वाला भाग
2. मध्य का भाग और
3. दक्षिण का भाग

[1] शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 17।

1. उत्तर का तराई वाला भाग :

कुशीनगर जनपद हिमालय पर्वत की तराई में बसा हुआ है।[1] अतः पूरे जनपद की जलवायु सर्द और तर है किन्तु उसमे भी जनपद के उत्तरी भाग में ठंढ, वर्षा अधिक होने के कारण जलवायु अधिक नम एवं तर है। यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नही होता है। जंगलों के कटान से अब यह क्षेत्र शुष्क और स्वास्थ्यकर हो रहा है।

2. मध्य का भाग :

इस भाग में पडरौना तहसील का दक्षिणी भाग, तमकुहीराज तहसील का उत्तरी भाग तथा हाटा तहसील का मध्यवर्ती भाग आता है। यहा की जलवायु अच्छी है तथा सभी प्रकार की फसलें पैदा होती है।

3. दक्षिणी भाग :

जनपद का दक्षिणी भाग जलवायु की दृष्टि से अच्छा है। बर्षा, गर्मी एवं जाड़ा की औसत दशा सम–सामान्य रहती है। वातावरण की दृष्टि से जिले में चार प्रकार की ऋतुएँ पायी जाती है। मध्य नवम्बर से फरवरी तक सर्दी, मार्च से मध्य जून तक गर्मी, मध्य जून से सितम्बर तक बरसात (दक्षिण पश्चिम मानसून) और अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक मानसूनोत्तर ऋतु रहती है।

वर्षा :

जनपद में सामान्य वर्षा लगभग 1200 मी.मी. तथा वास्तविक वर्षा लगभग 625 मी.मी. तक होती है। वर्षा यहां मुख्यतया मानसूनी हवाओं से होती है, जो सामान्यतया जून के द्वितीय सप्ताह में जनपद में प्रवेश करती है और अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक लगातार रहती है। जुलाई और अगस्त में अत्यधिक वर्षा होती है। जाड़ में भी यहाँ थोड़ी बहुत बिखरे रूप में वर्षा हो जाती है। यह वर्षा पूस के अन्त में होती है। कभी–कभी माघ के अन्त में और फागुन के प्रारम्भ में भी वर्षा होती है।

---

[1] शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 17।

तापमान :

वर्षा काल को छोडकर यहॉ की जलवायु अपेक्षाकृत शुष्क रहती है। फरवरी के बाद से जिले का तापमान तेजी से बढने लगता है और मई तथा जून का महीना सबसे गर्म होता है। जिले का अधिकतम तापमान 44^0C और औसत तापमान लगभग 25^0C तथा अधिकतम औसत तापमान 38^0C हो जाता है। कभी–कभी तापमान 46^0C तक भी पहुँच जाता है। गर्मी के दिनों में 2 या 3 सप्ताह सूखी गर्म पछुआ हवा चलती है, किन्तु वह प्रदेश के पश्चिमी भागों जैसी धूल युक्त नहीं होती। गर्मियों में यहाँ कभी–कभी आधियां भी आती है। मध्य नवम्बर से तापमान तेजी से गिरने लगता है। दिसम्बर और जनवरी महीने में सर्वाधिक ठंढ पडती है। समान्यता जनवरी का महीना सबसे ठण्डा रहता है, जब अधिकतम औसत तापमान 23^0C और न्यूतम औसत तापमान 9^0C तक पहुंच जाता है। जनपद का वार्षिक तापान्तर 11.79^0C है। सबसे अधिक तापान्तर 13.62^0C जनवरी के महीने में तथा सबसे कम 6.34^0C जून के महीने में पाया जाता है। जाड़े में कभी–कभी पश्चिमी वायुमण्डलीय व़िक्षोभ से उत्पन्न ठण्डी धाराओं के चलने से जनपद का तापमान 1 अथवा 2^0C तक गिर जाता है तथा घना कोहरा पड़ने लगता है। इसी कारण शीतलहर से पूरा जनपद प्रभावित रहता है।

आर्द्रता :

दक्षिणी पश्चिमी मानसून के समय जनपद की सापेक्षिक आद्रता सामान्यतया 70% तक पहुँच जाती है। जाड़े के महीनों में आर्द्रता घट जाती है। ग्रीष्म ऋतु में विशेषतः दोपहर के बाद हवा बहुत शुष्क हो जाती है।

बादल :

वर्षा ऋतु के दौरान और शरद ऋतु में दिन के कुछ समय जब पश्चिमी विक्षोभ समूह में जनपद से होकर गुजरता है तब आकाश में अत्यधिक मात्रा में बादल होते है अथवा बादलों से ढका होता है। वर्ष के बाकी समय में आकाश अधिकांशतः स्वच्छ अथवा हल्का बादल युक्त होता है।

पवन :

जनपद में साधारणतः हल्की हवाएँ चलती है जो ग्रीष्म और मानसून महीने के बाद तेज हो जाती हैं। शरद ऋतु के दौरान हवाएं अधिकांशतः पश्चिम से बहती है। पूर्वी हवा ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में चलती है। वर्ष के अधिकांश दिनों में यहाँ पर पूर्वी पवन बहता है जिसमें बराबर नमी बनी रहती है। अक्टूबर में हवा हल्की होती है और वह या तो पश्चिम से अथवा उत्तर–पूर्व से पूर्व की ओर बहती है। नवम्बर से अप्रैल के बीच हवा मुख्यतः पश्चिम से उत्तर–पश्चिम की ओर बहती है। अक्टूबर के प्रारम्भ में वायु दाब 1002.6 मिलीबार रहता है, लेकिन दिसम्बर व जनवरी में यह 1008.7 मिलीबार हो जाता है। मई में 995.4 मिलीबार तथा जुलाई में 991.4 मिलीबार पाया जाता है। हवा की सामान्य गति 3–7 किलोमीटर प्रति घंटे रहती है।

विशेष मौसमी घटनाएँ :

शरद ऋतु में पश्चिमी विक्षोभ, जनपद के मौसम को प्रभावित करता है और तब बवंडर सहित् बिजली का गिरना, आँधी और ओले पड़ना जैसी घटनाएं कभी–कभी होती रहती है। कभी–कभार ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के बाद बवण्डर भरी आँधी चलती है। शरद ऋतु में विशेष रूप से जनपद के उत्तरी भाग में कभी कभी घने कोहरे पडते हैं।

वनस्पतियाँ :

किसी क्षेत्र की वनस्पति पर उसकी भौगोलिक स्थिति और जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता है। उक्त दोनों दृष्टियों से कुशीनगर जनपद का क्षेत्र उपयुक्त है। विशाल जलोढ़ मैदान जैसा कि आज हमें देखने को मिलता है, वह दो हजार वर्ष पूर्व से लेकर आज तक वनों के कटान का परिणाम है। आज जहाँ खाली मैदान है वहाँ कभी प्रचुर मात्रा में घने और आर्द्र शाल वृक्ष के जंगल थे।[1]

[1] स्टैबिंग, 1992, कोल्बर, 1937।

प्रारम्भिक दिनों में कुशीनगर जनपद का क्षेत्र वनों से ढका था। पारपरिक साहित्य इस क्षेत्र में घने जंगल होने का साक्ष्य प्रस्तुत करते है। शतपथ ब्राह्मण[1] में उल्लेख है कि सरस्वती और सदानीरा (वर्तमान गण्डक) के बीच का क्षेत्र घने जंगलों से आवेष्ठित था और जंगलों को जलाने के बाद भी यहॉ आर्यीकरण व कृषि कार्य सम्भव हुआ। ह्वेनसांग के विवरण[2] से ही पता चलता है कि कुशीनगर का क्षेत्र वनों से आच्छादित था तथा इनमें जंगली जानवरों और डाकुओं की भरमार थी। कुशीनगर के दक्षिण–पश्चिम में उसके समीप ही मल्लों का उपवतन नामक शालवन था जो हिरण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था।[3] इस उपवतन शालवन में ही भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था। इसी शालवन में बुद्ध ने कुशीनारा सुत्त का उपदेश दिया था।[4] कुशीनारा के समीप बलिहरण वनसण्ड नामक वन या वनखण्ड था। भगवान बुद्ध ने यहॉ कई बार निवास किया था। मज्झिमनिकाय के किन्ति सुत्तन्त तथा अंगुतरनिकाय के दो कुशीनारा सुत्तों का उपदेश इसी वनखण्ड में दिया गया था।[5]

सघन उपनिवेशन और वनों की कटाई से मानव और वनस्पति के बीच संतुलन स्थापित हुंआ। मध्यकाल के दौरान कुछ क्षेत्र कृषि योग्य बना, किन्तु स्थानीय राजपुत प्रमुखों के बीच आपसी युद्ध के कारण दुबारा जंगल में बदल गया ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक दिनों में जनपद के उत्तरी भाग का कुछ हिस्सा कंटीले जंगलों से ढँका था। नेपाल से लगी उत्तरी सीमा अबाध रूप से जंगलो की श्रृंखलाओं से परिपूर्ण था। पडरौना वनपट से आवेष्टित था और दक्षिण में भी छोटे–छोटे उपवतन यत्र–तत्र फैले हुये थे, परन्तु ईष्ट इंण्डिया कम्पनी का अधिकार

---

[1] *शतपथ ब्राहम्ण,* 1 । 4, 14, 15, 16 ।

[2] वरूण, डी0पी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 13 ।

[3] *सारत्थप्पकासिनी,* जिल्द 1, पृष्ठ 222 ।

[4] *अंगुत्तर निकाय,* जिल्द 2, पृष्ठ 238 ।

[5] उपाध्याय, भारत सिंह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 321 ।

स्थापित होते ही प्राकृतिक वनों एवं कानन गृहों का परिदृश्य बदलने लगा और वन, उपवन तथा अमराईयॉ काट कर धरती को नग्न कर दिया गया।[1]

वर्तमान समय में जनपद में वन का क्षेत्रफल 816 हेक्टेयर है जो जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 2,84,908 हेक्टेयर का 0.28 प्रतिशत है।[2] जबकि प्रदेश में वनों का प्रतिशत 17.55 है। इस प्रकार जनपद में वनों का क्षेत्रफल अत्यल्प है जबकि पड़ोसी जनपद गोरखपुर में 33,604 हेक्टेयर तथा महाराजगंज में 22,265 हेक्टेयर वन पाया जाता है।[3] जनपद में उपलब्ध जंगल इमारती लकड़ी एवं ईधन के प्रयोग में आने वाली लकडियों के है। सामाजिक वानिकी विभाग द्वारा वृक्षारोपण कार्यक्रम अभियान के तहत चलाया जा रहा है। इन कार्यक्रमों से वन के क्षेत्रफल में अगले कुछ वर्षों में वृद्धि की संभावना है।

जनपद में विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा पानी के अधिकता के कारण सिंन्ध गंगा के मैदान विशेषकर पूर्वी उत्तर प्रदेश में पाये जाने वाले सभी प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। जनपद में बड़े जंगल बहुत कम है। मुख्यतः जनपद के तराई क्षेत्र में जंगल पाये जाते है। खड्डा, विशुनपुर, नेबुआ नौरंगिया विकास खण्ड में जंगलो की बहुलता है। जंगल की इमारती लकड़ियों में शाल और शीशम प्रमुख हैं। वृक्षों में सबसे अधिक आम के बगीचे मिलते है जो फल और लकड़ी दोनों दृष्टियों से लोगों को बहुत प्रिय है। नालों के किनारे नीची भूमि में, जो बरसात में जल मग्न हो जाती है, जामुन आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इमली और जामुन के वृक्ष अधिकांशतः सड़कों के किनारे मिलते है। इसी प्रकार बगीचों मे कटहल के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इसका वृक्ष छायादार होता है और फल बड़े आकार का होता है। आँवलां, बेल तथा महुआ के वृक्ष भी बगीचों मे पाये जाते हैं। वर्तमान में बागों के किनारे तथा खेतों के मेड़ पर बहुत से यू0के0 लिप्टस के वृक्ष भी लगा दिये गये हैं। शाल, शीशम आदि इमारती लकड़ी के वृक्ष सड़कों के किनारे

---

[1] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 18।

[2] *समाजार्थिक समीक्षा*, जनपद कुशीनगर, 2000 – 2001, पृष्ठ 9।

[3] सामाजार्थिक समीक्षा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 9।

तथा कहीं–कहीं बागों मे पाया जाता है। बेर, अमरूद और लीची के बगीचें भी कहीं–कहीं पाये जाते हैं। नीम का वृक्ष पूरे जिले में पाया जाता है। बबूल और खैर कहीं–कहीं पाये जाते हैं। बॉस प्रायः गॉवों के पास देखने को मिलता है। घर पर छप्पर डालने के फूस बहुतायत से मिलते हैं। बड़े वृक्षों में बरगद, पीपल, पाकड़, गूलर, सेमल आदि अधिक मिलते हैं। झाड़ियों में जो सामान्यतः यहाँ उगती हैं – ऐल, अकोला, वन निबुआ, वन तुलसी, बेर, झऊ, मुसाली, रोहिनी, बॉस, बेंत, मदार, करौंदा, नरकट, पतहर, खर, कुस और सर्पगन्धा है। दूधी–बेल, गुरिच, हरिजोर और कालीबेल जनपद में प्राप्त होने वाली प्रमुख लताएँ हैं। घांसों मे मुख्यतः नरकुट, केन, दूब, मोथा, जनेवा, विरल, भांग, बथुआ और कुस जिले में हर जगह मिलता है।

इसके अतिरिक्त उद्यानों, बागों, वृक्षों एवं झाड़ियों के अन्तर्गत 1,927 हेक्टेयर क्षेत्र आता है।[1] आम, अमरूद, जामुन, महुआ, केला, पपीता, लीची एवं कटहल यहाँ का मुख्य फल है, जिनके बाग जिलें में जगह–जगह पाये जाते हैं।

कृषि तथा सिंचाई के साधन :

जनपद में कृषकों के आय का प्रमुख स्रोत खेती है तथा लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। यद्यपि कि जनपद का कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 2,84,908 हेक्टेयर है, किन्तु कृषि गणना वर्ष 1995–96 के अनुसार जोतों का कुल क्षेत्रफल 2,23,103 हेक्टेयर (जनपद के कुल क्षेत्रफल का 58.49 प्रतिशत) तथा कुल जोतों की संख्या 4,15,442 है, जो कमशः प्रदेश में जोतों के क्षेत्रफल का 1.24 प्रतिशत तथा प्रदेश के जोतों की संख्या का 2.06 प्रतिशत है। जनपद में प्रति जोत औसत 0.53 हेक्टेयर तथा प्रति परिवार औसत 0.63 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि है।[2] भू–लेख वर्ष 1998–99 के अनुसार जनपद के कुल कृषि योग्य भूमि 2, 26, 635 हेक्टेयर थी, जिसमें से बोया गया क्षेत्रफल 2,25,382 हेक्टेयर था जो कृषि

---

[1] *सामाजार्थिक समीक्षा,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 9।

[2] तदैव।

योग्य भूमि का 99.44 प्रतिशत तथा प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 79.10 प्रतिशत है।[1] सन्दर्भित वर्ष में जनपद में प्रति हेक्टेयर उर्वरकों का प्रयोग 132.2 कि0ग्रा0 रहा जो प्रदेश (116.3 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर) की तुलना में अधिक है। यहाँ मुख्य रूप से बलुई, मटियार, दोमट तथा भाट मिट्टी पायी जाती है। ऋतु की दृष्टि से जनपद में मुख्यतः तीन प्रकार की फसलें पैदा होती हैं –

1. रबी।
2. खरीफ और
3. जायद।

1. रबी :

लगभग 1,26,455 हेक्टेयर क्षेत्र में रबी की फसल बोयी जाती है। इसकी बुवाई अक्टूबर–नवम्बर से प्रारम्भ होती है तथा मार्च–अप्रैल तक काट ली जाती है। रबी की प्रमुख फसलें गेहूँ, जौ, चना, मटर, लाही/सरसों आदि हैं।

2. खरीफ :

खरीफ की खेती लगभग 92,397 हेक्टेयर भूमि पर होती हैं। इसकी बुवाई जून, जुलाई में होती है तथा अक्टूबर–नवम्बर तक काट ली जाती है। खरीफ की प्रमुख फसलें धान, मक्का, अरहर, मूंग, उडद, ज्वार, बाजरा आदि हैं।

3. जायद :

जायद की खेती लगभग 7,293 हेक्टेयर भूमि पर की जाती है। यह मुख्यतः मार्च–अप्रैल में बोयी जाती है और जून–जुलाई में काट ली जाती है। जायद की प्रमुख फसलें ककरी, खरबूज, तरबूजा, शकरकंद आदि हैं।

गन्ना और आलू जनपद की प्रमुख वाणिज्यिक फसलें हैं। मीलों के नियमित रूप से न चलने, गन्ने के क्रय में अनियमिता तथा समय से उसका भुगतान न होने के कारण किसानों में गन्ने की खेती के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है। इनके अतिरिक्त आलू, परवल, गोभी, टमाटर, बैगन, कद्दू, लौकी, करैला,

---

[1] पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 11।

गाजर, मूली, प्याज, लहसुन, मिर्च, हल्दी, अदरक, धनियाँ आदि साग–सब्जियॉ भी उगायी जाती हैं।

कृषि उपज के संग्रहण/विपणन के लिए जनपद में एक मण्डी समिति तथा दो कय–विकय सहकारी समितियॉ कार्यरत हैं।

सिंचाई के साधन :

जनपद में सिंचाई के समस्त साधन जैसे : नहरें, नलकूप, कुएँ एवं तालाब उपलब्ध हैं, परन्तु नहरों का जाल विछा होने के कारण जनपद में सबसे अधिक सिंचाई नहरों द्वारा ही किया जाता है। इसके बाद कमशः नलकूप, कूप एवं तालाबों द्वारा सिंचाई किया जाता है (तालिका सं0–1)। जनपद में सकल सिंचित क्षेत्रफल 2,23,804 हेक्टेयर तथा शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 1,86,377 हेक्टेयर है।[1]

मार्च 2000 की स्थिति के अनुसार जनपद में नहरों की कुल लम्बाई 1,491 किमी0 है, जिनमें अधिकांश गण्डक परियोजना के अन्तर्गत आते हैं। इनके अतिरिक्त 129 राजकीय नलकूपों, 92 निजी नलकूपों तथा 8,888 भू–स्तरीय पम्प सेटों एवं अन्य साधनों द्वारा सिंचाई का कार्य पूरा किया जाता है।

तालिका संख्या 1

स्रोतवार सिंचाई के साधनों द्वारा सिंचाई का तुलनात्मक विवरण[2]

क.स.	सिंचाई के स्रोत	सिंचित क्षेत्रफल, वर्ष 1998–99 जनपद कुशीनगर	
		हेक्टेयर	प्रतिशत
1	2	3	4
1	नहर	77,841	53.2
2	नलकूप	59,390	40.6
3	कुँआ	7,847	5.4
4	तालाब, झील/पोखरि	58	0.00
5	अन्य	1,241	0.8

[1] *विकास पुस्तिका,* कुशीनगर, 2001–2002, पृष्ठ 37।

[2] सामाजार्थिक समीक्षा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 16।

बडी गण्डक तथा छोटी गण्डक जनपद की प्रमुख नदियॉ हैं, जो अपनी शाखाओं के साथ फैली हुयी हैं। इन नदियों में लगभग प्रतिवर्ष बाढ़ आती है जिससे कृषि को भारी क्षति पहुॅचती है। इसके अतिरिक्त वर्षा के समय पानी का जल जमाव होने से काफी क्षेत्र प्रभावित होता है।

जीवजन्तु

पहले जनपद में विविध प्रकार के जंगली जानवर, पक्षी और रेंगने वाले जन्तु बड़ी संख्या में पाये जाते थे। 1858 ई0 तक गोरखपुर से पडरौना जाने वाले डाकियों का रास्ता बाघ रोक देते थे। कृषि के लिए एवं अन्य उद्देश्यों से जंगलों के कटाव तथा बेरोकटोक शिकार के चलते जनपद के बहुत से जंगली जानवर वस्तुतः लुप्त हो चुके हैं। साथ ही अन्य जीव जन्तुओं की संख्या में भी भारी कमी आयी है।

वर्ष 1997 की पशु गणना के अनुसार जिले में कुल पशुओं की संख्या 5,23,949 थी।[1] गाय, बैल, भैस, घोड़े, टट्टू, भेड़, बकरी, सुअर, गधे, कुत्ते आदि जनपद के प्रमुख पालतू पशु हैं। बैल हल जोतने और गाड़ी खीचने के काम आता है। गाय और भैस दूध देने वाले पशु हैं। घोड़ और टट्टू से बोझ ढोने और इक्का खीचनें का काम लिया जाता है। भेड़ आर बकरियाँ प्रायः ऊन के लिए पाली जाती हैं, जिससे कम्बल तैयार होता है। इनका गोबर खाद के काम आता है।

इस प्रकार जिले की आर्थिक समस्याओं के समाधान में पशुधन का एक महत्वपूर्ण स्थान के साथ ही पशुपालन कृषि का प्रधान एवं अपरिहार्य अंग है।

जंगली पशुओं की संख्या एवं उनकी प्रजातियाँ इस जनपद में अधिक नही है। बड़े मांसाहारी पशु जैसे चीता, पेन्थर, लेपर्ड नहीं मिलते हैं, लेकिन छोटे मांसाहारी पशु जैसे भेड़ियां, गीदड़, लोमड़ी जंगलों और नदी–नालों के किनारे पाये जाते हैं। घास खाने वाले जानवरों में हिरणों के कुछ प्रकार जो विशेषतः जनपद के उत्तरी भाग में पाये जाते हैं तथा नीलगायें जो वनों के बाहरी भाग, झाड़ियों और बड़े–बड़े बागों में रहती हैं, संरक्षित हैं। जंगली सूअर नदियों के किनारे और तराई

---

[1] *सामाजार्थिक समीक्षा,* पूर्वोद्धृत पृष्ठ, 17।

क्षेत्रों में मिलते हैं। अन्य जगली जानवरों में लंगूर, लाल बन्दर, खरगोश और चूहे प्रमुख हैं। साही प्रायः ऊँचे टीले के आस–पास पाये जाते हैं। कुत्ते जंगली और पालतू दोनो ही अवस्था में मिलते हैं।

पशओं की तरह जनपद में पक्षियों की भी विविधता है। प्रायः जिले में पायी जाने वाली चिड़ियॉ वही हैं, जो आस–पास के जिलों में पायी जाती हैं। कौआ, कोयल और गौरैया सबसे अधिक पायी जाती हैं। तितर, चकोर, बटेर, जलमुर्ग आदि विशेष आकषर्ण के पक्षी हैं। शरद के प्रारम्भ में बहुत से पक्षी हिमालय से मैदानों मे उतर आते हैं जिनमें खंजन प्रसिद्ध है। अन्य पक्षियों में बत्तख, कबूतर, तोता, वनमुर्ग, मुर्गा–मुर्गी, बाज, हारिल, पंडुक, महोख, नीलकंठ, उल्लू, बगुला आदि प्रमुख हैं।

रेंगने वाले जन्तुओं में जहरीले और गैर जहरीले सॉप जैसे करइत, गेहुॅअन, धामिन, कोबरा, डोड़हा, पनईत, नेवला, गिरगिट, छिपकली, बिच्छू प्रमुख है। जलचरों में सूस, घड़ियाल और मगरमच्छ नहीं के बराबर गंडक नदी में मिलते है। जलचरों में मेढक और जोक की भी गणना की जा सकती है। कछुएं और मछलियाँ नदियों, झीलों और तालाबों में पायी जाती हैं। प्रमुख मछलियों में रोहू, भाकुर, टेंगना, बरारी, सौर, वाम, चेलवा, सींगी, झींगा आदि हैं। मछली खाद्य सामग्री का एक महत्वपूर्ण अंग है और बहुत से लोग मछली पकड़ने और बेचने के कार्य में लगे हुए हैं।

भाषा, जाति और धर्म :

जनपद की मुख्य भाषा हिन्दी है। जिले में हिन्दी बोलने वालों की संख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 43,28,254 है, जो कुल जनसंख्या का 97.49 प्रतिशत है। दूसरा स्थान उर्दू का है। उर्दू बोलने वालों की संख्या 1,10,541 है, जो कुल जनसंख्या का 2.49 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त बंगाली पंजाबी आदि भाषाएं बोलने वालों की संख्या अत्यल्प है। जिले में हिन्दू धर्म को मानने वाले लोग सबसे अधिक हैं। इनकी कुल संख्या 16,75,283 है, जो जिले की कुल जनसंख्या का 74.93 प्रतिशत है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त मुस्लिम (24.84 प्रतिशत),

सिक्ख–इसाई (.04 प्रतिशत), बौद्ध (0.16 प्रतिशत) तथा जैन (.02 प्रतिशत) धर्म को मानने वाले लोग भी हैं।[1]

त्यौहार एवंम मेले :

देश के अन्य भागों की भांति इस जनपद में त्यौहारों तथा उत्सवों के मनाने की परम्परा काफी पुरानी है। जिले के प्रमुख त्यौहार–होली, दीवाली, दशहरा, जनमाष्टमी, नागपंचमी, रक्षा बन्धन आदि हैं। मुस्लिम त्यौहारों में मुहर्रम, ईद आदि प्रमुख है। अलग–अलग अवसरों पर मुख्य रूप से तमकुही, शिवाघाट, बाँसी, कुशीनगर, कुबेरस्थान, भिसवा रामपुर में मेला लगता है।

शिक्षा :

किसी क्षेत्र के आर्थिक एवंम सामाजिक विकास के लिए शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण होती है। शैक्षणिक दृष्टि से जनपद कुशीनगर पिछड़ा हुआ है। इस समय जनपद में 1387 प्राथमिक विद्यालय, 146 उच्च प्राथमिक विद्यालय, हाई स्कूल–राजकीय 3, वित्तिय 17 तथा वित्तविहीन 26, इण्टरमीडियट–वित्तीय 37 तथा वित्त विहीन 20, डिग्री कालेज–वित्तीय 4 तथा वित्त विहीन 3 कार्यरत हैं।[2] जिले में नर्सरी स्कूलों का प्रभाव अधिक बढ़ रहा है जिसके कारण छात्रों तथा अभिभावको का झुकाव इनकी ओर अधिक हो रहा है। जनपद के विभिन्न स्थानों पर तीन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान कार्यरत है, जिसमें महिलाओं तथा पुरूषों को विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। जनपद में 1 शिक्षण–प्रशिक्षण संस्थान पडरौना में कार्यरत है, जिसमें पुरूष एवंम महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। जनपद में कोई उच्च तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान न होने के कारण छात्रों को जनपद से बाहर जाना पड़ता है।

जनस्वास्थ्य : किसी भी क्षेत्र के आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। जनपद में विभिन्न संस्थाओं के माध्यम

---

[1] *सांख्यिकीय पत्रिका,* कुशीनगर जनपद 2001, पृष्ठ 33।

[2] *सामाजार्थिक समीक्षा,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 27, 28।

से स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध करायी जाती है। इस क्षेत्र में विशेष सहयोग राज्य सरकार एवं स्थानीय निकायों का रहता है। इस समय जनपद में दो जिला अस्पताल (महिला एवं पुरूष), एक क्षय तथा एक कुष्ठ अस्पताल कार्यरत है। जनपद में 7 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र , 61 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 41 होमियोपैथिक तथा 41 आयुर्वेदिक चिकित्सालय, 1 यूनानी चिकित्सालय, 18 परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण मुख्य केन्द्र तथा 343 उपकेन्द्र स्थापित है।[1]

उद्योग–धन्धे :

जनपद कुशीनगर औद्योगीकरण के क्षेत्र में, जो कि वर्तमान समय में विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार है, अत्यन्त पिछड़ा हुआ जिला है। इसका प्रमुख कारण यह है कि स्वतंत्रता पूर्व यह क्षेत्र अंग्रेजी सत्ता का विरोध करता रहा तथा स्वतंत्र्योत्तर भारत में इस क्षेत्र की राजनीति कॉग्रेसी शासन की प्रमुख धारा से दूर बहुत समय तक समाजवादियों के हाथ में रही। चूँकि किसी भी स्थान क्षेत्र का औद्योगीकरण मुख्यतः वहां पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है और इस रूप में जनपद् कुशीनगर कृषि प्रधान क्षेत्र होंने के कारण यहॉ पर कृषि पर आधारित उद्योग ही विकसित हो पाये हैं।

जनपद कुशीनगर के उद्योगों का विश्लेषण तीन श्रेणियों में कर सकते हैं : –

1. बड़े पैमाने के उद्योग।
2. लघु या छोटे पैमाने के उद्योग तथा
3. कुटीर उद्योग।

चीनी मिलों के सिवाय जनपद में कोई वृहद् उद्योग नहीं है। वर्तमान में जनपद में कुल 9 चीनी मिलें हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है :–

1. द यूनाइटेड सुगर मिल, सेवरही : इसकी स्थापना सन् 1914 ई0 में हुई थी। यह गोरखपुर–सीवान रेलवे मार्ग के किनारे स्थित है। यहाँ मुख्यतः चीनी तथा शीरा का उत्पादन होता है।

[1] पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 28।

2. गनेश्वर सुगर मिल, रामकोला : इसकी स्थापना सन् 1934ई0 में हुई थी। यह गोरखपुर पडरौना रेलवे मार्ग पर स्थित है। यहां भी मुख्यतः चीनी एवंम शीरा का उत्पादन होता है।
3. यू0पी0 स्टेट मिल रामकोला : इसका पुराना नाम खेत्तान सुगर मिल है। इसकी स्थापना सन् 1932 ई0 में हुई थी। यहां मुख्यतः चीनी शीरा एवं खाद का उत्पादन होता है।
4. कानपुर सुगर वर्क्स, कटकुईयाँ : इसकी स्थापना सन् 1933ई0 में हुई थी। इसमें मुख्यतः चीनी व शीरा का उत्पादन होता हैं।
5. यू0पी0 चीनी मिल, खड्डा : इसकी स्थापना भी 1933ई0 में हुई थी। यहाँ चीनी, शीरा व खोईया का उत्पादन होता है।
6. कानपुर सुगर वर्क्स, कप्तानगंज : इसकी स्थापना सन् 1934 ई0 में हुई थी। चीनी व शीरा इसका प्रमुख उत्पादन है।
7. लक्ष्मी देवी सुगर मिल, छितौनी : यह गण्डक के किनारे स्थित है।
8. रामपुर चीनी वर्क्स, पडरौना : यहाँ शीरा, चीनी एवं खाद का उत्पादन होता है।
9. लक्ष्मीगंज में भी एक शुगर मिल स्थापित हैं।

जनपद में एकमात्र मद्य निर्माण शाला कप्तानगंज डिस्टलरी कप्तानगंज है जिसकी स्थापना 1945 में हुई थी। जनपद में एक गन्ना प्रजनन एवं अनुसंधान केन्द्र सेवरही में है जिसकी स्थापना 22 जून, 1975 में हुई थी। यहाँ प्रजनन द्वारा गन्ना की नयी नस्लें तैयार की जाती है।

इन्जीनियरिंग उद्योग :

यह मुख्यतः पडरौना, हाटा, कसया सेवरही, रामकोला, कप्तानगंज, लक्ष्मीगंज तथा खड्डा में विकसित है।

लघु एवं कुटीर उद्योग :

लघु एवं कुटीर उद्योगों में कुक्कुट पालन, रेशम उद्योग, सूत उद्योग, कपड़ा बनाने, कम्बल बनाने, रंगाई–छपाई का कार्य, लोहे के बाक्स, अलमारी, संदूक

आदि समान बनाने का कार्य, भुजिया चावल तैयार करना, चावल मिलें एवं आटा मिलें, मिट्टी के वर्तन बनाना, रस्सी बनाना, जूते बनाना, चटाईयां बनाना, लकड़ी के समान बनाना, सुतली काटना आदि प्रमुख हैं। गन्ने से गुड़ एवं खंडसारी बनाने का उद्योग हर जगह मिलता है। पडरौना में फूल (एक प्रकार की धातु) के बर्तन बनाये जाते है। ईट–भट्टा उद्योग पूरे जिले में मिलता है।

पर्यटन उद्योग से भी आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला है। इस जनपद के प्रमुख पर्यटन स्थल कुशीनगर और पावा हैं।

यातायात के साधन :

किसी भी क्षेत्र के विकास में सड़क यातायात की सुविधाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सड़क परिवहन अवागमन की सुविधा एवंम औद्योगिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इससे माल एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने में काफी मदद मिलती है। सडक यातायात के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों मे उत्पादित वस्तुओं को बाजार तक पहुंचाया जाता है। इतना ही नहीं बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान करने में यातायात की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक विकास की कड़ी में सड़कों के महत्व को ध्यान में रखते हुए विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत सड़कों का अधिकाधिक निर्माण कराने का अनवरत प्रयास जारी है। जनपद कुशीनगर में आवागमन के प्रमुख साधन रेलवें और बस हैं।

वर्ष 1999–2000 के अन्त तक पक्की सड़कों की कुल लम्बाई 1,700 किमी0 थी, जिसमें 1,158 किमी0 लोक निर्माण विभाग द्वारा निर्मित थी।[1] प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत 1000 से अधिक आबादी वाले ग्रामों को पक्की सड़क से जोड़ने का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। जनपद से होकर मात्र एक राष्ट्रीय राज्यमार्ग–28 गुजरता है। राजकीय मार्गों का अभाव है जबकि जिला मार्गों का जाल सा बिछा है।

---

[1] *सांख्यिकी पत्रिका,* पूर्वोद्धृत पृष्ठ 4।

राष्ट्रीय राजमार्ग, 28 :

यह राजमार्ग यातायात की दृष्टि से जनपद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मार्ग है। यह गोरखपुर से होकर जनपद में हाटा तहसील के सुकरौली बाजार से कुछ दूर पहले प्रवेश करती है और हाटा, कुशीनगर, कसया, जोकवॉ, फाजिलनगर, पटहेरवॉ तथा तमकुही–सलेमगढ़ होते हुए बिहार प्रान्त के गोपालगंज जिले में प्रवेश कर जाती है। इस सड़क के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगाये गये हैं। जनपद के प्रमुख जिला मार्ग इस प्रकार है –

1. गोरखपुर–कसया–पडरौना मार्ग।
2. गोरखपुर–कसया–तमकुहीरोड मार्ग।
3. पडरौना–खड्डा–छितौनी मार्ग।
4. पडरौना–रामकोला–कप्तानगंज मार्ग।
5. पडरौना–दुधई–तमकुहीरोड मार्ग।
6. पडरौना–पटहेरवॉ–समऊर मार्ग।
7. पडरौना–कसया–देवरिया मार्ग
8. पडरौना–तुर्कपट्टी–पावानगर मार्ग।
9. कसया–रामकोला मार्ग।
10. कसया–तुर्कपट्टी–सेवरही मार्ग।
11. हाटा–कप्तानगंज मार्ग।
12. हाटा–पिपराइच मार्ग।
13. हाटा–देवरिया मार्ग।

इनके अतिरिक्त फाजिलनगर से बघौच घाट, पावनगर से समउर, तमकुही से समउर आदि मार्ग अन्य अच्छी पक्की सड़कें हैं।

रेलवें :

आवागमन एवं माल ढुलाई के क्षेत्र में भारतीय रेल का प्रमुख स्थान है। जनपद में कुल रेलवे स्टेशनों (हाल्ट सहित) की कुल संख्या 18 है तथा रेलवे लाइन की कुल लम्बाई 177 किमी0 है, जिनमें बड़ी लाइन 14 किमी0 तथा छोटी

लाइन 163 किमी0 लम्बी है।[1] जनपद कुशीनगर में पूर्वोत्तर रेलवे की छोटी लाइन कप्तानगंज से लक्ष्मीगंज, रामकोला, पडरौना, कठकुईयां, दुधई, तमकुही रोड, और तरया सुजान होते हुए बिहार प्रान्त में चली जाती है तथा बड़ी लाइन गोरखपुर से कप्तानगंज खडड्ा तथा पनीहवाँ होते हुए बिहार को चली जाती है।

जनपद में बीस–सूत्री कार्यक्रमों के बढ़ते कदम :

देश तथा प्रदेश के अन्य जिलों की भाँति जनपद कुशीनगर में भी बहुमुखी विकास के अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। कुछ का विवरण इस प्रकार है–

भूमि सुधार योजना :

इसके अन्तर्गत भूमि संरक्षण विभाग द्वारा भूमि सुधार कार्यक्रम चलाकर अकृष्य भूमि को कृषि योग्य बनाना, भूमि को क्षरण से बचाना, नाले के किनारे वृक्षारोपण कराना, कटान से बचाना आदि शामिल है।

रेशम विकास कार्यक्रम :

देश और प्रदेश में रेशम का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। जनपद कुशीनगर की जलवायु रेशम उत्पादन के अनुकूल है। जनपद की मिट्टी बलुई तथा दोमट, दोनों प्रकार की है, जो शहतूत पौधारोपण के अनुकूल है। इन्हीं संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने के लिए जनपद में 15 राजकीय रेशम फार्म विकसित किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत रेशम ग्रामों का विकास किया जा रहा है। उ0 प्र0 कृषि विविधीकरण परियोजना के अन्तर्गत विकास खण्ड दुधई तथा खड्डा में 54.5 एकड़ का शहतूत पौधारोपण 101 कृषकों के यहाँ कराया गया है। इस उद्योग के विशेष लाभ यह है कि यह खेती पर आधारित है, जिसे घरेलू या कुटीर उद्योग के रूप में अपनाया जा सकता है। इस उद्योग के मुख्य घटक जैसे शहतूत वृक्षारोपण, रेशम कीटपालन, धागाकरण, एवं वस्त्र निर्माण के माध्यम से

[1] *सांख्यिकी पत्रिका,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 2।

ग्रामीण अँचलों के भूमिहीन खेतिहर मजदूर एवं अल्प आय परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

स्वतः रोजगार योजना :

इसके अन्तर्गत अनुसूचित जाति के गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले पात्र परिवारों को उनके सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक विकास करने हेतु उनके रूचि एवं आवश्यकतानुसार बैंको के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

समन्वित बाल विकास परियोजना :

यूनिसेफ की रिपोर्ट के आधार पर 2 अक्टूबर 1975 ई0 में समन्वित बाल विकास परियोजना की स्थापना भारत में हुई थी। जनपद कुशीनगर के तीन विकास खण्डों में इस परियोजना के कमशः हाटा, पडरौना, एवं खड्डा में 469 केन्द्र संचालित हैं। वर्ष 2000–01 से जनपद के शेष 11 विकास खण्डों में यह योजना संचालित की जा रही है जिसमें शासन द्वारा 1622 केन्द्र स्वीकृत हैं।[1] इस योजना के माध्यम से आँगनबाड़ी कार्यकमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के महिलाओं एवं गरीब बच्चों को निम्न सेवाएँ प्रदान की जाती हैं–

1. टीकाकरण
2. स्वास्थ्य जॉच
3. संदर्भित सेवाएँ
4. वृद्धि निगरानी एवं पोषाहार
5. स्कूल पूर्व शिक्षा
,6. पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा।

इसके लिए आँगनबाड़ी कार्यकत्रियों तथा सहायिकाओं की नियुक्ति की गई है।

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान : निरक्षरता एक सामाजिक अभिशाप है। जहाँ पूरा विश्व 21वीं सदी में प्रवेश कर रहा है वहीं उत्तर प्रदेश में विशेषकर पूर्वी

---

[1] *विकास पुस्तिका*, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 22।

जनपदों पर निरक्षरता रूपी कलंक का धब्बा लगा हुआ है , जिसे दूर करने के लिए देश एवं परदेश के अन्य जिलों की भॉति जनपद कुशीनगर में भी सम्पूर्ण साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इसका उद्देश्य जनपद के प्रत्येक नागरिक को साक्षर बनाना है। विशेष रूप से 15 से 35 वर्ष के महिला एवं पुरूष निरक्षरों को। एक सर्वे के अनुसार जनपद में निरक्षरों की कुल संख्या 4,28,150 है। स्कूल न जाने वाले बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश दिलाने तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर पंजीकृत करवाना भी इस कार्यक्रम का एक लक्ष्य है।

जनपद में सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के प्रथम चरण के अर्न्तगत 6 विकास खण्डों–सुकरौली, हाटा, कसया, फाजिलनगर, तमकुही, तथा पडरौना में पठन –पाठन का कार्य पूरा किया जा चुका है। द्वितीय चरण के शेष सात विकास खण्डों –सेवरही, दुधई, विशुनपुरा, रामकोला, कप्तानगंज, नेबुआ नौरंगिया एवं खड्डा में धनाभाव के कारण पठन–पाठन का कार्य शुरू नहीं हो सका है।

अन्त्योदय अन्न योजना :

इसके अर्न्तगत गरीबी रेखा के नीचे के पात्र लाभार्थियों को सस्ते दर पर खद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है। लाभार्थियों को प्रत्येक माह 25 किग्रा0 खाद्यान्न, जिसमें गेहू रू0 2 प्रति किग्रा0 तथा चावल रू0 3 प्रति किग्रा0 की दर से उपलब्ध कराया जाता है।

यह योजना अप्रैल 2001 से लागू है। माह अप्रैल 2001 से मार्च 2002 तक कुल 1,11,156.5 कुन्तल खद्यान्न का वितरण किया जा चुका है। जिले में इस योजना से लाभान्वित होने वालों की संख्या 46550 है।[1]

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना :

इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले ग्रामीण परिवारों को समूह में अथवा व्यक्तिगत ऋण दिलाकर लाभान्वित किया जाता है।

---

[1] *विकास पुस्तिका*, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 34।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना :

इस योजना के अर्न्तगत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले शहरी व्यक्तियों को स्वयं का रोजगार करने हेतु अधिकतम 50000 रू0 तक ऋण उपलब्ध कराया जाता है। विभाग द्वारा स्वीकृत ऋण का 15 प्रतिशत धनराशि अनुदान के रूप में दी जाती है।

डवाकुआ :

इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली उन महिलाओं को जो कि समूह में रोजगार करना चाहती है, संगठित किया जाता है तथा उनका सोसाइटी बनाकर बैक के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना के अर्न्तगत स्वीकृत ऋण का 50 प्रतिशत या अधिकतम 1.25 लाख रू0 अनुदान के रूप में दिया जाता है।

सामाजिक वानिकी :

इसके अन्तर्गत समाज के लोगों को वृक्षारोपण के लिए प्रेरित किया जाता है तथा विभाग द्वारा सड़क, नहर, रेल की पटरियों एवं ग्राम समाज की खाली पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण कराया जाता है। सामाजिक वानिकी प्रभाग कुशीनगर द्वारा वर्ष 2000–01 मे 51 हेक्टेयर क्षेत्र पर वृक्षारोपण कार्य कराया गया। वर्ष 2001–02 में अक्टूबर 2001 तक सड़क, नहर, रेल की पटरियों एवं ग्राम समाज की खाली पड़ी भूमि पर 198.10 हेक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण कराया गया।[1]

इन योजनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य योजनाएँ भी विकास पथ पर अग्रसर हैं, जिनमें राष्ट्रीय परिवारिक लाभ योजना, विधवा, किसान वृद्धावस्था पेंशन, इन्दिरा आवास, बायो गैस संयत्र योजना, उन्नत चूल्हा, राष्ट्रीय बचत, जवाहर ग्राम योजना, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम जिसमें निःशुल्क पाठ्य–पुस्तक वितरण, शिक्षा मित्र, स्कूल चलो अभियान, प्रमुख हैं। अल्पसंख्यक एवं परिवार कल्याण से सम्बंधित योजनाएँ, आपरेशन ग्रीन, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, भूतपूर्व सैनिकों के

---

[1] विकास पुस्तिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 26।

कल्याण एवं पुर्नवास से सम्बधित सैम्फैक्स (I,II,III) , अम्बेदकर ग्राम विकास कार्यक्रम, जिला सेक्टर योजना, अन्नपूर्णा योजना, मत्स्य विकास एवं कुक्कुट विकास कार्यक्रम, निःशुल्क बोरिंग, महिला समृद्धि योजना महत्वपूर्ण हैं।

मूल आदिम जातियाँ :

कुशीनगर जनपद में वर्तमान समय में मूल आदिम जातियों के अवशेष कम मिलते हैं। कुक ने गंगा के मैदान की आदिम जातियों का सर्वप्रथम विवरण प्रस्तुत किया था।[1] 1971 ई0 की जनगणना रिपोर्टो के अनुसार देवरिया जनपद, जिसमें विभाजन के पूर्व कुशीनगर जिला भी शामिल था, की आखेटक जातियों में बहेलिया, वधिक, मुसहर, कंजड़ जातियाँ अभी भी पायी जाती हैं, जिनमें कुछ सीमा तक आखेटक और संग्रहक प्रवृत्ति बची हुई है।[2] इन वन्य जातियों में से कंजड़ों के आवासीय प्रकार, शारीरिक प्रारूप, पहनावा, आभूषण, सामाजिक संगठन, खाद्य साम्रगी, शिकार में प्रयुक्त उपकरण एवं शवाधान प्रणाली के बारे में डा0 मालती नागर और डा0 बी0 एन0 मिश्र ने विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[3]

---

[1] कुक डब्ल्यू, 1996, *द ट्राइब्स एण्ड कास्ट्रस ऑफ द नार्थ–वेस्टर्न प्रॉविन्सेज,* अंक 1–5।

[2] नागर, मालती और मिश्र, बी0एन0, 1989, *हण्टर गैदरर्स इन एन अग्रेरियन सेटिंग: दि नाइन्टीन्थ, सेंचुरी सिचुएशान इन दि गंगा प्लेन्स, मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट,* वाल्यूम 13, पृष्ठ 66–78।

[3] नागर, मालती और मिश्र, बी0एन0, 1990, *द कन्जर्स–ए–हण्टिंग गैदरिंग कम्युनिटी ऑफ द गंगा वैली, उ0प्र0, मैन एण्ड इन्वायरमेंट,* वाल्यूम 15, पृष्ठ 71–78।

अध्याय 2

कुशीनगर जनपद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आधुनिक काल के इतिहासकारों ने भारतवर्ष का इतिहास लिखने का जो प्रयत्न किया है उसमें अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। इतिहास के प्रायः सभी पक्ष–सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि पर समुचित प्रकाश पड़ा है। भारत को एक भौगोलिक इकाई मानते हुए निश्चय ही इसमें आधारभूत सांस्कृतिक एकरूपता भी समाहित है। कालक्रमानुसार राजवंशों का इतिहास लिखने का प्रयत्न हुआ है। थोडा सा प्रयत्न क्षेत्रीय इतिहास लेखन की दिशा में भी हुआ है, जैसे उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास[1], दक्षिण भारत का इतिहास[2], कन्नौज का इतिहास[3], मालवा का इतिहास, बंगाल का इतिहास और कश्मीर का इतिहास, परन्तु इसमें बहुत अधिक कार्य नही हो पाया है। यूँ तो इतिहास का क्षेत्रीय विभाजन उचित नही है और संभव भी नहीं है, परन्तु क्षेत्रीय अध्ययन लाभकारी होता है क्योकि इससे अस्पष्ट सामान्यीकरण से हटकर इतिहास का ज्ञान और इसकी समझ गहरी होती है। क्षेत्रीय इतिहास से ही एक बड़े भौगोलिक इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है और उससे ही बढ़कर पूरे देश का इतिहास बनता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के इतिहास को प्रकाश में लाने का सराहनीय कार्य डा0 राजबली पाण्डेय[4] ने किया है, परन्तु उससे कुशीनगर जनपद का इतिहास बहुत

---

[1] पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1973 (प्रथम संस्करण)

[2] शास्त्री, के0 ए0 नीलकण्ठ, *दक्षिण भारत का इतिहास*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1972 (प्रथम संस्करण)।

[3] त्रिपाठी, रमाशंकर, *कन्नौज का इतिहास, बनारस, 1937।*

[4] पाण्डेय, राजबली, *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास*, गोरखपुर, 1946

स्पष्ट नही हो पाया है। इस अध्याय में जनपद के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया हैं।

ऐतिहासिक स्रोतों (साहित्य, अभिलेख, मुद्रा, स्मारक आदि) से कुशीनगर के प्राचीन महत्व के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। प्राचीन इतिहास का पुनर्निर्माण मुख्यतः ब्राह्मण परम्परा की पौराणिक अनुश्रुतियों, बौद्ध एवं जैन परम्परा के साधनों तथा कतिपय विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर किया जाता हैं। परन्तु ये साक्ष्य पूर्णतया प्रामाणिक नही हैं और इनमें कल्पना का भी पर्याप्त अंश विद्यमान है। अतः इतिहास की वास्तविकता को उजागर करने के लिए पुरातात्विक स्रोतों का सहारा लिया जाता है। वस्तुतः यह मानव इतिहास को एक नया आयाम प्रदान करता है।

जनपद कुशीनगर पुरातत्व की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है लेकिन इसका सम्बंध ऐतिहासिक काल की संस्कृतियों से है। जनपद से जुड़ी किंवदंतियों, पुरातात्विक अवशेषों–मूर्तियाँ, सिक्के, अभिलेख और अधिकाधिक ईटें तथा मन्दिरों, स्तूपों और बौद्ध मठों के अवशेष जिले में कई स्थानों पर पाए गए है। इसका आशय है कि जनपद में विभिन्न कालों के पुरातात्विक अवशेष विद्यमान हैं।

कुशीनगर जनपद का वर्तमान क्षेत्र मध्यदेश के मध्य में स्थित है और केन्द्र प्राचीन कोशल राज्य का भाग है जो उत्तर में हिमालय दक्षिण में सर्पिका या स्यन्दिका नदी, पश्चिम में पांचाल देश और पूरब में मगध (बिहार) से घिरा था।[1] राजबली पाण्डेय के अनुसार मध्य देश एक प्राचीन भौगोलिक नाम है जिसमें पश्चिम

[1] त्रिपाठी, आर0 एस0, *हिस्ट्री ऑफ ऐंश्येण्ट इण्डिया,* वाराणसी, 1942,पृ0 41;पाठक, वी0 एन0 *हिस्ट्री ऑफ कोसल अप टू द राइज ऑफ मौर्या,* वाराणसी, 1963, पृ0 39–42, 68; मैकडानेल, ए0 ए0 एंड कीथ, ए0 बी0, *वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एंड सब्जैक्टस,* वाल्यूम 1–2, वाराणसी, 1958, पृ0 109।

मे सतलज से लेकर पूर्व में कजंगल (राजमहल की पहाडियॉ) तक के प्रदेश सम्मिलित थे।[1] मनुस्मृति में मध्यदेश की सीमा इस प्रकार दी गई हैं –

हिमवद विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्रांग विनशनादपि।

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।।[2]

अर्थात उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में विनशन और पूर्व में प्रयाग तक मध्य देश था। कोसल का प्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में हुआ है। यह इस बात का सूचक है कि कोसल राज्य ऋग्वैदिक काल में विद्यमान नही था। कोसल का विस्तृत वर्णन बाल्मिकी रामायण में मिलता है।[3] बौद्ध युग में यह दो भागों में बॅटा था। घाघरा नदी के उत्तर का भाग उत्तर कोसल के नाम से जाना जाता था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। दक्षिणी भाग का नाम दक्षिणी कोसल था, जिसकी राजधानी अयोध्या थी।[4] गौतम बुद्ध का कार्य क्षेत्र होने के कारण कोसल का बौद्ध परम्परा में विशेष महत्व है क्योकि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में उत्पन्न हुए थे, श्रावस्ती में निवास किए थे और कुशीनगर में उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ था। ये सब स्थल कोसल में ही विद्यमान थे।

पुराणों और महाकाव्यों के अनुसार इस देश के मूल राजा मनु वैवस्वत थे जो विवस्वान अर्थात सूर्य से उत्पन्न हुए थे। इन्हें भारत के अनेक प्रारम्भिक वंशो का जनक भी बताया गया है जिनमें सूर्यवंश भी एक था। पौराणिक आख्यानों के अनुसार मनु के पहले न कोई सुव्यवस्थित समाज था और न कोई राज्य। केवल

---

[1] पाण्डेय, राजबली, *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास,* गोरखपुर, 1946, पृष्ठ सं0 41।

[2] मनुस्मृति, 2–21।

[3] कोसलोनाम विदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निवष्टिः सरयूतीरे प्रभृतधनधान्यवान

[4] डे, नन्दलाल, *द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशियण्ट एंड मेडिवल इण्डिया,* लन्दन, 1927, पृ 14

मानव समूह था। मनु की कहानी वास्तव में समाज और राष्ट्र के उदय की कथा है जिसके प्रतिनिधि मनु थे। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार मनु ने अपने 9 पुत्रों और एक पुत्री[1] के बीच अपने साम्राज्य को दस भागों[2] में बाँट दिया था।

मनु के सबसे बडे पुत्र इक्ष्वाकु थे। इनको मध्यदेश का राज्य मिला जिसकी राजधानी अयोध्या थी।[3] इक्ष्वाकु ने ही अयोध्या में सूर्यवंश की स्थापना की जिसको ऐक्ष्वाकु वंश भी कहते है। कोशल के अन्तर्गत होने के कारण कुशीनगर जनपद का सम्बंध विशेषकर अयोध्या के सूर्यवंश से रहा है। यद्यपि विवाह, युद्ध और प्रसार के सिलसिले से अन्य वंश के क्षत्रिय भी इस जनपद में आ बसे। पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे। इनमें से विकुक्षी ज्येष्ठ होने के कारण अपने पिता के बाद अयोध्या की गद्दी पर बैठा। इसके बाद के अयोध्या के महान राजाओं में मन्धाता, सगर, भगीरथ, रघु, अज और दशरथ प्रमुख थे। त्रेतायुग के प्रायः अंत में दशरथ के पुत्र रामचंद्र हुए।[4] राम को कोसल के राजाओं में सबसे महान् माना जाता है।

राम के समय ही कुशीनगर जनपद विशेष प्रकाश में आया। अश्वमेघ यज्ञ के बाद उन्होंने अपने साम्राज्य को अपने भतीजों और पुत्रों के बीच माण्डलिक राज्यों में बाँट दिया। राम के अनुज लक्ष्मण के दोनों पुत्रों अंगद और चंद्रकेतु जो धर्म के तत्व को समझने वाले और दृढ़ पराक्रम वाले थे,[5] के बीच कारूपथ का

---

[1] मनु की पुत्री का नाम इला था, जिसमें स्त्री और पुरूष दोनों के लक्षण थे। देखिए: *मत्स्य पुराण,* 12–26; *हरिवंशपुराण,* 1,10–15; *पदम पुराण,* 5,8–21।

[2] *मत्स्य पुराण,* 12–8; *ब्रह्म पुराण* 17–20; *शिव पुराण,* 2, 5–36,19–20; *हरिवंश पुराण* 1, 10,20–21; *पदम पुराण* ,5, 8–124, *वायु पुराण,*85–21, *ब्रह्माण्ड पुराण,*3,60–20, *लिंग पुराण,*1,65–28

[3] *ब्रह्म पुराण,* 7 / 20; *वायु पुराण* 85 / 21।

[4] *पदम पुराण* 5 / 269; *ब्रहम पुराण,* 123

[5] ....धर्मविशारदौ।
अंगदश्चन्द्रकेतुश्च राज्यार्थे दृढ़विक्रमौ।।

3774-10
6955

बॅटवारा कर दिया गया और अंगद के लिए अंगदिया नाम की सुन्दर पुरी स्थापित हुई जबकि चंद्रकेतु मल्ल की मल्लभुमि में स्वर्गपुरी के समान सुन्दर प्रसिद्ध चंद्रकान्ता नाम की नगरी बसायी गयी।[1] तदुपरान्त अंगद को कारूपथ का पश्चिमी भाग और चंद्रकेतु को कारूपथ का पूर्वी भाग राज्य करने के लिए दे दिया गया।[2] अंगद और चंद्रकेतु के राज्य लाभ का उल्लेख कालिदास के महाकाव्य रघुवंश में भी मिलता है जिसके अनुसार राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपने पुत्र अंगद और चंद्रकेतु को कारापथ (वास्तव में कारूपथ) का राजा बनाया था।[3] वायु पुराण[4] और विष्णु पुराण भी इस बात से सहमत है कि लक्ष्मण ने अपने दोनों पुत्रों अंगद और चंद्रकेतु को हिमालय के निकट दो प्रदेश राज्य करने के लिए दिया जिनकी राजधानियॉ क्रमशः अंगदीया और चंद्रचक्रा (चंद्रकान्ता) थी। डा0 राजबली पाण्डेय ने कारूपथ के दोनों क्षेत्रों का अभिधान आधुनिक बस्ती जनपद के पूर्वी भाग तथा गोरखपुर जनपद के पश्चिमी भाग के रूप में किया है।[5] इसके पक्ष में उनका तर्क है कि बाल्मिकी रामायण में कारूपथ के पूर्वोत्तरी भाग को जहाँ चंद्रकेतु की राजधानी चंद्रकान्ता बसायी गयी थी, मल्लभूमि कहा गया है और भारतीय इतिहास में एक ही मल्लभूमि या मल्ल राष्ट्र ज्ञात है और वह है गोरखपुर जनपद (विभाजन के पूर्व) का मल्ल राष्ट्र। चंद्रकेतु की उपाधि मल्ल थी इसलिए जिस भूखण्ड को चंद्रकेतु ने आवर्त किया उसे मल्लभूमि या मल्ल राष्ट्र कहा गया। शाक्यों के

(बाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, सर्ग 102/2)।

[1] अंगदीया पुरी रम्या ह्यंगदस्य निवेशिता।
चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता।
चन्द्रकांतेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा।।वही, 8–9।

[2] अंगदम पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखाम्। वही,11।

[3] अंगदमं चंद्रकेतुं च लक्ष्मणोऽयात्मसंभवौ।
शाासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ।। कालिदास, *रघुवंश*, सर्ग 15,श्लोक 90।

[4] *वायु पुराण*, 88/187/8।

[5] पाण्डेय राजबली,पूर्वोद्धृत,पृ 52।

परम्परागत वर्णनों से ज्ञात होता है कि वे अपने को सूर्यवंशी कहते थे तथा कारूपथ के पश्चिम निवास करते थे और अंगद के वंशज थे।

कुशीनगर जनपद के परम्परागत इतिहास के सूत्र महाकाव्य युग से निःसृत है। रामचंद्र ने केवल अपने भतीजों को ही सिंहासनारूढ़ नहीं किया अपितु अपने शासनकाल में अपने पुत्र कुश और लव को भी छोटे छोटे प्रदेश राज्य करने को दिया। कुश को कुशावती का राज्य और लव को शरावती (श्रावस्ती) का राज्य प्रदान किया गया।[1] कुशावती की पहचान वर्तमान कुशीनगर से की गयी है। कुशावती, कुशीनारा, कुशीग्राम, कुशीनगरी, कुशीनगर और आधुनिक कसया प्राचीन कुशावती के ही विभिन्न नाम लगते हैं अथवा इसी से उत्पन्न हुए हैं।[2] कुछ विद्वान बाल्मीकि रामायण का सन्दर्भ[3] देते हुए कुशावती को विंध्य श्रेणी के पास स्थित मानते है।[4] किन्तु उस समय इस प्रदेश पर चंद्रवंशी पौरवों और यादवों का राज्य था।[5] अतः ऐसा मानना समीचीन नही है।

रामचंद्र के देहावसान के बाद कुश बहुत दिनों तक कुशावती में नहीं रह सके। वे अयोध्यावासियों के निवेदन पर अयोध्या चले गए और उनका राम के उत्तराधिकारी के रूप में राज्याभिषेक हुआ और वहीं से अधीनस्थ क्षेत्रों पर जीवन

---

[1] स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम्।
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम्।। कालिदास *रघुवंश,* सर्ग 15,श्लोक 97; पाठक,बी0 एन0, पूर्वोद्धृत, पृ 278।

[2] दत एन0 एंड बाजपेयी के0 डी0:*डेवलपमेण्ट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश,* लखनऊ, 1956, पृ0 345।

[3] कुशस्य नगरी रम्या विंध्यपर्वतरोधसि।
कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता।। (राम ने विध्य पर्वत के किनारे कुशावती नामक रमणीय नगरी का निर्माण कराया)। *बाल्मीकि रामायण,* उत्तर काण्ड,108/3

[4] लाहा, विमल चरण, *हिस्टारिकल ज्याग्राफी ऑफ ऐंश्येण्ट इण्डिया,* पेरिस, 1954 पृ0 49—50

[5] पांडेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 54।

पर्यन्त शासन करते रहे। जातक कथाओं[1] के अनुसार कुशावती के लिए कुश की इतनी ममता थी कि कुछ दिनों तक वे कुशावती को ही अपनी राजधानी बनाकर कोसल राज्य पर शासन करते रहे।[2] इससे अयोध्या की श्री हत हो गई और अयोध्यावासियों को बड़ा दुःख हुआ। कालीदास ने कुश के पास स्वयं अयोध्या की नगर देवी के जाने और उनसे कुशावती छोड़कर अयोध्या वापस लौटने के लिए प्रार्थना करने का उल्लेख किया है।[3] लव भी शरावती त्याग कर श्रावस्ती चले गए। कुश के अयोध्या लौट जाने के बाद यह क्षेत्र लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु के अधिकार में आ गया जिसे रामायण में मल्ल (बहादुर) का विरूद् (उपाधि) प्रदान किया गया और वह प्रसिद्ध मल्लों का प्रथम पूर्वज बना।[4] उसने चंद्रकान्ता छोड़कर कुशावती (कुशीनगर) को अपनी राजधानी बनायी और तभी से कुशावती मल्ल राष्ट्र की राजधानी हुई जो बौद्ध काल तक बनी रही।[5]

पूर्व महाभारत काल में इस जनपद का सम्बंध एक मात्र चकवर्ती सम्राट महासुदसन से था। यद्यपि कि इसकी पहचान कठिन है किन्तु इसके नाम का उल्लेख महासुदत्सन् सुतन्त[6] में मिलता है। उसकी राजधानी कुशावती अत्यंत विकसित और सम्पन्न थी।[7] इतना ही नहीं उसके शासनकाल में वाणिज्यिक दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान था तथा युद्ध कौशल और वैभव में वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। पूर्व से पश्चिम इसकी लम्बाई 12 योजन और उत्तर से दक्षिण इसकी चौड़ाई 7 योजन थी। कुशावती राजधानी सात चहारदीवारियों से घिरी थी

---

[1] *जातक* संख्या, 531 ।

[2] कालिदास, *रघुवंश,* सर्ग 16, श्लोक 1–21 ।

[3] तदैव, श्लोक 1–22

[4] पाठक, वी0 एन0,पूर्वोद्धृत, पृ0 278

[5] पाण्डेय, राजबली पूर्वोद्धृत पृ0 55

[6] दीघनिकाय, 2, पृ0 134 ।

[7] बाजपेयी, के0 डी0, एंड दीक्षित आर0 के0, *बुद्धिस्ट सेंटर इन उ0 प्र0,* पृ0, लखनऊ, 1956, पृ0 15 ।

जिसमें चार द्वार थे। प्रत्येक द्वार में सात सात खम्भे गड़े थे। राजधानी सात ताड़ वृक्ष की पंक्तियों से घिरी थी। राजा का महल पूर्व से पश्चिम एक योजन लम्बा और उत्तर से दक्षिण 0.5 योजन चौडा था तथा उसके सामने एक तालाब था जिसकी लम्बाई चौडाई महल के बराबर थी।[1] उनके राज्य सीमा के पडोस में घने जंगलो का क्षेत्र महावन था और कुछ अन्य मल्ल नगर जैसे भोगनगर (जम्बूग्राम और पावा के बीच), अनुप्रिया और उरूलाकोप्पा।[2]

महाभारत काल में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीमसेन[3] ने पूर्वी राज्यों का दिग्विजय किया था और उस दौरान मल्ल जो इस भाग में शासन कर रहे थे, भीमसेंन द्वारा पराजित किए गए।[4] मल्लों की राजधानी इस समय निश्चित ही कुशीनगर थी।[5] सामान्यतः भीमसेन का नाम देवरिया जनपद के कहाव गांव में स्थित भूरे रंग के बालुकाश्म स्तंभ जिसे 'भीमसेन की लाट'6 के रूप में जाना जाता है, के साथ स्थापित किया जाता है। यह एक प्राचीन नगर था।[7] महाभारत युद्ध जिसे 1400 ई0 पू0 में हुआ माना जाता है,[8] के समय कोसल का राजा बृहदबल था और वह कौरवों के पक्ष में लड़ा था।[9] संभवतः कुशीनगर जनपद

---

[1] बुद्धमित्र, भिक्षु, *भगवान बुद्ध के समकालीन अनुयायी तथा बौद्ध केन्द्र*, गोरखपुर, 1999 पृ0 146–47।

[2] मजूमदार, आर0 सी0, एण्ड पुसालकर, ए0 डी0, *द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपुल*, बम्बई, 1951, वाल्यूम 2, पृ0 8।

[3] भीमसेन पाँच पाण्डव भाइयों में दूसरे थे।

[4] *श्री महाभारत* ,सभापर्व 30।

[5] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत पृ0 56।

[6] फ्यूहरर, ए0 ,*द मानुमेण्टल एन्टिक्विटिज एंड इन्स्क्रिप्सन इन द नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज एंड अवध*, इलाहाबाद, 1969 (पुनर्मुद्रित) पृ0 243।

[7] कनिंधम, ए0, *द ऐंश्येण्ट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया*, कलकत्ता, 1924 पृ0 366।

[8] मजूमदार, आर0 सी0, एंड पुसालकर, पूर्वोद्धृत, वाल्यूम 1, पृ0 304

[9] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत पृ0 238

के कोसल के सामन्त राज्य भी इसी तरफ थे। बृहदबल महाभारत युद्ध में मारे गए।[1]

महाभारत युद्ध के बाद अनेक स्वतंत्र गणराज्यों के अस्तित्व में आ जाने के कारण जनपद का राजनीतिक महत्त्व बढ़ गया[2] क्योकि मल्लों ने स्वयं को एक गणतंत्र (गणराज्य) के रूप में संगठित कर लिया।[3]

प्रारम्भिक बौद्ध[4] और जैन[5] ग्रन्थों में जिन षोडस महाजनपदों का उल्लेख हुआ है उसमें सरयू और बड़ी गण्डक के बीच केवल एक मल्ल राष्ट्र का उल्लेख है। नवोदित स्वतंत्र राज्य किसी एक सत्ता का आधिपत्य नहीं मानते थे। यह भारत के राजनैतिक जीवन साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिकिया थी।[6] महाजनपदों के युग में मल्ल राष्ट्र कोसल से बिल्कुल स्वतंत्र अलग राष्ट्र हो गया। बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि प्रसेनजीत (कोसलनरेश) बुद्ध के समकालीन थे।[7] मल्लो का प्रमुख बंधुल प्रसेनजीत का घनिष्ठ मित्र था।[8] मल्लों की सम्भावित तिथि छठी शताब्दी ई0 पू0 से लेकर 5वीं शताब्दी ई0 पू0 के मध्य मानी गई है।[9]

---

[1] पार्जीटर, एफ0 ई0 , 1913, आक्सफोर्ड, *पुराण टेक्ट्स ऑफ द डायनेस्टीज ऑफ द कलि एज,* पृ0 60; महाभारत, द्रोण पर्व, 47–22।

[2] पाठक, बी0 एन0, पूर्वोद्धृत, पृ0 238।

[3] तदैव, पृ0 286

[4] *अंगुतर निकाय* 1/213; 4/252।

[5] *महावस्तु,* 3/208, 209।

[6] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 58

[7] रायचौधरी, एच0 सी0, 1953, कलकत्ता, *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेण्ट इण्डिया,* पृ0 103–104

[8] पाठक, बी0 एन0, पूवोद्धृत, पृ0 284

[9] सिन्हा,बी0 पी0, *द कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार,* वाल्यूम 1, पृ0 223

महाजनपदों के युग में साम्राज्यवाद के विरूद्ध जो प्रतिकिया प्रारम्भ हुई थी उसकी पराकाष्ठा गणतंत्रों के युग में हुई। पालि ग्रन्थों से पता चलता है कि उत्तर भारत में छोटे छोटे राज्यों ने राज्य तंत्र का परित्याग कर गणतंत्र की स्थापना कर ली। देश के राजनैतिक जीवन में यह एक बहुत बड़ा प्रयोग था। कुशीनगर जनपद में भी दो शक्तिशाली केन्द्र स्थापित हुए। पहला कुशीनगर में और दूसरा पावा में। वस्तुतः कुशीनगर जनपद का सबसे गौरवमय इतिहास इसी युग में निर्मित हुआ था। रीज डेविडस पहला विद्वान था जिसने बुद्ध के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला।[1] पालिग्रन्थों में बुद्धकालीन 10 गणतंत्रो का उल्लेख मिलता है जिनकी गणना निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है–[2]

1. कपिलवस्तु के शाक्य
2. रामग्राम के कोलिय
3. पिप्पलीवन के मोरिय
4. पावा के मल्ल
5. कुशीनारा के मल्ल
6. मिथिला के विदेह
7. वैशाली के लिच्छवि
8. अल्लकप्प के बुलि
9. सुसुमारिगिरी के भग्ग और
10. केसपुत के कालामस।

[1] रीज डेविड्स, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* कलकत्ता (प्रथम भारतीय संस्करण), 1950, पृ0 1।

[2] पाण्डेय राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 59।

ये गणतंत्र बड़े ही प्रतिभासम्पन्न और शक्तिशाली थे। इनकी शासन प्रणाली, सामाजिक व्यवस्था और सम्बंध आचार व्यवहार आदि प्रायः सभी समान थे। इनकी राजनीति, समाजनीति, धर्म और संस्कृति में देन उच्चकोटि की है। आधुनिक राजनितिशास्त्रविदों की यह धारणा है कि राजतंत्र शासनप्रणाली विश्व की प्राचीनतम शासन पद्वति है। परन्तु भारतीय विद्वानों ने अपने शोधों एवं अन्वेषणाओं द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारत वर्ष में सर्वप्रथम गण शासन प्रणाली का ही उदय हुआ था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत के राजनैतिक इतिहास में चक्रीय सिद्धान्त का दर्शन होता है। महाकाव्य कालीन सम्राज्यों के पतनोपरान्त महाजनपदो के अवशेषों पर अजात शत्रु के नेतृत्व में साम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ। भारत के राजनैतिक विकास की प्रकिया प्राचीन यूनान के नगर राज्यों के समान दिखाई देती है। जहाँ वीरगाथाकाल के नृपतंत्रीय राज्यों के पश्चात् गणतंत्रों का अभ्युद्य हुआ।[1] राजनैतिक उद्विकास की चक्रीय सिंद्धान्त की पुष्टि मेगस्थनीज के इस कथन से होती है कि गणतंत्रीय प्रकार की शासन व्यवस्थाओं की स्थापना तीन बार हुई तथा तीन बार नृपतंत्रीय रूप में परिवर्तित हुई।[2] डा0 रामशरण शर्मा का विचार है कि उत्तर वैदिक काल के पश्चात क्षेत्रीय तथा वर्ग विभाजित गणों की उत्तपति का मूल कारण उत्तर वैदिक काल के पश्चात जीवन शैली के जागत्तिक परिवर्तन में अन्वेषणीय है।[3]

अधिकांशतः ये गणराज्य यूनानी गणराज्यों के समकालीन थे। राजनैतिक दृष्टि से वज्जियों एवं मल्लों के संघ सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे।[4]

---

[1] राय चौधरी, हेमचंद, पुर्वोद्धृत, पृ0 121।

[2] मैकिण्डल, एशियंट इण्डिया एज डिस्काइव्ड बाइ मेगस्थनीज एण्ड *एरियन*, संशोधित संस्करण, पृष्ठ 203, कलकत्ता, 1960।

[3] शर्मा, रामशरण, *ऑस्पेक्ट्स ऑफ पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इस्टीट्यूशन्स इन एंशियंट इण्डियां,*, पृष्ठ 92, 93, वाराणसी 1968।

[4] पाठक, वी0एन0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 238।

आधुनिक राजनीतिशास्त्र विदों की यह धारणा है कि राजतंत्र शासन प्रणाली विश्व की प्राचीनतम पद्धति है। परन्तु भारतीय विद्वानों ने अपने शोधो एवं अन्वेषणाओं द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारत वर्ष में सर्वप्रथम गण शासन प्रणाली का ही उदय हुआ था।

दिक् एवं काल के आयामों में आबद्ध परिवर्तनकारी घटनाएँ ही इतिहास की संज्ञा से अभिहित की जाती है। आधुनिक इतिहास की अवधारणा में यद्यपि मार्क्स के चिन्तन ने परिवर्तन प्रस्तुत किया है तथापि साम्राज्यवादी लेखन के अन्तर्गत ऐतिहासिक अनुक्रम के अध्ययन में सर्वाधिक अथवा विशेषता उसकी गणतंत्रीय पद्धति रही है। क्योकि गणतंत्रीय पद्धति में शासकीय वंशावलियां प्रायः अप्राप्य ही है। गणतंत्र एक संघीय और प्रजातंत्रीय व्यवस्था होने के कारण उसके शासको की वंशावली अथवा नामावली नहीं मिलती । इतिहास की विधा अपने चयनात्मक वृत्ति के कारण भी उन्हीं घटनाओं का चयन करती है जो लोक जीवन के ऐतिहासिक अनुक्रम को प्रस्तुत किया जा सकता है।

मल्लजनगण का राजसत्तात्मक स्वरूप विभिन्न कालों में परिवर्तित होता हुआ बुद्ध काल में अत्यधिक सम्मानित हुआ तथा इसकी प्रसिद्धी का कारण बुद्ध की महापरिनिर्वाण स्थली होना है।

मल्ल गणराज्य प्रशासनीक दृष्टि से दो भागों में विभक्त था जिनमें से उत्तर की राजधानी पावा थी और दक्षिण भाग की राजधानी कुशीनारा (कुशीनगर) थी।[1] पालि साहित्य में इन्हें 'मल्लाकोसिनारका' (कुशीनारा के मल्ल) एवं मल्ला पावेय्यका (पावा के मल्ल) कहा गया है।[2]

पावा के मल्ल : कुशावती नगरी के समान पावा भी मल्ल गण राज्य की राजधानी थी। पावा वही प्राचीन नगर है जहाँ भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया

---

[1] मेहता, रतिलाल, *प्री बुद्धिस्ट इण्डिया*, पृष्ठ 56।

[2] मलाल सेकर, जी0पी0, लन्दन, 1938, *डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स*, भाग –2, पृ0 435।

था। कल्पसूत्र के अनुसार जनपदों का विहार करते हुए भगवान महावीर ने अपना अन्तिम 12वां चतुर्मास पावा मे मल्ल राज्य के राजा हस्तिपाल के रज्जुकशाला मे बिताया था जिसके चारों ओर तालाब था। वहां कार्तिक कृष्ण अमावस्या के प्रभात काल में भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए थे।[1] महावीर के निर्माण पर मल्लों ने प्रकाशोत्सव मनाया था।[2] कुशीनगर जनपद से सटे जनपद देवरिया के खुखंदु ग्राम के भगनावशेषों तथा कहाँव ग्राम के स्तम्भ लेख से भी इस क्षेत्र पर जैन धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। खुखंदु से हिन्दु धर्म से सम्बन्धित विभिन्न अवशेषों के साथ ही प्राचीन जैन मंदिर एवं मूर्तियों के साक्ष्य मिले है। जैन मूर्तियों में आदिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की हैं।[3] कहाँव स्तम्भ लेख गुप्त सम्राट स्कन्द गुप्त के शासन काल की हैं जिस पर पाँच जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।[4] पावा में ही गणराज्य का संस्थागार भवन बना हुआ था। पावा उत्तर भारत में विशेषकर गंगा के उत्तर में मुख्य व्यापारिक मार्ग पर स्थित था।[5] जिसका उल्लेख महाभारत में अनेकत्र हुआ है।

पावा शब्द की उत्पत्ति के सम्बंध में जिनप्रभ सूरि ने अपने ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प में इसके तीन नाम दिए है : अपापा, पापा और पावा तथा लिखा है कि अपापा में वीर प्रभु का निर्वाण हुआ था। भगवान महावीर की निर्वाणभूमि होने के कारण यह भूमि पापहीना हो गई इसलिए अपापा कही गई । पापा और पावा इसी के अन्य रूप है।[6] कनिंघम का मत है कि पावन, परवन, पदरमन एवं पदरवन, पावा के ही रूपान्तरित नाम है। जिसका अपभ्रशं रूप वर्तमान पडरौना है। ए0 सी0 एल0

---

[1] भद्रबाहु, *कल्पसूत्र, सूत्र* संख्या 121, 122, 123।

[2] *समागमसुतन्त,* 3.1.4।

[3] फ्यूहरर, *आर्क्योलाजिकल रिव्यू,* 1891 पृ0 248।

[4] तदैव पृ0 234।

[5] *अंगुतर निकाय,* खण्ड 1, पृष्ठ 213।

[6] मिश्र योगेन्द्र, *प्राचीन पावा, श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक निर्वाण भूमि पावा,* गोरखपुर 1973, पष्ठ 19।

कुशीनारा में। भगवान महावीर के निर्वाणों परान्त उनके अनुयायियों में भेद उत्पन्न हो गया था। दीघ निकाय के 'संगीतिपरियायसुत्त' से विदित होता है कि भगवान महावीर बुद्ध मल्ल देश में चारिका करते हुए पावा पहुंचे थे और वहां उन्होनें चुन्द कर्मार पुत्र के आम्रवन में विहार किया था तथा पावा के मल्लों द्वारा निर्मित नवीन संस्थागार 'उबभटक' में पधार कर धर्म कथा कह कर पावावासी मल्लों को सम्प्रहर्षित किया था।[1] यहीं सारिपुत्र ने भिक्षुओं को अपने धर्म सम्बोधन में सूचित किया कि निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र अभी–अभी कालगत हुए और उसी समय निर्ग्रन्थ (जैन) दो भागों में बंट गये। किन्तु उन्हें (बौद्ध भिक्षुओं को) कलहरहित होकर बौद्ध संघ को चिरस्थायी बनाना चाहिए। महापरिनिर्वाण सूत्त से ज्ञात होता है कि पावा में इसी चुन्द कर्मार के आम्रवन में निर्वाण के पूर्व बुद्ध ने अपना अन्तिम पड़ाव डाला था तथा इन्ही के गृह में अन्तिम भोजन सूकरमाद्दव ग्रहण की थी। भोजन पच नहीं सका और पेट में असहनीय दर्द होने लगा। इसी स्थित में बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द के साथ कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में ठहरते हुए बुद्ध कुकुत्था नदी में स्नान तथा जल ग्रहण कर मल्लों के शालवन नामक उपवतन में पहुंचें जो हिरण्यवती नदी के दूसरी ओर स्थित था और वहीं महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।[2]

सूकरमाद्दव नामक भोज्य पदार्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ इसे शूकर (Pork) मांस भी मानते हैं। लेकिन यहां विचारणीय है कि क्या अहिंसा का पुजारी जो जीव दया से अभिभूत होकर सन्त बना था, मांस का सेवन कर सकता था? इस सन्दर्भ में डा0 रेखा चतुर्वेदी का कथन है कि माद्दव शब्द 'मार्जव' या मार्दव है जिसका अर्थ मृदुता से होता है। यह शब्द शूकर न होकर सुकर है जिसका अर्थ सरलता से सुपाच्य अथवा मृदु भोजन है। सूकर शकरकंद का अपभ्रंश भी है जिसे प्राकृत में सूरणकन्द कहा गया है, जो इस अंचल में प्रभुत्त मात्रा में

---

[1] कनिंघम ए, *द एनसिंयट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* कलकत्ता, 1924 पृ0 360।

[2] *दीघनिकाय* II, पृ 100।

उत्पन्न होता है। यह प्रकृत्या मीठा या मृदु है।[1] इससे प्रमाणित होता है कि पावा में जैन एवं बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का समान प्रभाव था। मल्ल महावीर और बुद्ध दोनों के उत्साही अनुयायी थे।[2]

पावा के पहचान की समस्या :

प्राचीन भारतीय इतिहास का एक प्रसंग पावा अब भी विवादों के घेरे में पड़ा है। जैन और बौद्ध साहित्यिक साक्ष्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि पावा भगवान महावीर और बुद्ध दोनों से ही सम्बद्ध रही और अपनी राजनीतिक स्थिति, कला, संस्कृति एवं वैभव की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। परन्तु इसकी प्राचीनता एवं भौगोलिक स्थित को लेकर आज भी तरह तरह की भ्रांतिया बनी हुई है और इतिहास कार एवं पुरातत्ववेत्ता सर्वसम्मत निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने भी इस सन्दर्भ में विभिन्न स्थलों का उत्खनन करवाया किन्तु पावा की स्थिति निश्चित करने में समर्थ नहीं हुआ। समय समय पर विभिन्न स्थलियों की पहचान पावा के रूप में की जाती रही है। हम यहां उन स्थलियों के विवरण के 'साथ–साथ पावा के पहचान की समस्या पर समीक्षा प्रस्तुत कर रहे है।

जहाँ तक पावा की प्राचीनता का प्रश्न है विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डा० राजबली पाण्डेय[3] के अनुसार इस नगरी (पावा) का बुद्ध पूर्व कोई संकेत नही मिलता है परन्तु डा० के० डी० बाजपेयी[4] ने महाभारत में कई स्थलों पर पावा के उल्लेख की चर्चा की है।

अद्यावधि निम्न स्थलों को पावा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है–

[1] चतुर्वेदी रेखा, स्मारिका, बुद्ध स्मृति पर्व, 2000, कुशीनगर।

[2] पाठक, वी0एन0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 281।

[3] पाण्डेय राजबली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 77।

[4] वाजपेयी के0डी0, लोकेशन ऑफ पावा, पुरातत्व, नई दिल्ली 1987, पृष्ठ 47।

1. पपतार :

मात्र गोरांगगोपाल सेनगुप्त[1] ने इस ग्राम को पावा के रूप में पहचान की है तथा इसे पडरौना तहसील में स्थित बताया है। किन्तु पडरौना तहसील के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि यहां पपतार नामक ग्राम का कोई अस्तित्व नहीं है।

2. पवैया :

डा0 हीरालाल जैन[2] ने गोरखपुर जनपद स्थित पवैया नामक स्थान को पावा माना है किन्तु उन्होने अपने मत के समर्थन में कोई साहित्यिक अथवा पुरातात्विक साक्ष्य प्रस्तुत नही किया है।

3. माझा : बिहार प्रदेश के गोपालगंज जिले में पूर्वोत्तर रेलवे की गोपालगंज–छपरा लूप लाइन पर स्थित माझा (माझागढ़) को कपिलदेवगिरि[3] ने पावा के रूप में पहचान करने का प्रयास किया है। लेकिन वे अपने पक्ष में कोई ठोस तर्क नहीं दे पाये है जिससे उसे पावा के रूप के स्वीकार किया जा सके।

4. उस्मानपुर :

कुशीनगर जनपद के अन्तर्गत फाजिलनगर से 6 किमी0 दक्षिण– पूर्व में यह गांव स्थित है। डा0 श्यामसुन्दर सिंह जो उस्मानपुर के नजदीकी गांव दर्जिया के निवासी है, कुछ प्राचीन पुरा सामग्रियों सहित एक ढक्कन पर मौर्य कालीन लेख, जिसे वह पावा नगर पढ़ते है, उसे मौर्यकालीन बताते हुए कहते है कि यही उस्मानपुर पावा है। इसके पावा होने की संभावना से ही भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग[4] के श्री के0 एम0 श्रीवास्तव ने 1973–74 में तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने 1997 में यहां

---

[1] सेनगुप्त गोरांगगोपाल, *डेलीलैण्डरूट्स इन एंशियंट इण्डिया*, पृ 1–4, पटना 1968।

[2] सरावगी, के0एल0 (सं0), *पावा समीक्षा*, पृ0 15, छपरा 1972।

[3] गिरी कपिलदेव, *महावीर की निर्वाण भूमि पावा की स्थिति*, श्रवण, नवम्बर, 1970।

[4] *इण्डियन आर्कियोलॉजी ए रिव्यू*, 1973–74।

उत्खनन करवाया था। परन्तु यहाँ से कोई ऐसा साक्ष्य नहीं मिला जो इसे पावा सिद्ध कर सके।

5. धारमठिया :

यह पडरौना से 27 किमी दक्षिण–पूर्व में पडरौना–पटहेरवा मार्ग के किनारे पूर्व में स्थित है। फाजिलनगर से यह 6 किमी उत्तर–पूर्व में स्थित है। जनश्रुति के अनुसार इसे 52 बीघे का टीला कहा जाता है। इसका शीर्ष समतल है। कार्लाइल[1] ने इस टीले का विस्तृत वर्णन किया है। इसकी महत्ता की पुष्टि फ्यूहरर[2] ने भी की है। परन्तु इसका उत्खनन होना अभी बाकी है। जब तक कोई साक्ष्य सामने नही आता कुछ भी कहना उचित नहीं होगा। गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के संग्रहालयाध्यक्ष कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार उनके द्वारा भी धारमठिया एवं उसके पार्श्ववर्ती टीलों का निरीक्षण किया गया तथा उन्होने इसे प्राचीन पावा होने की अधिक संभावना व्यक्त की है।[3]

6. पपउर :

यह ग्राम कुशीनगर जनपद के अन्तर्गत हाटा तहसील में आता है। यह पडरौना से 10 किमी० उत्तर–पश्चिम, पडरौना–रामकोला मार्ग के उत्तर स्थित है। पपउर टीला गांव से लगभग 500 मीटर दूरी पर पश्चिम में स्थित है।

सर्वप्रथम राहुल सांकृत्यायन[4] ने पपउर को पावा की संज्ञा दी थी। बाद में डा० मोतीचन्द,[5] नाथूराम प्रेमी, विद्याधर जोहरा पुरकर तथा बलदेव

---

[1] *ए०एस०आई०आर*, वाल्यूम 18, 1875–76, 1876–77, पृ० 115–16।

[2] फ्यूहरर, ए०, पुर्वोद्धृत, पृ० 240।

[3] त्रिपाठी, कृष्णानंद, पावापुरी है कहां? *सूर्यमहोत्सव स्मारिका*, पृ० 27–28, देवरिया, 1987।

[4] पंडित सांकृत्यायन, राहुल, *बुद्धचर्या*, सारनाथ, 1952, पृ० 352।

[5] मोतीचन्द, *सार्थवाह* (हिन्दी), पटना, 1966, पृ० 17–18।

उपाध्याय[1] ने भी राहुल सांकृत्यायन के मत का समर्थन करते हुए पपउर को ही पावा के रूप में पहचान की। किन्तु पपउर को पावा के रूप में मान्यता देने का कोई ठोस आधार नहीं है। अभी तक ऐसा कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ है जिसके आधार पर इसे पावा माना जाय ।

7. पावा की पहचान पावापुरी (नालन्दा बिहार) से :

पावा के सम्बंध मे कतिपय विद्वानों का मत है कि दक्षिण–बिहार के नालन्दा जनपद में बिहार शरीफ से 10.5 किमी0 की दूरी पर दक्षिण दिशा में राजगृह के पास 250 5′ अक्षांश एवं 850 32′ देशान्तर पर स्थित पावापुरी ही प्राचीन पावा है। जैन धर्मावलम्बी इसी स्थान को परम्परा सम्मत महावीर की निर्वाण स्थली पावा मानते है। पावापुरी परस्पर 1.5–2 मील की दूरी पर स्थित पावा तथा पुरी नाम के दो पृथक ग्राम है। कुशीनगर से यह पावापुरी गंगा के उस पार दक्षिण–पूर्व में लगभग 235 मील की दूरी पर है। सर्वप्रथम बुकनन[2] ने 1812 में पावापुरी तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र का सर्वेक्षण किया था। उस समय पोखरे (झील) के उत्तर में पुरी ग्राम तथा वहां से लगभग 1 मील की दूरी पर पावा ग्राम स्थित था। गुलाबचंद चौधरी[3] के अनुसार नालंदा जिले में स्थित पावापुरी या पावानगरी एक न होकर पावा और पुरी दो भिन्न गांव का सम्मिलित नाम है। पुरी के प्राचीन काल से ही ग्राम होने की पुष्टि यहां स्थित ग्राम मन्दिर या समवसरण मन्दिर से होता है। ग्राम मन्दिर के अतिरिक्त जल मन्दिर व श्वेताम्बरों एवं दिगम्बरों के विशाल मन्दिरों की

---

[1] उपाध्याय बलदेव, *भगवान महावीर, वैशाली की दिव्य विभुति,* वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, वैशाली (बिहार), 1985, पृ0 241।

[2] माण्टगोमरी मार्टीन, *हिस्ट्री एण्टिक्विटिज टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया,* खण्ड 1, पटना–गया, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1976, पृ0 168।

[3] चौधरी गुलाब चन्द, *भगवान महावीर की निर्माण भूमि, पावा, प्राचीन पावा,* गोरखपुर, 1973, पृ0 48।

श्रृखला दृष्टिगोचर होती है। पुरी के मन्दिरों की तुलना में पावा के मन्दिर नगण्य प्रतीत होते है। डा0 चौधरी का मानना है कि भगवान महावीर की निर्वाण स्थली से पावा का कोई सम्बंध नहीं है क्योंकि पावा ग्राम की जनश्रुतियों में भी इसकी कोई चर्चा नहीं है। डा0 येगेन्द्र मिश्र का कहना है कि जब पावा की इतनी पवित्रता है तब जैन मन्दिर भी वही निर्मित होनी चाहिए थी।

डा0 गुलाबचंद्र चौधरी[1] के अनुसार पुरी के ग्राम मन्दिर की मूर्तियों में से एक पर संवत् 1260 का अभिलेख उत्कीर्ण है जिसके अनुसार संवत 1260 ज्येष्ठ सुदी 2 को श्री भगवान महावीर बिम्ब तैयार हुआ। जिसे अभयदेव सूरी द्वारा प्रतिष्ठित किया गया था। पूर्णचंद्र नाहर[2] ने भी इसकी पुष्टि की है। इस प्रकार पावा पुरी का सबसे प्राचीन अभिलेख सन् 1203 ई0 का है। इसमें न तो इस स्थल को भगवान महावीर की निर्वाण स्थली बताया गया है और न ही उसकी निर्वाण स्थली के रूप में पावापुरी का नाम अंकित है। अनुमानतः भक्तों द्वारा अतीत काल में पूजा अर्चना के लिए इस मूर्ति को राजगृह आदि स्थानों से लाकर यहां स्थापित किया गया था।

ग्राम मन्दिर का दूसरा अभिलेख मुगल सम्राट शाहजहां के शासन काल का है जिसे बुकनन ने लिपिबद्ध किया है। उनके मतानुसार वहां से प्राप्त अभिलेखों में सबसे प्राचीन अभिलेख विकम सम्वत् 1605 (1548 ई0) का है। भण्डारकर3 की सूची में इस अभिलेख को विकम सम्वत् 1697 (1640 ई0) का माना गया है। किन्तु बाद के विद्वानों ने इसको वैशाख शुदी 5 विकम सम्वत् 1698 (1641 ई0) का माना है। इस अभिलेख से पावापुरी ग्राम मन्दिर के जीर्णोद्धार क़े विषय में जानकारी मिलती है। इस अभिलेख को बिहार निवासी खरतरगच्छीय महातियाण संघ ने शाहजहां के शासन काल (1627–1658 ई0) में वेदी के नीचे स्थापित

---

[1] चौधरी गुलाब चन्द, पुर्वोद्धृत, पृ0 49।

[2] नाहर, पूर्णचन्द्र, *जैन लेख संग्रह,* भाग 3, कलकत्ता, 1927, पृ 273।

[3] भण्डारकर, डी0आर0, *लिस्ट, लिस्ट ऑफ इंस्क्रिप्शन्स इन नार्दन इण्डिया* 1003।

करवाया था। इस अभिलेख में 21 पंक्तियाँ है। विजयसिंह नाहर[1] के अनुसार इस विशाल प्रशस्ति शिलालेख को पुरातत्व विद् पूर्णचंद नाहर ने वेदी से निकालकर ग्राम मन्दिर की भित्ति में स्थापित करवाया था। अभिलेख की दूसरी पंक्ति में प्रथम बार इस बात का उल्लेख मिलता है कि पावापुरी चौबीसवें जिनाधिराज श्री वर्धमान स्वामी के निर्वाण कल्याणक से पवित्र है। उपरोक्त तथ्यो की पुष्टि डी0आर0[2] पाटिल गुलाबचंद्र चौधरी एवं योगेन्द्र मिश्र ने भी की है। डी0 आर0 पाटिल के अनुसार वर्तमान ग्राम मन्दिर की अपेक्षा यह अभिलेख अधिक प्राचीन है। संभवतः प्राचीन ग्राम मन्दिर के नष्ट हो जाने पर इसे आधुनिक ग्राम मन्दिर में स्थापित कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम काल में आवागमन की असुविधा एवं गंगा के उत्तरी क्षेत्र से जैन मतानुयायियों का सम्बंध न होने के कारण 1649 ई0 में नालंदा जनपद की यह पावापुरी भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावा के रूप में मान्यता प्राप्त होकर पूज्य हो गयी और विभिन्न स्थानों के धनवान श्रावकों ने इस तीर्थस्थली के विस्तार में योगदान किया।

भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा के सम्बंध में ऐतिहासिक उल्लेखों और परम्पराओं में परस्पर विरोध है। जैन धर्मावलम्बी परम्परागत रूप से नालंदा जनपद में स्थित पावापुरी को भगवान महावीर की निर्वाण स्थली मानते चले आ रहें है किन्तु ऐतिहासिक साक्ष्य इसको निर्वाण स्थली मानने के विपरीत है। परम्परा एवं इतिहास के अन्तर्विरोध से अवगत श्री भँवरलाल नाहटा[3] का मत उल्लेखनीय है–**बहुत से स्थानों का सही निर्णय केवल इतिहास के आधार पर नहीं** किया जा सकता है। परम्परा का भी अपना महत्व है। बौद्धों द्वारा मान्य पावा वस्तुतः बौद्धों की पावा है और वह जैनों की पावा नही है। मुनि नगराज[4] ने भी

---

[1] नाहर विजय, सिंह, *पावापुरी दिग्दर्शन*, महावीर निर्वाण महोत्सव स्मारिका, नालन्दा, 1974, पृ0 87।

[2] पाटिल, डी0आर0, एन्टीक्वेरियन रिमेन्सेज इन बिहार, पटना 1963, पृ0 422।

[3] नाहटा, भँवरलाल, *विश्वमित्र दैनिक*, पृष्ठ 4, कलकत्ता, 12 अप्रैल 1984।

[4] नगराज, मुनि, *भगवान महावीर एवं बुद्ध की समसामयिकता*, दिल्ली, 1969, पृ0 161।

परम्परा और ऐतिहासिकता के अन्तर्विरोध को स्वीकार किया है। परम्परा सम्मत पावा दक्षिण बिहार में है और वहां के भव्य मन्दिरों ने उसे जैन तीर्थ बना दिया है। साथ ही उन्होने स्पष्ट किया है कि ऐतिहासिक साक्ष्य से इस बात का परिज्ञान नहीं होता है कि पावा वहां है।

कल्पसूत्र के अनुसार जब भगवान महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए तो उस रात्रि मे काशी कोशलस्थ 9 मल्ल और 9 लिच्छवि गणराज्यों में यह कहकर दीपोत्सव मनाया गया कि ज्ञान ज्योति का अस्त हो गया है। अब हम पौद्गलिक द्रव्यों से प्रकाश करें।[1] भगवान महावीर के निर्वाण के अवसर पर पावा में मल्लों और लिच्छवियों के 18 गण राज्यों की उपस्थिति पावा के उत्तरी बिहार में स्थित होने की ओर संकेत करती है। दक्षिण बिहार की वर्तमान पावापुरी तो निश्चय ही उनके शत्रु प्रदेश में थी। अपने कट्टर शत्रु मागधों के प्रदेश में उनकी उपस्थिति संदेह उत्पन्न करता है। दूसरे यदि पावा मगध राज्य में स्थित होती तो, भगवान महावीर के निर्वाण के समय मगध नरेश अजातशत्रु वहां अवश्य उपस्थित होता, क्योकि जैन स्रोतों के अनुसार वह भगवान महावीर के प्रति अत्यंत श्रद्धावान था।

डा० के० डी० बाजपेयी[2] के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के समय पावा में और बुद्ध के परि निर्वाण के समय कुशीनगर में मगध सम्राट अजातशत्रु के अनुपस्थिति आश्चर्यजनक है। किन्तु कुशीनगर में अजातशत्रु के उपस्थित होने में बाधा यह थी कि वह मल्लों की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता से ईर्ष्या करता था। विचारणीय यह है कि उसने मगध के निवासियों के अनुरोध पर अपना दूत बुद्ध के धातु अवशेषों को प्राप्त करने के लिए भेजा था। रीज डेविड[3] का कथन है कि सम्राट ने अपने दूत द्वारा यह कह कर बुद्ध के धातु अवशेषों को प्राप्त किया

---

[1] भद्रवाहु, *कल्पसूत्र,* सूत्र संख्या 127।

[2] वाजपेयी, के0 डी0, *लोकेशन ऑफ पावा, युग–युगीन सरयु पार,* वारावणसी, 1987, पृष्ठ 54।

[3] डेविड रीज, पुर्वोद्धृत, पृ0 15–16।

कि वे भी उन्ही की भॉति एक क्षत्रिय है। डा0 शैलनाथ चतुर्वेदी[1] भी उस पुनीत अवसर पर अजातशत्रु की अनुपस्थिति पर आश्चर्य व्यक्त करते है। यदि निर्वाण मगध के किसी स्थान पर हुआ होता तो अजातशत्रु वहां अवश्य पहुँचता। चूकि कल्पसूत्र के अनुसार निर्वाण काल में केवल शत्रु राजा ही उपस्थित थे। ऐसी स्थिति में मगध राज्य के किसी भी स्थान पर पावा की स्थिति असंभव थी। अतः भगवान महावीर की निर्वाण स्थली ऐसे प्रदेश में होनी चाहिए जहां पर मल्ल और लिच्छवि तो आसानी से एकत्रित हो गए परन्तु अजातशत्रु अनुपस्थित रहा। ऐसा स्थल मल्ल अथवा लिच्छवि प्रदेश में ही संभव था अन्यत्र नहीं।

वस्तुतः पावा की भौगोलिक स्थिति ऐसी होनी चाहिए जहां पर मल्ल, लिच्छवि एवं काशी–कोशल के गणराजा भगवान महावीर के निर्वाण की सूचना पातें ही पहुंच जायें। इन लिच्छवि गणराजाओं में क्षत्रिय कुण्डपुर के भगवान महावीर स्वामी के कुछ स्वकुलीन ज्ञातृक गणराजा भी रहे होगें। उस समय काशी–कोशल में कई छोटे–छोटे गणराज्य फल फूल रहे थे। स्वयं पावा भी काशी–कोशल क्षेत्र में ही था। अतः भौगोलिक सामीप्यता, शासन पद्धति की समानता, मैत्री भावना एवं भगवान महावीर के प्रति श्रद्धा के कारण काशी–कोशल एवं बज्जि के 18 गणराजा तुरन्त आ गए। जैन ग्रन्थों से भी विहार के पावा की पुष्टि नहीं होती क्योकि डा0 गुलाबचंद चौधरी के अनुसार[2]–''पावा विषयक जैन उल्लेखो का विश्लेषण करने से पता लगता है कि भगवान महावीर के निर्वाण स्थल के रूप में पावा की अनुश्रुति, जैन ग्रन्थकारों के पास थी किन्तु वह कहां है? इसका ज्ञान उन्हें नही था । यदि उनका आशय नालंदा जिले की वर्तमान पावापुरी से होता जो मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह से 9–10 मील की दूरी पर ही है, पगडण्डी के रास्ते) तो मगध राज्य के उल्लेख के अन्तर्गत पावापुरी की चर्चा अवश्य रही होती । भगवान महावीर के निर्वाण का वर्णन करते समय राजगृह और पावा का साथ–साथ उल्लेख होना

---

[1] चतुर्वेदी शैलनाथ, *प्राचीन पावा,* श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक निर्वाण भूमि पावा, गोरखपुर, 1973, पृ0 5–6।

[2] चौधरी, गुलाब चन्द, पुर्वोद्धृत, पृ0 62।

चाहिए था, पर ऐसा किसी ग्रन्थ में नहीं किया गया है।" राजगृह का वर्णन आचरांगसूत्र, भगवतीसूत्र, विविध तीर्थकल्प, हरवंशपुराण आदि ग्रन्थों में मिलता है। पर किसी भी ग्रन्थ में राजगृह के निकटस्थ पावा या पावापुरी का उल्लेख नही है। जबकि राजगृह से 1 मील दूर स्थित नालंदा का वर्णन राजगृह के साथ–साथ बहुत बार आया है।

बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिर्वाण सुत्त के चतुर्थ भाणवार[1] के अध्याय सुमंगल विलासिनी[2] के अनुसार कुशीनगर में महापरिनिर्वाण के पूर्व बुद्ध ने पावा में चुन्द कुमार पुत्र यहां सूकरमाद्दव का अपता अंतिम भोजन ग्रहण किया था और अतिसार से पीडित हो गये थे।[1] वे पावा से कुशीनगर के शालवन में 25 स्थानों पर बैठते हुए उसी दिन शायं काल तक पहुॅच गये थे। मलल शेकर ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। रूगणता के अवस्था में नालन्दा के पास स्थित पावापुरी से कुशीनगर तक (235 मील दूर) आने की कल्पना न केवल अतर्क संगत है वरन् असम्भव है।

योगेन्द्र मिश्र ने पावा की भौगोलिक स्थित के विषय में गंगा और गंडक नदी के सन्दर्भ में विचार किया हैं। भगवान बुद्ध राजगृह से चलकर गंगा नदी पार करके वैशाली पहुँचे थे। वैशाली से पावा होकर कुशीनगर जाने में पुनः गंगा नदी नहीं पड़ी थी। वैशाली से पावा जाने के लिए बुद्ध को गंडक नदी पार करनी पड़ी थी। इससे सिद्ध होता है कि पावा वैशाली एवं गंडक से पश्चिम में स्थित था।

चीनी यात्रियों फाह्यान (399–415 ई0) जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय भारत आया था तथा ह्वेनसांग (629–645 ई0) जो हर्षवर्धन के समय भारत आया था, के विवरण से राजगिरी तथा नालंदा पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है, परन्तु पावा का उल्लेख नही आया है। इसके विपरित कुशीनगर यात्रा के सन्दर्भ में उन्होंने पावा का उल्लेख किया है। इत्सिंग (673 ई0) ने भी नालंदा में काफी समय तक रहा परन्तु

---

[1] *राहुल सांकृत्यायन, दीघनिकाय* (हिन्दी अनुवाद), महापरिनिर्वाण सुत्त, 2–3, पृ0 136–40।

[2] प्रो0 तिवारी, महेश, *सुमंगल विलासिनी*, द्वितीय खण्ड, पटना 1974, पृष्ठ 282।

उसने भी पावा के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं दी। तिब्बती यात्री धर्मस्वामी (1264 ई0) ने भारत के धार्मिक स्थलों की यात्रा की थी। उन्होंने भी पावापुरी का उल्लेख नहीं किया था। यदि इन विदेशी यात्रियों के यात्राकाल में नालन्दा जनपद में स्थित पावा का कोई आस्तित्व रहा होता अथवा इसकी धार्मिक महत्ता रही होती तो वे इसका उल्लेख अवश्य करते।

श्री भँवर लाल नहटा[2] नालन्दा स्थित पावापुरी को भी महावीर की निर्वाण स्थली मानते है। वे नालन्दा स्थित इस पावा की दूरी कुशीनगर से 12 मील बताते है तथा जनपद कुशीनगर को बुद्ध की महापरिनिर्वाण स्थली नहीं मानते है। परन्तु उनकी यह मान्यता तथ्य से परे है। कुशीनगर को मगध साम्राज्य के अन्तर्गत मानने का कोई औचित्य नहीं है। कुशीनगर के भग्नावशेषों के उत्खनन से बुद्ध की परिनिर्वाण स्थली के रूप मे इसकी पुष्टि हो चुकी हैं, जो सर्वमान्य है।

बौद्ध ग्रन्थों में भी मगध की राजधानी राजगृह या उसके उपनगर नालंदा के समीपस्थ पावा का कोई उल्लेख नहीं है, जबकि निकटवर्ती अनेक ग्रामों व नगरों का है। परवर्ती बौद्ध लेखकों ने भी उक्त पावा के आस्तित्व की कहीं चर्चा नहीं की है।

निष्कार्षतः कहा जा सकता हैं कि पावापुरी से कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है जिसके आधार इसे तीर्थंकर महावीर के निर्वाणस्थली पावा के रूप में स्वीकार किया जा सके। अस्तु यदि नालंदा जनपद स्थित पावापुरी वास्तविक नालंदा नहीं है, तो उस आधार का अनुसंधान आवश्यक है जिससे वास्तविक पावा का अभिज्ञान प्राप्त हो सके।

8. पावा की पहचान फाजिलनगर–सठियाँव (कुशीनगर, उत्तर प्रदेश) से :

कतिपय विद्वान मल्ल गणराज्य की उत्तरी राजधानी तथा महावीर की निर्वाण स्थली पावा की पहचान सठियॉव फाजिलनगर से करते है। जो कुशीनगर से लगभग 17 किमी0 दक्षिण पूर्व में $26^0-80'$ अक्षांश उत्तर तथा $84^0-18'$ देशांतर

---

[1] *दीघनिकाय,* 1–10।

[2] नहटा भँवर लाल, पुर्वोद्धृत।

पूर्व लखनऊ–गुहावटी राजमार्ग संख्या 28 पर स्थित है। सठियाँव एवं फाजिलनगर दो अलग–अलग ग्राम है। फाजिलनगर सठियॉव से उत्तर पूर्व में लगभग 1 किमी. की दूरी पर स्थित है। ए0सी0एल0 कार्लाइल पहले व्यक्ति है जिन्होने सठियॉव–फाजिलनगर को ही पावा के रूप में मान्यता दी थी।[1] वे कुशीनगर से पावा की अन्वेषण यात्रा करते हुये दक्षिण–पूर्व में सरेया, कुक्कुर पट्टी, नदवा, धनहॉ, चेतियॉव (सठियॉव), फाजिलनगर, उस्मानपुर, वनवीरा, मीरबिहार, पथरवां, झारमठिया (धारमठिया), करमैनी तथा गांगी टीकर आदि स्थानों की यात्रा की थी।[2] कार्लाइल ने सठियॉव से 1.5 मील पश्चिम की ओर बहने वाली घाघी नदी की पुरानी पेटी को जिसे, आजकाल अन्हिया कहा जाता है, संस्कृत शब्द स्नान का अपभ्रंश स्वीकार करते हुए यह सम्भवाना व्यक्त की है कि यह (अन्हिया) वही नदी हो सकती है जिसमें बुद्ध ने परिनिर्वाण के पूर्व स्नान किया था। अन्हिया वस्तुतः घाघी नदी की एक वेणी है जो पडरौना से 10 मील उत्तर 'सिंहा' ग्राम के निकट एक बड़ी झील से निकलती है। कार्लाइल ने इस तथ्य की ओर भी घ्यान आकृष्टि किया की पावा से कुशीनगर जाते समय बुद्ध ने जिस नदी में स्नान किया था, उसी नदी को बौद्ध ग्रन्थों में ककुत्था कहा गया है और घाघी तथा ककुत्था का एक ही अर्थ है। अतः उनके मतानुसार ककुत्था आधुनिक घाघी नदी है। परन्तु बुद्ध के समय इसकी धारा वहाँ थी, जहाँ आज अन्हिया नाला बहता है। कार्लाइल ने अपने खोज विवरण में सठियॉव तथा फाजिलनगर के प्राचीन डीह का विस्तृत विवरण दिया है। साथ ही साथ उन्होने एक स्तूप के घ्वंसावशेष को भी स्वीकारा हैं।[3] उनके अनुसार सिलोनी बौद्ध साहित्य में वर्णित कुशीनगर से पावा 12 मील पर गण्डक की ओर स्थित है।[4] कार्लाइल कुशीनारा के भग्नावेशेषों से दक्षिण–पूर्व में सठियॉव के भग्नावशेषों की

---

[1] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *ए0एस0आई0आर0*, भाग 18, पृ0 101–114।

[2] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *रिपोर्ट ऑफ टूर्स इन गोरखपुर, सारण एण्ड गाजीपुर,* 1877–1878–79–80, वाल्यूम 22, पृ0 29, 30, 31, वाराणसी 1966।

[3] *ए0एस0आई0आर,* वाल्यूम 18, पृ0 101–114।

[4] तदैव, पृ0 29।

दूरी 10 मील मानते है।[1] राजबली पाण्डेय ने भी कार्लाइल के सिद्धांत का अनुमोदन करते हुए सठियॉव–फाजिलनगर को ही पावा माना है।[2] इसी परम्परा का परिपालन भिक्षु धर्मरक्षित ने भी किया है और इसे ही पावा के रूप में स्वीकार किया है।[3] कार्लाइल के तर्कों से प्रभावित होकर डा0 एस0एन0 चतुर्वेदी ने भी इसी स्थल को प्राचीन पावा मानते है। डा0 योगेन्द्र मिश्र के अनुसार सठियॉव–फाजिलनगर ही महावीर की वास्तविक निर्वाण भूमि है।

कार्लाइल, डा0 राजबली पाण्डेय, धर्मरक्षित आदि विद्वान सठियॉव को चैत्य ग्राम का अपभ्रंश मानते हुए इसे ही पावा समझते है। कार्लाइल ने चेतियॉव शब्द की व्युत्पत्ति चैत्य से माना है। उनके अनुसार यह शब्द चैत्य वन का बिगड़ा हुआ रूप है। परन्तु वहां के उत्खनन से यह निश्चित हो गया है कि सठियॉव चैत्यग्राम का अपभ्रंश न होकर श्रेष्ठिग्राम का अपभ्रंश है।

भाषा विज्ञान के आधार पर भी सठियॉव से पावा का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया गया। के0एल0 सरावगी[4] के अनुसार सठियॉव श्रीपावा का अपभ्रंश है। 'श्री' का प्राकृत रूप सरि या सठि होता है। पावा का कालान्तर में यॉवा हो गया। इस प्रकार श्री पावा सठियॉवा बन गया। बोलचाल में सुविधा हेतु इसे सठियॉव कहने लगें। परन्तु डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री[5] ने इसका खण्डन किया है। उनका कथन है कि पावा का अपभ्रंश सठियॉव सिद्ध करने हेतु प्रस्तुत तर्क युक्ति संगत नही है। प्राकृत नियमानुसार श्री का सरि होना तो उचित है परन्तु र का ठ नही बनता है। इस प्रकार सठियॉवा को पावा का अपभ्रंश मानना समीचीन नहीं है। पुरातातविक साक्ष्यों से सठियॉव का प्राचीन रूप श्रेष्ठिग्राम प्रमाणित हो जाने के पश्चात यहाँ कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता ।

---

[1] तदैव, पृ0 30।

[2] पाण्डेय, राजबली, पुर्वोद्धृत, पृ0 78।

[3] धर्मरक्षित, *कुशीनगर का इतिहास,* पृ0 24–26।

[4] के0एल0, सरावगी, *पावा समीक्षा,* छपरा, 1972, पृ0 42।

[5] शास्त्री, नेमचन्द्र, *तीर्थंकर महावीर और उनकी देशना,* पृ0 301, सागर (म0प्र0), 1974

प्राचीन पावा का नाम परिर्वतित होकर फाजिलनगर हो जाने के विषय मे आनन्द प्रसाद जैन का कथन है कि 'पावा' काल के प्रभाव में स्मृति पटल से ओझल हो गया। सम्भवतः किसी मुसलमान शासक ने पावा नगर नाम को फाजिलनगर के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार पावा सदा के लिए भूला दिया गया। परन्तु यह कथन उचित नहीं प्रतीत होता क्योकि इतिहास से ज्ञात होता है कि मौर्य शासन काल के उत्तरार्द्ध में पावा का लोप हो चुका था और मौर्य काल में भारत में मुसलिम सत्ता का आस्तित्व ही नहीं रहा है।

पावा के अन्वेषण में सठियॉव–फाजिलनगर का उत्खनन कार्य गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग तथा उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व संगठन लखनऊ के संयुक्त तत्वाधान में डा0 शैल नाथ चतुर्वेदी के निर्देशन में सन् 1979–1980 ई0 में हुआ। उत्खनन से महावीर की निर्वाण स्थली पावा का निश्चित अभिज्ञान तो नहीं हुआ, परन्तु सठियॉव की प्राचीनता प्रमाणित हुयी। फाजिलनगर टीले के उत्खनन से दो स्तर प्राप्त हुए। प्रथम स्तर गुप्तकालीन है तथा द्वितीय मध्यकालीन। सठियॉव से 'श्रेष्ठिग्रामाग्रहारस्य' अंकित मिट्टी की एक मुद्रा प्राप्त हुयी थी[1] जिससे यह संकेत मिलता है कि सठियॉव का प्राचीन नाम श्रेष्ठिग्राम था और फाजिलनगर अग्रहार के रूप में प्रतिष्ठित था। सठियॉव के गढे से मौर्ययुगीन ईटों से निर्मित दीवार के अवशेष, लाल रंग के बर्तन के साथ काले लेपयुक्त तथा कृष्ण मार्जित भाण्ड (एन0बी0पी0) तथा धरातल से काले–लाल भाण्ड भी प्राप्त हुए थे। अतः यह कहा जा सकता है कि फाजिलनगर सठियॉव क्षेत्र का निर्माण मौर्य काल एवं गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ था। इसके पहले कोई आस्तित्व नहीं था। इस प्रकार सठियॉव का पावा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

---

[1] फाजिलनगर–सठियॉव उत्खनन, संक्षिप्त परिचय, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, 1979।

'ए हिस्टारिकल एटलस ऑफ साउथ एशिया'[1] में सठियॉव फाजिलनगर के निकट पावा अंकित है जो इस नगर के पावा होने पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।

सिंहली बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश एवं महावंश में पावा की स्थिती कुशीनगर से मही (गण्डक) नदी की ओर तीन गब्यूती (12मील) बतायी गई है जबकि फाजिलनगर–सठियॉव कुशीनगर से 10 मील दक्षिण–पूर्व में स्थित है और इसका गण्डक नदी से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।

फाजिलनगर सठियॉव को पावा स्वीकारने मे अधिकांश विद्वान संदेह प्रकट करते हैं। श्री भगवती प्रसाद खेतान[2] ने यह आपत्ति की है कि कार्लाइल ने कुशीनगर से सठियॉव की दूरी 10 मील माना है परन्तु दिशा निर्धारण के विषय में गण्डक के सम्बन्ध में श्री कार्लाइल मौन है। डा0 राजबली पाण्डेय[3] गण्डकी को पावा और कुशीनगर के बीच मान कर चलते है। श्री के0एल0 सरावगी[4] बुद्ध को वैशाली के निकट गण्डक को पार करने को निश्चित रूप से स्वीकारते है। जबकि वास्तविकता यह है कि फाजिलनगर–सठियॉव का गण्डक से न सम्बन्ध रहा है और न है। अतः मात्र सम्भावनाओं के आधार पर सठियॉव को पावा स्वीकार नहीं किया जा सकता । गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग से सम्बद्ध संग्रहालय के संचालक एवं फाजिलनगर–सठियॉव उत्खनन के निर्देशक प्रो0 एस0एन0 चतुर्वेदी के सहयोगी श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी सठियॉव को पावा स्वीकारने में सन्देह व्यक्त करते है उनका स्पष्ट विचार है कि गुप्तकालीन अग्रहार के पूर्व का वहां कोई अवशेष नहीं है। श्री त्रिपाठी की सम्भावना का उत्तर

---

[1] सम्पा0, पाल विटले, *ए हिस्टारिकल एटलस ऑफ साउथ एशिया*, शिकागो एण्ड लन्दन, 1978।

[2], *युग युगीन सरयूपार*, खेतान, भगवती प्रसाद, पावा की पहचान तथा वैशाली–पावा मार्ग की खोज, वाराणसी, 1987, पृ0 64।

[3] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 78।

[4] सरावगी, के0एल0, पूर्वोद्धृत, पृ0 20–21,।

विधिवत् पुरातातविक उत्खनन के पश्चात ही प्राप्त हो सकता है। अतः पावा का अभिज्ञान अन्यत्र किया जा सकता है।

9. पावा की पहचान पडरौना (कुशीनगर, उ0 प्र0) से :

पडरौना की प्राचीनता और पावा की स्थिति के विश्लेषण के आधार पर प्राचीन पावा की स्थिति पडरौना में होने की संभावना व्यक्त की जाती है। कनिंधम जैसे पुरातत्वविद् पावा, पावन, पदरमन, पदरबन तथा पडरवन आदि विभिन्न नाम रूपों के परिवर्तन रूप में पडरौना नाम के विकास को स्वीकारते हैं।[1] 1914 ई. में डा. बुकानन के सर्वेक्षण के समय इसे परऔना (Parraona) सम्बोधित किया जाता था।[2] तत्पश्चात् कनिंधम के सर्वेक्षण काल (1862 ई0) में पडरओना (Padraona) नाम से इसका सम्बोधन होता था।[3] फ्यूहरर[4] के समय (1886–91) इसमें किंचित परिवर्तन हुआ और यह परौना पुकारा जाने लगा।

आधुनिक पडरौना नगर पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद के उत्तरी– पूर्वी कोने पर 26°54' उतरी अक्षांश तथा 83°59' पूर्वी देशान्तर पर, हिमालय की तराई मे गण्डक नदी से 12 मील की दूरी पर प्रकृतिस्थ है। यहाँ से चम्पारन (बिहार प्रदेश) की सीमा पाँच मील की दूरी से प्रारंभ हो जाती हैं। यह स्थल कुशीनगर से 12 मील उत्तर–पूर्व की दिशा में बाणी (बाँसी) नदी के दक्षिणी छोर पर स्थित है।

सुत्तनिपात[5] के परायणवग्ग के अनुसार पावा उत्तर भारत मे श्रावस्ती से कुशीनगर और कुशीनगर से वैशाली जाने वाले मुख्य व्यापार मार्ग पर स्थित था।

---

[1] कनिंघम ए, *द एन्शियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृ0 365, वाराणसी, 1975।

[2] मार्टिन माण्टगोमरी, पुर्वोद्धृत, पृ0 354 ।

[3] कनिंघम, ए0, *द एन्शियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृ0 365, वाराणसी, 1975।

[4] फ्यूहरर, ए0, द मानुमेण्टल एण्टीक्विटीज एण्ड इन्स्क्रिप्शन इन नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज, एण्ड अवध, पृ0 249।

[5] सुतनिपात, परायणवग्ग, पद 1011,1015, पृ0432

सुमंगलविलासनी[1] से ज्ञात होता है कि पावा, कुशीनगर से 3 गव्यूति (12 मील) की दूरी पर स्थित था। अमरकोश[2] के अनुसार, एक गव्यूति चार मील के बराबर होती है। सिंहली बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश एवं महावंश[3] के अनुसार कुशीनगर से 12 मील दूर गण्डकी नदी की दिशा में पावा स्थित था। टर्नर[4] ने भी स्वीकार किया है कि कुशीनगर से पावा की दूरी 12 मील है। मललसेकर[5] ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है।

बौद्ध ग्रन्थों में विवृत्त दिशा एवं दूरी के आधार पर डा. बुकनन प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पडरौना को पावा होने का आधार अपने सर्वेक्षण द्वारा प्रदान किया। उन्होंने 1814 मे इस क्षेत्र का सर्वेक्षण करके पडरौना के उपनगर छावनी के निकट कुबेर स्थान जाने वाली सड़क के दक्षिण स्थित प्राचीन टीले का उत्खनन कराया था।[6] कनिंघम ने 1861 मे इस क्षेत्र का सर्वेक्षण तथा उस टीले का उत्खनन करवा कर यह घोषित किया था कि पडरौना ही मल्लों की राजधानी पावा है,[7] जो प्राचीन काल में गण्डक के किनारे स्थित था। उन्होंने टीले के कुछ उपरी भाग की खुदाई भी करवाया जहाँ से गोल किनारे वाले बड़े आकार के ईंटे मिले थे। उन्होने यहाँ पर दो स्तूपों एवं 100 वर्ग फीट वर्गाकार आंगन की संम्भावना व्यक्त की थी। वस्तुतः पडरौना के नाम से भी पावा की एकात्मकता का बोध होता है। रोचक बात

---

[1] सुमंगल विलासिनी, पूर्वोद्धृत, पृ0 282।

[2] गव्यूतिस्तुक्रोशयुंगलम्, *अमरकोश,* मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1984।

[3] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 78

[4] टर्नर, जी, बुद्धिस्ट एनल्स, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी नं0 19 भाग–2, पृ0 7, कलकत्ता, 1838

[5] मललसेकर, जी0 पी0 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, लंदन, 1938 पृ0 193।

[6] मार्टिन माण्टगोमरी, पूर्वोद्धृत, पुर्नसंस्करण, 1976, वाल्यूम 2, पृ 354–357।

[7] ए0 एस0 आई0 आर0, 1861–62, वाल्यूम I पृ0 74–76; कनिंघम, ए0, एन्सियंट ज्यागाफी ऑफ इण्डिया, पृ0 366–67।

यह है कि कनिंधम के इस पावा–अभिज्ञान को अन्य अनेक विद्वानों ने भी समय–समय पर समर्थन दिया है।

श्री नन्दलाल डे ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है कि पडरौना गण्डक के किनारे स्थित था, जहॉ भगवान बुद्ध का निर्वाण से पूर्व पड़ाव था।[1] श्री राम प्रसाद पाण्डेय ने लिखा है कि पडरौना, प्राचीन पावापुरी है जहॉ वशिष्ट गोत्रीय मल्ल राजपूतों का एक प्रसिद्ध संघ राज्य था तथा कुशीनगर के मल्ल राज्य से पडरौना के मल्लों का महत्व अधिक था।[2] आधुनिक संशोधक डा. कृपाशंकर सिंह ने भी इस तथ्य का अनुमोदन किया है।[3] डा. सिंह के अनुसार बाणी नदी प्रारंभिक काल में सुरक्षा की दृष्टि से अन्य जातियों के आक्रमण से पडरौना के रक्षापंक्ति का कार्य करती थी। पडरौना की स्थिति के बारे में डा0 सतीश चंद्र सिंह ने लिखा है कि वर्तमान वनी (बॉसी) नदी गण्डक की एक शाखा है जो पडरौना के पास से बहती है।[4]

गोरखपुर गजेटियर में भी उल्लेख है, कि पडरौना के निकट एक पोखरे के उत्खनन के समय सन् 1878 ई. मे एक बडी नाव के टुकड़े मिले थे। इससे भी सूचित होता हैं कि गण्डक नदी की धारा कभी इस ओर से बहती रही है।

परन्तु कार्लाइल ने जो कनिंधम के बाद 1876–77 में इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया था, कनिंधम के मत का खण्डन किया है। कार्लाइल का पडरौना को पावा न मानने का मूलभूत आधार यह था कि "पडरौना की स्थिति वैशाली–कुशीनगर के सीधे मुख्य मार्ग पर नहीं है। यह वैशाली–कुशीनगर मार्ग से

---

[1] डे नन्दलाल, *दी ज्याग्राफीकल डिक्शनरी ऑफ एंशिएण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया,* पृ0 250, लन्दन, 1927।

[2] पाण्डेय रामप्रसाद, *गोरखपुर जिले का इतिहास,* पृ0 36, प्रयाग, 1942।

[3] सिंह, कृपाशंकर, *लैंड यूज एण्ड न्यूट्रिशन इन पडरौना तहसील,* देवरिया (अप्रकाशित), पृ0 127।

[4] सिंह, सतीशचंद्र ,*चेन्जेंज इन द कोर्स ऑफ रिवर एंड इट्स एफेक्ट्स ऑन द अर्बन सेटलमेंट्स इन द मिडिल गंगेज प्लेन,* वाराणसी, 1973, पृ0 76।

सीधे मुख्य मार्ग पर नहीं है तथा कुशीनगर की पडरौना की राही दूरी बौद्ध ग्रन्थों में बतायी गई दूरी से अधिक है। यह वैशाली–कुशीनगर मार्ग से बिल्कुल हटकर बहुत उत्तर की ओर स्थित है। अतः पडरौना को पावा मानने की कोई संभावना ही नहीं है। ये फाजिल नगर–सठियाँव को पावा मानते है और इसे वैशाली कुशीनगर मार्ग पर स्थित बताते हैं।[1]

अब मूल प्रश्न, मार्ग का है। वैशाली से कुशीनगर का प्राचीन मार्ग कौन सा था, इस तथ्य के निर्धारण के लिए इस क्षेत्र का बौद्धकालीन भौगोलिक अध्ययन अपेक्षित है।

बौद्ध साहित्य में बुद्धकालीन राजमार्गों के विषय में विस्तृत विवरण मिलता है। महापरिनिब्बाण सुत्त से पुक्कस मल द्वारा 500 गाड़ियों के साथ कुशीनगर से पावा की यात्रा करने का विवरण प्राप्त होता है।[2] सुत्तनिपात के परायण वग्ग में पावा को उत्तर भारत में श्रावस्ती, कुशीनगर, वैशाली के प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित बताया गया है। राजगृह – श्रावस्ती तक का मार्ग प्रमुख राजमार्ग था, जिस पर अम्बलट्ठिका, नालन्दा, पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र), कोटिग्राम, वैशाली, भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम, भोगनगर, पावा, कुशीनगर, पिप्पलीवन, रामगाम, कपिलवस्तु, सेतव्या इत्यादि नगर स्थित थे। बावरि ब्राह्मण के शिष्यगण, श्रावस्ती से राजगृह जाते समय, श्रावस्ती, सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली और मागधपुर (राजगृह) के विश्राम–स्थलों पर ठहरते हुए रमणीय पाषाण चैत्य में पहुँचे थे।[3] इस प्रकार श्रावस्ती–राजगृह बुद्धकालीन भारत का एक प्रमुख मार्ग था जिस पर कुशीनगर स्थित था।

---

[1] कार्लाइल, ए० सी० एल०, *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, रिपोर्ट ऑफ टूर्स इन गोरखपुर, सारण एंड गाजीपुर,*1877–78–79–80, वाराणसी, 1966, पृ 30।0

[2] *साकृत्यायन राहुल एवं कश्यप जगदीश दीघ निकाय* (हिन्दी), परिनिर्वाणसुत, 2/3, पृ० 138–39।

[3] सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसीनारं च मंदिरं।

पावं च भोगनगरं वेसालि मगधपुरं ।। *सुतनिपात, परायणवग्ग,* पद 1011, 1015, पृ० 432।

महापरिनिब्बाण सुत्त से राजगृह–कुशीनगर मार्ग के विषय में विस्तृत सूचना मिलती है। साथ ही महापरिनिर्वाण के पूर्व बुद्ध ने वैशाली से कुशीनगर की यात्रा करते हुए जिन नगरों एवं गाँवों में बिहार किया था, उसका क्रमबद्ध अभिज्ञान प्रदान करता है।[1] इसमें ग्रामों का क्रम इस प्रकार दिया गया है– भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बुगाम, जम्बुगाम और भोगनगर।[2] इसके अनुसार वैशाली से चलकर सर्वप्रथम वे भण्डगाम मे विश्राम किये थे। अंगुत्तर निकाय के अनुसार, भण्डगाम वज्जि जनपद में था तथा इसकी स्थिति वैशाली और हत्थिगाम के मध्य थी। हत्थिगाम भी वज्जि जनपद में था।[3] संयुक्तनिकाय वज्जिसुत मे इसे वज्जियों का ग्राम बताया गया है।[4] अम्बगाम, जम्बुगाम और भोगनगर किस जनपद में स्थित थे, इसकी पालि साहित्य में कोई सूचना नहीं मिलती है। बी.सी. लाहा[5] का मत है कि भोगनगर, मल्लराष्ट्र मे स्थित था। भरत सिंह उपाध्याय[6] के अनुसार पावा के अधिक समीप होने के कारण इसे मल्ल राष्ट्र में ही मानना उचित होगा। किन्तु राहुल संकृत्यायन[7], हेमचन्द्र राय चौधरी[8], और मल्ल शेकर[9] इसे वज्जिसंघ का अंग और नगर मानते हैं। वज्जि संघ और मल्ल राष्ट्र के भौगोलिक अध्ययन से भी यह स्पष्ट है कि गण्डक मल्लराष्ट्र' और वज्जि संघ की विभाजक रेखा थी।

इस प्रकार पावा–कुशीनगर मार्ग के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि बुद्ध काल में कुशीनगर–पावा मार्ग वैशाली से श्रावस्ती तक जाने वाले मुख्य राजमार्ग पर स्थित था।

---

[1] *दीघनिकाय,* महापरिनिर्वाणसुत, 2/3, पृ0 122।

[2] तदैव पृ0 135।

[3] *अंगुतर निकाय,* खण्ड 2, पृ0 1।

[4] *धर्मरक्षित संयुक्तनिकाय* (हिन्दी, खण्ड 2, सारनाथ, वाराणसी, 1954, पृ0 497)।

[5] लाहा विमलचरण, *ज्याग्राफी ऑफ अर्ली बुद्धिज्म वाराणसी, 1973,*, पृ0 2

[6] उपाध्याय भरत सिह, *बुद्ध कालीन भारतीय भुगोल,* प्रयाग, 1961, पृ0 327।

[7] *दीघनिकाय* (हिन्दी,) पृ0 325।

[8] राय चौधरी, हेमचंद, *पालिटिकल हिस्ट्ररी ऑफ नार्दर्न इण्डिया,* पृ0 118–120।

[9] मलल शेकर, जी0पी0, *डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स,* खण्ड 2, पृ0 93।

के0डी0 वाजपेयी ने पावा की पहचान, पडरौना के साथ करते हुए पडरौना को उक्त मार्ग पर स्थित बताया है। उनके अनुसार, यदि हम वैशाली और लुम्बनी के बीच अशोक द्वारा स्थापित स्तम्भों की स्थिति का अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि मौर्य सम्राटों ने पाषाण स्तम्भों की स्थापना मुख्य मार्ग पर ही करवायी थी।[1]

कनिंधम और कार्लाइल नें स्तंभों के आधार पर प्राचीन राजमार्गों का निर्धारण किया हैं। ये स्तंभ बुद्ध के उपदेशों के प्रचार प्रसार के साथ–साथ राजाज्ञा एवं मार्ग निर्देशन का कार्य करते थे। कनिंधम[2] ने तो केवल इन मार्गों का संकेत ही किया है, परन्तु कार्लाइल[3] ने अशोक स्तंभो के आधार पर दो मुख्य राजमार्गों का विस्तृत विवरण दिया है – एक पाटलिपुत्र से कौशाम्बी एवं दूसरा पाटलिपुत्र से रामपुरवा जाता था। कार्लाइल ने रिपोर्ट में लिखा है कि "गंगा के उस पार वैशाली से रामपुरवा के बीच चार अशोक स्तंभ आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। सम्राट अशोक ने इन स्तंभों को गण्डक से एक निश्चित दूरी को ध्यान में रखते हुए गण्डक के पूर्व दिशा में वैशाली और उत्तर–पश्चिम की दिशा में लौरिया नन्दनगढ़ की ओर स्थापित करवाये थे।"[4]

श्री कार्लाइल के अनुसार, प्रथम अशोक स्तंभ वैशाली से थोड़ी ही दूर उत्तर में बखरानामक स्थान पर निर्मित है। यह स्तंभ वस्तुतः बखरा के समीप कोल्हुआ ग्राम में है। दूसरा अशोक स्तंभ प्रसिद्ध ग्राम केसरिया से 20 मील उत्तर–पश्चिम तथा बेतिया से 19 मील दक्षिण–पूरब लौरिया – अरेराज नामक ग्राम में स्थापित किया गया है। कनिंधम ने लिखा है कि केसरिया वैशाली से 30 मील उत्तर–पश्चिम की ओर स्थित है।[5] कार्लाइल ने तीसरे अशोक स्तम्भ को बेतिया से

---

[1] वाजपेयी, के0डी0, *लोकेशन ऑफ पावा, युग युगीन सरयू पार,* वाराणसी, 1987, पृ0 56।

[2] कनिंघम, ए0, *एनसियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* वाराणसी, पृ0 497।

[3] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *ए0एस0आई0आर0, टूर्स इन गोरखपुर सारन एण्ड गाजीपुर,* पृ0 54।

[4] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *ए0एस0आई0आर0, टूर्स इन गोरखपुर सारन एण्ड गाजीपुर,* पृ0 54।

[5] कनिंघम, ए0, *एनसियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* वाराणसी, पृ0 376।

15 मील उत्तर–पश्चिम दिशा में लोरिया नन्दनगढ़ ग्राम के निकट ही, उत्तर–पूरब में स्थित बताया है। कनिंधम ने लौरिया नन्दनगढ़ से गण्डक की दूरी 10 मील बताई है जो आज भी लगभग वहीं है। कनिंधम ने इस मार्ग की ऐतिहासिकता एवं वास्तविकता को ही ध्यान में रख कर पडरौना को पावा माना हैं। उन्होंने लिखा है कि पडरौना लोरिया नन्दनगढ़ से सीधी रेखा में दक्षिण–पश्चिम के कोने पर 27 मील की दूरी पर स्थित है।

श्री भगवती प्रसाद खेतान जो पडरौना के ही निवासी थे, पडरौना की पहचान पावा से करने का प्रयास किया है।[1] श्री खेतान का कहना है कि श्री कार्लाइल, वैशाली–नेपाल मार्ग का अशोक स्तम्भ एवं स्तूप के आधार पर तो विस्तृत से वर्णन करते हैं, लेकिन लौरिया नन्दगढ़ से पावा की दिशा और दूरी को पूरी तरह विस्मृत कर देते हैं। अशोक स्तंभो के आधार पर, यही प्रतीत होता है कि वैशाली–कुशीनगर मार्ग पडरौना होकर जाता है। कार्लाइल वैशाली–कुशीनगर के सठियॉव फाजिलनगर होकर जाने वाले जिस मार्ग को प्रतिपादित करते हैं, उस पर एक भी अशोक स्तम्भ निर्मित नहीं है। श्री खेतान का मानना है कि इस क्षेत्र से प्राप्त पुरातात्विक सामग्रियाँ विशेष रूप से जैन तीर्थकरों की मूर्तियां एवं अन्य कलाकृतियाँ शुंग, गुप्त, पाल इत्यादि काल के इतिहास को प्रतिबिम्बित करती हैं तथा स्थल की प्राचीनता की पुष्टि करते हुए पावा की ओर संकेत करती है।[2] श्री कनिंधम द्वारा सिद्धान्ततः पडरौना को पावा के रूप में प्रतिपादन एवं अन्य विद्वानों द्वारा इसके समर्थन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि पडरौना ही पावा है।

परन्तु भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, पटना सर्किल द्वारा डा0 अरूण कुमार सिंह के नेतृत्व में 1985 में छावनी के टीले का उत्खनन कराया गया जिससे स्तूप की संभावना निर्मूल सिद्ध हुई और यह टीला मध्यकालीन भवन का

---

[1] खेतान, भगवती प्रसाद, *महावीर निर्वाण भूमि पावा : एक विमर्श,* वारावणसी, 1992, पृ0 92–135।

[2] खेतान, भगवती प्रसाद, *पावा अनुशीलन, महावीर निर्वाण भूमि पावा : एक विमर्श,* वाराणसी, 1992, पृ0 167।

अवशेष ठहरा। अत: इसका पूर्ण उत्खनन तथा आस–पास के क्षेत्रों का सर्वेक्षण आवश्यक है। निश्चित पुरातात्विक प्रमाण के अभाव में पडरौना को अंतिम रूप से पावा घोषित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन पावा की पहचान अभी तक नहीं हो पायी है। प्रमाणिक साक्ष्य के अभाव और संशय की स्थिति में लोग दो–दो पावा पुरी का परिदर्शन कर लेते है, जबकि पावापुरी एक नगरी थी जो मल्लों की दूसरी राजधानी कुशीनगर से बहुत दूर नहीं थी और इसी स्थान पर जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

चूँकि मेरे शोध का विषय ही 'कुशीनगर जनपद का कला और पुरातत्व' है, इस दृष्टि से मैने सम्पूर्ण जनपद का पुरातात्विक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान मुझे फाजिल नगर – सठियाँव तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से लेकर तुर्कपट्टी मछुअवाँ तक ऐसे अनेक टीले, खण्डहर अथवा पुरातात्विक महत्व के स्थल मिले, जहाँ उत्खनन तो क्या ढंग का पुरातात्विक सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है। इन स्थलों में छहूँ, उजारनाथ, सपहीखास, देवलवृत, गगलवाँ एवं धारमठिया के अवशेष हमारा ध्यान बरबस ही आकृष्ट करते हैं। इनमें धारमठिया की चर्चा की जा चुकी है। देवलवृत और उससे जुड़ा हुआ ग्राम गगलवाँ के पुरावशेष हमारा ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करते हैं जहाँ गुप्त कालीन ईटों के भण्डार देखे जा सकते हैं। यहाँ से ब्राह्मण धर्म की अनेक मूर्तियाँ मिली है। यहाँ का एक प्राचीन विशाल भवन का अवशेष और इस स्थल की सुरक्षा प्राचीर के अवशेष हमें यह सोचने पर विवश करते है कि यह श्रावस्ती के समान कोई महत्वपूर्ण केन्द्र था। यह स्थल कुकुत्था नदी के पूर्व की ओर स्थित है। पावा से सम्बद्ध प्रमाण इन स्थलों के उत्खनन से ही प्रकाश में आ सकते हैं। ऐसा न होने के कारण, वर्तमान परिस्थिति में हम यही संभावना व्यक्त कर सकते हैं कि पावापुरी यही कहीं रही होगी।

कुशीनारा (कुशीनगर) के मल्ल :

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, प्राचीन कुशावती व कुशीनारा ही आधुनिक कुशीनगर है[1] जिसकी ऐतिहासिकता पुरातात्विक सामाग्रियों के आधार पर प्रमाणित हो चुकी है। वैदिक साहित्य में मल्लों अथवा उनकी राजधानी का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु परवर्ती साहित्य में उनका वर्णन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। रामायण तथा रघुवंश[2] के अनुसार कुशावती की स्थापना राम द्वारा अपने पुत्र कुश के लिए की गयी थी। कुश के अयोध्या चले जाने के बाद लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु 'मल्ल' ने कुशावती को अपनी राजधानी बनाया और उसके द्वारा आवर्त भू–खंड मल्ल राष्ट्र कहलाया। महाभारत पूर्व युग में महासुदस्सन को कुशावती का राजा बताया गया है।[3] इससे सिद्ध होता है किसी समय मल्ल राज्य राजाओं द्वारा शासित था। महाभारत के भीष्म पर्व[4] में कुशीनारा, मल्ल राष्ट्र के रूप में वर्णित है जो अंग, वंग और कलिंग के समान ही पूर्वी भारत में एक प्रमुख राज्य था। महाभारत[5] का मल्लराष्ट्र (मल्ल रट्ठ) मुख्यतः दो भागों में बटा हुँआ था। इनमे से एक की राजधानी कुशावती या कुशीनारा तथा दूसरे भाग की पावा थी।[6] सम्भवतः काकुत्था नदी जिसे आजकल कुकु (घीघी) कहते हैं, दोनों भागों को एक दूसरे से अलग करती थी। महाभारत में मल्ल के दो भागों–मुख्य मल्ल तथा दक्षिण मल्ल का उल्लेख मिलता है।[7] दक्षिण मल्ल की राजधानी कुसीनारा थी।

गौतम बुद्ध के पूर्व, विदेह की भाँति मल्ल भी राजतंत्रात्मक राज्य था। कुक जातक में ओक्काक (इक्ष्वाकु) नाम से एक मल्ल राजा का उल्लेख मिलता है। इस नाम से यह संकेत मिलता है कि साक्यों की भाँति मल्ल राजकुमार भी अपने

---

[1] दत्त एन0 एण्ड बाजपेयी, के0डी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 345।

[2] कालीदास, *रघुवंश,* 15/97।

[3] *महावंश,* भाग 2, पृ0 1–6 ; *दीघनिकाय,* भाग दो, पृ0 134।

[4] *महाभारत, भीष्म पर्व,* 10/45।

[5] *महाभारत* VI, 9/34।

[6] *महापरिनिब्बानसुत्तन्त,* भाग–2, पृ0 161–162।

[7] *महाभारत,* II, 30/3, 12।

को इक्ष्वाकु वंश का ही कहते थे।[1] मल्ल राज्य के राजतंत्र के काल में कुसावती नगर इसकी राजधानी थी। वह कब और कैसे गणराज्यों में परिवर्तिति हो गया यह कहना कठिन है, किन्तु बुद्ध के काल में उसकी स्थिति निश्चित रूप से एक स्वतंत्रत गणराज्य की थी। कुसीनारा के मल्लों के संथागार का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। जहाँ एकत्र होकर वे विचार विमर्श करते थे। बुद्ध काल में मल्लों की राजधानी कुसीनारा एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी, जहाँ पर बुद्ध को महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ था।[2]

कुशीनगर के पुरातात्विक उत्खनन के पूर्व कुशीनगर की स्थिति के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं था। महापरिनिब्बानसुत्त में उल्लेख है कि कुसीनारा नगर का साल उपवन (उपवतन) हिरण्यती नदी के समीप था। फाह्यान ने भी कुशीनगर की स्थिति हिरण्य नदी के किनारे बताई है और उसके किनारे युगल शाल वृक्षों का भी विवरण दिया है।[3] विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार गण्डक का नाम ही हिरण्यवती था और कुसीनारा अथवा कुसीनगर छोटी राप्ती अथवा गण्डक के मिलन बिन्दु के समीप की पहाड़ियों के उस पार नेपाल में था[4] तथापि उन्होंने कालान्तर में अपने मत में संशोधन किया। रीज डेविड्स ने भी यह मत व्यक्त किया था कि चीनी तीर्थ यात्रियों के विवरण की दृष्टि से कुशीनगर शाक्य प्रदेश के पूर्व एवं वज्जिगण के उत्तर में पहाड़ी ढाल पर स्थित था।[5] परन्तु कनिंधम के प्रमाणिक उत्खननों तथा कसया के समीप निर्वाण मन्दिर के पीछे स्थित विशाल स्तूप से "परिनिर्वाण चैत्ये ताम्रपट्ट इति"[6] शब्दों सहित प्राप्त एक ताम्रपत्र से विद्वानों ने

---

[1] *महापरिनिब्बानसुत्तन्त, डायलॉग ऑफ द बुद्धा,* पार्ट I, पृ0 114 / 115

[2] जातक, 1.292।

[3] गाइल्स, एच0ए0, *द ट्रेवेल्स ऑफ फा–ह्यान,* लन्दन, 1956, पृ0 40–41।

[4] स्मिथ, वी0, *ए अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* चतुर्थ संस्करण, लन्दन, 1924, पृ0 168,

[5] डेविड, रीज, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* पृ0 26।

[6] *ए0एस0आई0आर,* खण्ड 1, 1861–62, पृ0 77–78 ; *जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी,* 1913, पृ0 152।

निर्विवाद रूप से कसया के निकटवर्ती खण्डहर को मल्ल गणराज्य की दक्षिणी राजधानी कुशीनगर को स्वीकार कर लिया है। कनिंधम ने कुशीनगर को समीपवर्ती नगर कसया से समीकृत किया है तथा इसे गोरखपुर से पूरब 35 मील दूर बताया है।[1]

वर्तमान कुशीनगर 26°45' उत्तरी अक्षांश और 83°55' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। यह गोरखपुर से 50 किमी. पूरब, देवरिया से 33 किमी. उत्तर और पडरौना से 18 किमी दक्षिण–पश्चिम में स्थित है।

डा. राजबली पाण्डेय ने कुशीनगर के आधुनिक कसया और अनरूधवा नामकरण के सम्बंध में लिखा है कि मल्लराष्ट्र के पतन के पश्चात कुशीनगर का राजनैतिक महत्व जाता रहा, इसकी धार्मिक प्रतिष्ठा ही केवल शेष रही। इसलिए बौद्ध सन्त महात्माओं के नाम के ऊपर इन स्थानों के नाम पड़े। अट्ठकथा के अनुसार बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्य आनन्द राजगृह चले गये। किन्तु मल्लों को सान्तवना देने के लिए उनके दूसरे शिष्य अनिरूद्ध कुशीनगर में कई दिनों तक रूके रहे। अतः उन्हीं के नाम पर कालान्तर में कुशीनगर का नाम अनिरूधपुर पड़ा जो बिगड़ते –2 अनुरूधवाँ हो गया। कसया उस स्थान का नाम पड़ा जहाँ पर महाकश्यप ने पावा से कुशीनगर आते समय दोपहर को विश्राम किया था। काश्यप का ही विकृत रूप आधुनिक कसया नाम से प्रचलित है। अतः मल्लों की राजधानी कुशीनगर विद्वानों द्वारा आधुनिक कसया को ही स्वीकारा जाता है।[2]

बौद्ध साहित्य में वर्णित कुशीनगर :

---

[1] कनिंघम, ए0, *एंशियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृ0 363, 493।

[2] पाण्डेय राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 77।

बौद्ध साहित्य में कुशीनगर का विशद वर्णन मिलता है। इसमें कुशीनगर के साथ कुसीनारा1 कुशीनगरी2 और कुशीग्राम3 प्रभृति अन्य नामों का भी उल्लेख है। बुद्ध पूर्व युग में यह कुशावती के नाम से विख्यात थी। बुद्ध ने कुशीनारा को प्राचीन कुशावती से अभिर्हित किया था। विस्तार और समृद्धि की दृष्टि से उनका कहना था कि यह राजनधानी पूर्व से पश्चिम 12 योजन लम्बी एवं उत्तर से दक्षिण 7 योजन चौडी थी।4 इसमें सात प्राकार, चार तोरण और खजूर वृक्षों के साथ निकुंज थे। यह नगर हिरण्यवती नदी के पश्चिमी तट के समीप एक प्रमुख स्थलमार्ग पर स्थित था। इसी स्थल–मार्ग से बावरी ऋषि के शिष्यों के जाने का उल्लेख है।5 बुद्ध की मृत्यु के समय महाकश्यप भी राजगृह से कुशीनगर इसी मार्ग से गये थे।

इस नगर की स्थिति, रक्षा एवं व्यापार की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल थी। नगर के समीप ही उपवतन नामक शालवन था जिसके एक भाग को मल्लों ने प्राचीन उद्यान मे परिणत कर दिया था। यह हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर स्थित था।[6] इस उपवतन शालवन में ही भगवान् ने अन्तिम निवास किया था और यहीं युगल साल वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। उपवतन शालवन को कनिंघम ने वर्तमान कसया को माथा कुँवर कोट से समीकृत किया है।[7] अन्तिम बार कुशीनारा में आने से पूर्व भी भगवान बुद्ध यहां आये थे। अंगुत्तरनिकाय के कुशीनारा सुत्त का उपदेश बुद्ध ने मल्लों को उपवतन शालवन में ही दिया था।[8]

---

[1] *दीघनिकाय,* भाग 2, पृ0 109।

[2] *दिव्यावदान,* पृ0 152।

[3] तत्रैव, पृ0 108।

[4] सांकृत्यायन, राहुल, *दीघनिकाय* (हिन्दी), वाराणसी, 1935, भाग 2, पृ0 146–152।

[5] *सुत्तनिपात,* 5, 10, 12।

[6] *सारत्थप्पकासिनी,* जिल्द 1, पृ0 222।

[7] *ए0एस0आई0ए0आर0,* 1861–1862, पृ0 77–83।

[8] *अंगुतर निकाय,* जिल्द 2, पृ0 238।

बौद्ध ग्रन्थो में कुशीनगर एवं अन्य प्रमुख नगरों के बीच की दूरी उल्लिखित है जो इस नगर की स्थिति निश्चित करने में सहायक है। कुशीनगर से पावा की दूरी तीन गव्यूत (लगभग 3/4 योजन, आधुनिक 6मील) थी। बुद्ध ने अपनी अन्तिम यात्रा में इसी रास्ते से ककुथा नदी को पार किया था। राजगृह से इस नगर की दूरी 25 योजन एवं सांगल (स्यालकोट) से 100 योजन थी। ह्वेनसांग कुशीनगर से 700 ली चलकर वाराणसी पहुँचा था।[1]

कुशीनगर बहुत समृद्धिशाली नगर था। स्वयं बुद्ध ने इसकी प्रशंसा की है। बुद्ध–घोष ने उन विशिष्ट कारणों का उल्लेख किया है, जिनसे प्रेरित होकर बुद्ध ने कुशीनगर को परिनिर्वाणार्थ चुना था :–

1. महासुदस्स्न सुतान्त का उपदेश वही किया गया था।
2. सुभद्र की प्रवज्या वही सम्भव थी।
3. अस्थि विभाजन की समस्या हल करने वाला व्यक्ति वहाँ उपस्थित था।[2]

दिग्विजयी चक्रवर्ती सम्राट महा सुदर्शन के राज्यकाल में कुशावती (कुशीनगर) 84000 नगरियों में प्रमुख थी।[3] यह समृद्ध, रमणीय, जनाकीर्ण एवं धन–धान्य सम्पन्न थी। यह देवताओं की राजधानी अलकनन्दा की भाँति, दिन–रात दस शब्दों में गुंजायमान रहती थी। लेकिन यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध के काल में यह नगर राजगृह, वैशाली और श्रावस्ती की तरह प्रथम कोटि का नगर नही था।[4] अतः यह कहा जा सकता है कि इस नगर का क्रमश ह्रास हुआ था।

बुद्ध का कुशीनगर से विशेष लगाव था। पूर्व जन्मों में भी यह नगरी उनकी क्रीड़ावस्थ्ली रह चुकी थी। एक उल्लेख के अनुसार, वे सात बार चक्रवर्ती

---

[1] वाटर्स, थामस, *आन् युवान् च्वांग्स, ट्रेवेल्स इन इण्डिया,* लन्दन, 1904, भाग 2, पृ0 46।

[2] सुमंगल विलासिनी, टीका दीघनिकाय अट्ठकथा, महेश तिवारी, पटना 1974, भाग 2, पृ0 573।

[3] *दीघनिकाय* (हिन्दी अनुवाद), राहुल सांकृत्यायन एवं जगदीश काश्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1935), भाग 2, पृ0 159।

[4] *दीघनिकाय,* भाग 2, पृ0 152।

सम्राट बनकर कुशीनगर में राज्य कर चुके थे।[1] एक बार जब बुद्ध यहाँ 1250 भिक्षुओं के साथ यहाँ आये तो मल्लों ने उनका स्वागत किया। स्वागत–सत्कार में सम्मिलित न होने वाले व्यक्तियों के लिए 500 मुद्रा दण्ड का प्रावधान था। इस प्रकार हम देखते है कि कुशीनगर बुद्ध की शिक्षाओं से पूर्णरूपेण प्रभावित हुआ और वहाँ के अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति उनके समर्थक बने। अतः ऐसे अनेक उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म का स्वयं बुद्ध के समय में ही बहुविध विकास हो चुका था और अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने इस धर्म की सदस्यता स्वीकार की थी।

ज्ञातव्य है कि कुशीनगर में ही बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। यह भगवान बुद्ध की कुशीनगर की अन्तिम यात्रा थी। अपनी जीवन का अन्तिम समय जानकर भागवान बुद्ध ने आनन्द से कुशीनारा के मल्लों के पास, जा उस समय संथागार में उपस्थिति थे, संदेश भिजवाया कि आज रात के अन्तिम पहर तथागत का परिनिर्वाण होगा। पीछे शोक मत करना कि हमारे ग्राम क्षेत्र में तथागत का परिनिर्वाण हुआ, किन्तु हम अन्तिम काल में तथागत का दर्शन न कर सके[2] अनेक धार्मिक विषयों पर उपदेश करते हुए वैशाख की पूर्णिमा को रात के अन्तिम पहर में भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ।[3] वहाँ के मल्लों ने भगवान के अन्तिम संस्कार का समुचित प्रबन्ध किया था। 6 दिनों तक वे लोग उनके निष्प्राण शरीर का नृत्य, गीत, वाद्य एवं गन्ध पुष्पादि से सत्कार करते रहे। सातवें दिन वे उसे मुकुट बन्धन चैत्य ले गये। शालवन से चलकर वे नगर में उत्तर द्वार से प्रविष्ट हुए और पूर्व द्वार से निकलकर चैत्य स्थान पर पहुँचे। वहीं पर चक्रवर्ती राजोचित विधान के अनुसार दाह–संस्कार किया गया।[4] मुकुट बन्धन चैत्य को वर्तमान रामाभार तालाब के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल स्तूप के खण्डहर से समीकृत किया जा सकता है, जो माथा कुंवर के कोट से लगभग एक मील की दूरी

---

[1] *दीघनिकाय,* भाग 2, पृ0 198।

[2] *अंगुतर निकाय,* भाग 2, पृ0 79।

[3] *दीघनिकाय,* भाग 2, पृ0 117।

[4] *दीघनिकाय,* भाग 2।

पर स्थित है।[1] यह चैत्य 'मुकुट बन्धन' नाम से इसलिए सम्बोधित किया जाता था कि यहॉ मल्ल राजाओं का अभिषेक होता था और उनके शीर्ष पर मुकुट बन्धन किया जाता था।[2] आजकल इसे रामाभार टीला कहा जाता हैं।दाह–संस्कार के पश्चात् अस्थि–विभाजन के सन्दर्भ में विवाद उत्पन्न हो गया। इस अवसर पर उपस्थित लोगों में वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुली, रामग्राम के कोलिय, पावा के मल्ल, मगधराज अजातशत्रु तथा वेठ–द्वीप (विष्णु द्वीप) के ब्राह्मण मुख्य थे।[3] कुशीनगर के मल्लों ने विभाजन का विरोध किया। प्रतिद्वन्द्वी राज्यों की सेनाओं ने उनके नगर को घेर लिया। युद्ध प्रायः निश्चित था, किन्तु वेठद्वीप के द्रोण ब्राह्मण के आ जाने से अस्थि अवशेषों का आठ भागों में विभाजन सम्भव हुआ।[4] द्रोण ने उन्हे समझाया कि "हमारे बुद्ध क्षमावादी थे। यह उचित नही कि उस शांति के पूजारी की अस्थियों के विभाजन में रक्त–पात हो।[5] विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि प्राप्त अवशेषों को अपनी राजधानियों में ले गये और वहाँ नवनिर्मित स्तूपों में उन्हें स्थापित किया गया। इस जिले में भी कुशीनगर और पावा में मल्लों द्वारा दो स्तूप बनवाये गये।[6] साँची के तोरण द्वार पर उत्कीर्ण चित्र इस घटना के ज्वलन्त उदाहरण है।[7] इसके अतिरिक्त तोरण के मध्य भाग में नीचे की ओर नगर के परिखा तथा प्राकार का अंकन मिलता हैं। प्रकार के भीतर नगर के कुछ विशिष्ट भवन भी दृष्टिगोचर होते हैं।[8]

---

[1] उपाध्याय, भरत सिंह, *बुद्ध कालीन भारतीय भुगोल* (प्रथम संस्करण), पृ0 321।

[2] *दिव्यावदान*, पृष्ठ 201, में मल्लों के एक मुकुट बन्धन नामक चैत्य का उल्लेख वैशाली के प्रसंग में भी किया गया है।

[3] *ए0एस0आई0ए0आर0*, 1906–07, पृ0 61।

[4] मलल शेकर, जी0पी0, *डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स* (पालि टेक्स्ट्स सोसाइटी, 1974, पुर्नमुद्रित), भाग–1, पृ0 654।

[5] दत्त एण्ड वाजपेयी, पूर्वोद्धृत, पृ0 350, 351।

[6] तदैव, पृ0 352, 353।

[7] मार्शल, *गाइड टू साँची*, पृ0 53, 54।

[8] राय उदयनारायण, *प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन*, इलहाबाद, 1965, पृ0 362।

कुशीनगर के मल्लों का अपना संथागार था, जहाँ पर सार्वजनिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयों पर विवाद होते थे। आनन्द जब बुद्ध की मृत्यु का समाचार लेकर कुशी नगर गये, उस समय मल्ल अपनी राज्य सभा (संस्थागार) में थे। तत्पश्चात् उन्होंने अपने संथागार में ही तथागत के अन्तिम संस्कार के प्रारूप पर विचार–विमर्श किया था। दीघनिकाय के महापरिनिब्बान सुतन्त में कुशीनारा के मल्लों में, पुरिष नामक एक अधिकारी वर्ग का उल्लेख मिलता है जो रीज डेविड्स के मतानुसार अधीनस्थ कर्मचारियों का एक वर्ग था।[1]

चीनी यात्रियों का कुशीनगर :

पाँचवी शताब्दी ई0 में, जब फाह्यान ने भारत का भ्रमण किया तो कुशीनगर को उपेक्षित एवं निर्जन पाया। केवल कुछ स्थानों पर स्तूप और संघाराम बने हुए थे। सातवीं शताब्दी में, जब ह्वेनसांग भारत आया तो उस समय भी यह स्थान निर्जन था। उसने यहाँ मात्र कुछ संघाराम देखे थे। इस सम्बन्ध में चीनी यात्रियों का विवरण निम्नलिखित है –

फाह्यान :

चीनी यात्री फाह्यान 399–414 ई. के बीच कुशीनगर आया था। उसने कुशीनगर को पिप्पलिवन के अंगार स्तूप के पूर्व में 12 योजन और वैशाली से 25 योजन की दूरी पर स्थित बतलाया है।[2] उसने सम्पूर्ण जनपद को निर्जन एवं उजाड़ पाया था। फाह्यान ने नगर के उत्तर निरंजना नदी के किनारे शालवन में दो वृक्षों के बीच बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने के स्थान का उल्लेख किया है।[3] शालवन के बिहार में उस समय भी कुछ भिक्षु निवास करते थे। फाह्यान लिखता है कि परिनिर्वाण स्तूप के अतिरिक्त वहाँ चार अन्य स्तूप थे जो क्रमशः निम्नलिखित चार स्थानों पर बने थे–

---

[1] टी0डब्ल्यू0, रीज डेविड्स, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* 1979 (पुर्नमुद्रित), इन्डोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, पृ0 21।

[2] गाइल्स, *ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान,* पृ0 41।

[3] जेम्स लेगे, *द ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान,* 1972, दिल्ली, पृ0 70।

(1) जहाँ सुभ्रद ने अर्हत्व को प्राप्त किया था।

(2) जहाँ वज्रपाणि यक्ष की गदा गिरी थी।

(3) जहाँ मल्लों ने बुद्ध के निष्प्राण शरीर का सप्ताह पर्यन्त पूजन किया था।

(4) जहाँ बुद्ध के अस्थि अवशेषों को विभाजित किया गया था।

फाह्यान के भारत आगमन के समय, यहाँ गुप्तों का साम्राज्य था तथा तत्कालीन शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय था। उस समय भारतवर्ष कला और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी पराकाष्ठा पर था। कुमारगुप्त के शासन काल में हरिबल स्वामी ने कसया में सुविख्यात परिनिर्वाण मन्दिर के निकटवर्ती स्तूप का जीर्णोद्धार किया।

फाह्यान यहाँ से 12 योजन चलकर उस स्थान पर पहुँचा था, जहाँ बुद्ध ने लिच्छवियों को वापस भेजा था, क्योंकि वे लोग उनके साथ परिनिर्वाण स्थल तक जाना चाहते थे। यहीं एक पत्थर की लाट (स्तंभ) थी जिस पर उनके परिनिर्वाण की घटना का अंकन था।[1]

ह्वेनसांग का विवरण :

सातवीं शताब्दी (643 ई0) में जब ह्वेनसांग कुशीनगर आया तो उस समय इस स्थान की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्होने लिखा है–अंगार स्तूप से उत्तर पूर्व की ओर हम एक विकट जंगल में गये, जिसके मार्ग बड़े ही बीहड़ और भयानक थे। जंगली बैल, हाथियों के झुण्ड, शिकारी तथा डाकू लोंगो के कारण यात्रियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते है। इस जंगल को पार कर के हम 'कि उ शि ना कि यी लो' (कुशीनगर) पहुँचे। इस राज्य की राजधानी बिल्कुल ध्वस्त हो गयी है। इसके नगर और गाँव प्रायः जनशून्य और उजाड़ है। प्राचीन ईटों की दीवारें, जिनकी केवल नींव बाकी रह गयी है।[2] यह नगर 10 ली की परिधि में फैला मात्र खण्डहर सदृश रह गया था। वहाँ की जनसंख्या अत्यल्प थी। नगर के उत्तर–पश्चिम में अशोक द्वारा बनवाया गया एक स्तूप था।

---

[1] जेम्स लेगे, *द ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान,* 1972, दिल्ली, पृ0 82।

[2] वाटर्स, थामस, *आन युवानच्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया,* लन्दन, 1904 जिल्द 2, पृ0 55।

नगर के उत्तर–पश्चिम में तीन–चार ली की दूरी पर स्थित अजितवती नदी के पश्चिमी किनारे पर ह्वेनसांग ने सालवन का उल्लेख किया है। इस सालवन में विभिन्न घटनाओं के स्मारक स्वरूप अनेक स्तूप बने हुए थे। इनमें से दो का सम्बन्ध बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं से था। वहॉ पर ईटों से निर्मित एक बड़ा चैत्य था, जिसमें एक मूर्ति रखी थी। इसमे बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त तथा उत्तर की ओर सिर किये हुए लेटी अवस्था में दिखाये गये थे। इस चैत्य के समीप अशोक–निर्मित 200 फिट ऊँचा, एक भग्न स्तूप था। स्तूप के सामने मौर्यकालीन प्रस्तर–स्तम्भ था, जिस पर परिनिर्वाण का वृत्तान्त उत्कीर्ण था।

अन्य स्तूपों में सुभद्र के मरण–स्थल से सम्बद्ध स्तूप का उल्लेख किया जा सकता है, जो बिहार से पश्चिम की ओर स्थित था। यह ब्राह्मण मतावलम्बी था। सुभद्र ने एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में गौतम बुद्ध से दीक्षा ली थी। इन स्तूपों के अतिरिक्त वज्रपाणि यक्ष के गदापतन, देवताओं द्वारा तथागत के शरीर पूजन एवं माया देवी के विलाप आदि घटनाओं से सम्बद्ध स्थानों पर भी स्तूप निर्मित थे।[1]

नगर के उत्तर में हिरण्यवती (अजितवती) नदी के दूसरे तट से 300 पग दूर, एक स्थल पर बुद्ध के दाहसंस्कार का उल्लेख है।[2] इस स्थल पर भी एक स्तूप था जिसकी मिट्टी पवित्र मानी जाती थी। स्थल पर निर्मित एक ऐसे स्तूप का भी ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है, जो महाकाव्य द्वारा बुद्ध की पादवंदना से सम्बद्ध थां एक दूसरे स्तूप को अशोक ने बनवाया था। वह उस स्थान पर था, जहाँ बुद्ध की अस्थियों का बँटवारा आठ नरेशों के बीच हुआ था। उसके सामने एक स्तम्भ था जिस पर उपर्युक्त घटना का वृत्तान्त उत्कीर्ण था।[3]

---

[1] वाटर्स, थामस, *आन युवानच्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया,* लन्दन, 1904 जिल्द 2, पृ0 39।

[2] सेमुअल बिल, *बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ वेस्टर्न वर्ल्ड,* भाग 3, 1958, कलकत्ता, पृ0 287।

[3] वाटर्स, थामस *आन युवानच्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया,* लन्दन, 1904, जिल्द 2, पृ0 42।

यद्यपि ह्वेनसांग ने यहॉ के विहारों के भिक्षुओं की संख्या का उल्लेख नही किया है, परन्तु उसके वर्णन से हमें तत्कालीन विहारों के और उनमें सन्निहित तत्वों का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

इत्सिंग :

सातवीं शताब्दी के अन्त में इत्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री भी कुशीनगर आया था। उसके समय में कुशीनगर की स्थिति अच्छी थी। इत्सिंग ने लिखा है कि शालवन तथा मुकुट बन्धन (पग्–द–न) प्रसिद्ध चैत्य थे, जहाँ शरद तथा बसन्त ऋतु मे दूर–दूर से श्रद्धालु आया करते थे।[1] उस समय बिहार में रहने वाले भिक्षुओं की संख्या सौ थी। वहां के भिक्षुओं के पास पर्याप्त साधन थे ; अतः यात्रियों के स्वागत–सत्कार में उन्हें कठिनाई नहीं होती थी। एक बार अकस्मात् वहाँ 500 भिक्षुओं का समूह (जत्था) आ पहुँचा, जिनका स्थानीय विहार में भोजन आदि से स्वागत–सत्कार किया गया।

इत्सिंग ने, समय की गणना के लिए प्रयुक्त, एक ऐसे विशिष्ट विधान का उल्लेख किया है जिसका इन विहारों में प्रयोग किया जाता था।[2]

मल्ल अभिधान :

'मल्ल' शब्द की व्युत्पति एवं उसका अभिप्राय एक जटिल प्रश्न है। क्योंकि मल्ल शब्द का प्रयोग वैदिक वाङ्ग्मय में अनुपलब्ध है। निघण्टु तथा निरूक्त में यास्क ने इस शब्द का कोई व्युत्पत्तिक निर्वचन नहीं किया है। मल्ल शब्द का प्रथम उल्लेख रामायण में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु के सन्दर्भ में हुआ है।[3] परन्तु रामायण के भाष्यकारों ने मल्ल शब्द की व्युत्पत्ति नहीं दी है। महाभारत में मल्ल शब्द एक स्थानवाचक राष्ट्र के रूप में वर्णित है।[4] स्थानवाचक संबा के रूप में मल्ल

---

[1] जे0 तकाकुसू,, *ए रेकार्ड ऑफ द बुद्धिस्ट रिलिजन*, 1896, लन्दन, आक्सफोर्ड, पृ0 381 ।

[2] जे0 तकाकुसू,, *ए रेकार्ड ऑफ द बुद्धिस्ट रिलिजन*, 1896, लन्दन, आक्सफोर्ड, पृ0 29–30 ।

[3] *रामायण* , उत्तरकाण्ड, सर्ग 102, श्लोक 91।

[4] *महाभारत*, सभापर्व, 30.3।

का प्रथम प्रयोग बौद्ध साहित्य अंगुतर निकाय में मिलता है।[1] मज्झिमनिकाय में मल्लों का उल्लेख एक गण या संघ के रूप में लिच्छवियों के साथ हुआ है। प्राकृत साहित्य में इसे 'मल्लई' , 'मोलिय' तथा 'मल्लिक' कहा गया है।[2] पाणिनि ने सर्वप्रथम् मल्ल शब्द के निर्वचन को प्रस्तुत किया है। पाणिनी के धातुपाठ में मल्लों को बाहुयोधी कहा गया है।[3] अष्टाध्यायी में मल्ल की मुट्ठी या पकड़ को संग्राह कहा गया है।[4] जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र में मल्ल का अर्थ 'बल धारण करने वाला' कहा गया है। अष्टध्यायी के भाष्यकार पतंजलि ने भी 'मल्ल' तथा 'मुष्टिक' के संग्राह का उल्लेख किया है।[5] इन्होंने दो मल्लों के आह्‌वान को कुश्ती के अर्थ में प्रयोग किया है। अमरकोष में मल्ल शब्द कुश्ती लड़ने वालों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[6]

कालान्तर में पाणिनी द्वारा प्रवर्तित अर्थ ही शारीरिक बल धारण करने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल शब्द 'बल' था जिसका रूपान्तरण मल्ल शब्द में हुआ। जैसे, महाबलिपुरम को ही मामल्लपुरम कहा जाता हैं। मोनियर बिलियम के अनुसार, मल्ल एक जाति वाचक संज्ञा है जो अपनी बलिष्ट शरीर तथा कुश्ती लड़ने् में निपुणता के कारण मल्ल अभिधान से अपनी पहचान बना ली। वे जिस क्षेत्र में निवास करते थे वह क्षेत्र मल्लभूमि, मल्लराष्ट्र एवं मल्लक्षेत्र आदि नामों से अभिहित किया जाने लगा। ब्रह्माण्ड[7], मार्कण्डेय,[8] वायु, वामन एवं पद्‌मपुराण[9] में भी मल्ल शब्द आया है।

---

[1] *अंगुतरनिकाय,* भाग 1, पृ0 197।

[2] *कल्पसूत्र,* 118, पृ0 266।

[3] *अष्टाध्यायी,* पाणिनी, धातुपाठ समीक्षा, पृ0 315 (मल्लते=धरति बलयं इति)

[4] *अष्टाध्यायी,* 3.3.36 (अहो मल्लस्य संग्राहः)।

[5] पतंजलि, *महाभाष्य,* 9.3.31।

[6]अमर सिंह, *अमरकोष,* 3.5.21।

[7] *ब्रह्माण्ड पुराण* (5), प्रथम, 2.16.55।

[8] *मार्कण्डेय पुराण,* 16.44।

[9] *पद्‌मपुराण,* स्वर्गखण्ड, 61.39।

मल्ल जन :

मल्ल जन मूलतः स्वदेशी क्षत्रिय थे। महापरिनिब्बानसुत्त तथा दिव्यावदान के अनुसार इक्ष्वाकु से नौ क्षत्रिय कुल उत्पन्न हुए – मल्ल, जनक, विदेह, कोलिय, मौर्य, लिच्छवि, ज्ञातृक, वज्जि और शाक्य।[1] यहॉ मल्लों को स्पष्टतः इक्ष्वाकुवंशीय (सूर्यवंशी) कहा गया है। महापरिनिब्बान सुतन्त में मल्लों को प्रसिद्ध आर्य गोत्रों में से एक वशिष्ठ गोत्रीय कहा गया है।[2] रामायण में वशिष्ठ को इक्ष्वाकु का पुरोहित कहा गया है। कौटिल्य ने उत्तरी भारत के क्षत्रियों के साथ मल्लों (मल्लक) की गणना की हैं।[3] इससे प्रमाणित होता है कि मल्ल अन्य क्षत्रियों के समान प्रतिष्ठित थे। मल्लों के समकालीन गणप्रमुखों ने क्षत्रिय होने के कारण, बुद्ध के धातु में मल्लों के समान अपना अंश मॉंगा था, क्योंकि बुद्ध भी उसी क्षत्रिय वंश के थे। मनु ने लिच्छवि और मल्ल गणराज्य के क्षत्रियों को व्रात्य क्षत्रिय कहा है।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि मल्ल अपने मूलरूप में स्वदेशी क्षत्रिय थे।

मल्लों का समकालीन शक्तियों के साथ सम्बंध एवं पतन :

गणराज्यों के राजनैतिक जीवन के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इनमें साम्राज्यवादी प्रवृति न होने के कारण प्रायः शान्ति रही। अपने गणजन की सुख–समृद्धि एवं शान्ति के लिए ही गणराज्यों का सम्पूर्ण प्रयास रहा तथापि वे अपने समकालीन राजतंत्रीय राजाओं के साम्राज्य विस्तारवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर अन्य राज्यों से राजनैतिक सम्बंध भी स्थापित किये।

मल्ल गणराज्य के स्थापना काल को 750–650 ईसा पूर्व के मध्य माना जाता है। महाजनपद के रूप में मल्ल जनगण एक शक्तिशाली राजनीतिक सत्ता के रूप में प्रसिद्ध था। बुद्ध और महावीर के काल में वज्जि की अपेक्षा मल्लों

---

[1] जैसवाल, के0पी0, *हिन्दू पालिटीबंगलौर(पंचम संस्करण),* 1978, पृ0 43।

[2] *महापरिनिब्बानसुतन्त,* डायलाग आफ द बुद्धा, भाग 2, पृ0 162।

[3] *अर्थशास्त्र सं0,* शामशास्त्री, मैसूर, 1919, पृ0 407।

[4] झल्लोमल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान्तिच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसौ द्रविड़ एव च।। *मनुस्मृति,* 10–20।

की राजनैतिक शक्ति अधिक महत्वपूर्ण थी।[1] वज्जियों के अष्टकुल के समान ही जैनग्रन्थों के अनुसार नवमल्लों का एक संघ रहा होगा। इन नवमल्लों में से पावा और कुसीनारा के मल्लों का राजनैतिक अस्तित्व ही ज्ञात और प्रख्यात है।

मल्लों तथा लिच्छवियों का आपसी सम्बंध कभी शत्रुतापूर्ण और कभी मैत्रीपूर्ण था। भद्दसाल जातक की एक कथा में कोसल राज्य के मल्ल सेनापति बन्धुल तथा 500 लिच्छवियों के बीच संघर्ष की चर्चा की गई है[2] जिसमें बन्धुल मल्ल की हत्या हो जाती है। उस समय कोसल का राजा प्रसेनजीत था। इसके विपरीत जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र में नौ मल्ल शासकों की चर्चा की गई है जिन्होंने लिच्छवियों तथा काशी, कोसल के अधिपतियों से मिलकर कुणिक अजातशत्रु के विरूद्ध मोर्चाबन्दी की थी, क्योंकि मैसीडोनिया के राजा फिलिप की तरह कुणिक अजातशत्रु भी पड़ोसी गणतंत्रों को समाप्त कर उनको अपने राज्य में मिलाने का प्रयास कर रहा था।[3]

मल्ल राष्ट्र का विस्तार :

मल्ल राष्ट्र पश्चिम में कोलिय गणतंत्र से घिरा था तथा उत्तर पश्चिम में शाक्य गणतंत्र की सीमा इसको स्पर्श करती थी। दक्षिण में इसका विस्तार मोरिय गणतंत्र तक था तथा पूर्व में लिच्छवि गणराजय तक विस्तृत था। लिच्छवि तथा मल्ल गणराज्य को सदानीरा नदी विभाजित करती थी।[4] मल्ल राष्ट में कुशीनगर जनपद का सम्पूर्ण भाग तथा चम्पारन और सारन के पश्चिमी भाग सम्मिलित थे। दक्षिण में सरयू के उत्तर का कुछ क्षेत्र भी इसमें शामिल था।[1] साम्राज्यिक विस्तार और राजनैतिक महत्व की दृष्टि से यह कोसल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वायत्त राज्य बन गया और बुद्ध की मृत्यु तक अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखी।

---

[1] जैसवाल, के0पी0, *हिन्दू पालिटी*, पृ0 43।

[2] जातक संख्या 465।

[3] राय चौधरी,एच0सी0, *प्राचीन भारत का राजनितिक इतिहास*, इलाहाबाद, 1971 पृ0 6।

[4] वरूण, डी0पी0, *गजेटियर्स ऑफ इण्डिया, उ0प्र0, डिस्ट्रीक्ट देवरिया*, इलाहाबाद, 1988 पृष्ठ 19।

छठी शताब्दी ईसापूर्व के उतराद्ध तक आते–आते उत्तर भारत में चार शक्तिशाली राजतंत्रों का प्रभुत्व दिखाई देता है। गौतम बुद्ध के समय इन्ही चारों का बोलबाला था। ये राज्य थे – 1. मगध, 2. कोसल 3. वत्स और 4. अवन्ति। इन राजतंत्रों के साथ–साथ अनेक गणराज्यो का भी अस्तित्व था, जिनमें कुशीनगर जनपद के मल्ल भी थे। किन्तु वे राजतंत्रों के विरूद्ध अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सके।

पॉचवी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में केन्द्रीकरण की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हुई और छोटे–छोटे राज्यों के स्थान पर बडे–बड़े राज्य स्थापित होने लगे। जो साम्राज्यवादी नीति के पोषक थे। साम्राज्यवाद की दौड़ में अन्ततः मगध सफल हुआ और अन्य राज्य भी इसी में मिला लिये गये। इस समय मगध में हर्यक वंशीय शासक अजातशत्रु का शासन था। इसके अधीन मगध की बढ़ती हुई शक्ति ने जनपद के मल्लों के राजनीतिक महत्व को घटा दिया। वी.एन. पाठक के अनुसार मल्लों की स्वतंत्रता केवल नाम के लिए बची थी और वे उस समय के दो शक्तिशाली राजतंत्रों कोसल और मगध साम्राज्य के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे।[2] भण्डारकर ने लिखा है कि स्वातंत्र्यप्रिय मल्ल गणराज्य अपने पड़ोसी महत्वाकांक्षी, साम्राज्यवादी मगध सम्राट अजातशत्रु का अन्ततः आहार बनकर सदा के लिए मगध साम्राज्य का अंग बन गया।[3] इसके पश्चात मल्ल एक गणराज्य के रूप में ज्ञात नहीं होते। इस प्रकार मल्ल गणराज्य अब भी मगध साम्राज्य के बाहर था।

लेकिन, कुशीनगर जनपद मल्लों के अधीन अधिक दिनों तक स्वतंत्र नहीं रह सका। मगध में नन्दवंश का उदय जनपद के मल्लों के लिए अधिक घातक सिद्ध हुआ। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के मध्य नन्द शासक महापद्मनन्द द्वारा इस

---

[1] पाण्डेय राजबली, पुर्वोद्धृत, पृ0 79।
[2] पाठक, वी0एन0, पुर्वोद्धृत, पृ0 221–287।
[3] स्मिथ, बी0ए0, पुर्वोद्धृत, पृ0 37।

जनपद से घिरे हुए क्षेत्र को मगध राज्य में मिला लिया गया।[1] मल्लों ने मगध की अधीनता स्वीकार कर अपना अस्तित्व बचाया, क्योंकि मौर्य साम्राज्य के उदय के समय यह राज्य जीवित दिखाई पड़ता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस प्रकार के गणतंत्र को संघ के रूप में वर्णित किया है।[2] कलयुग राज वृत्तान्त में इक्ष्वाकुवंशी (सूर्यवंशी) राज्यों की गणना महापद्मनन्द द्वारा जीते हुए प्रदेशों में की गई है। अन्तिम इक्ष्वाकु राजा सुमित्र, महापद्म द्वारा पराजित हुआ। कथासरितसागर में, अयोध्या में नन्द के कैम्प का उल्लेख मिलता है।[3] इक्ष्वाकुवंशी राज्यों में निश्चित ही कोसल का इक्ष्वाकुवंश तथा कुशीनगर जनपद के मल्ल सम्मिलित थे।[4] इस प्रकार कोसल मगध के अधीन हो गया और कुशीनगर जनपद की राजनैतिक स्वतंत्रता महापद्मनन्द के द्वारा नष्ट हुई।

प्रथम मौर्य शासक चन्द्रगुप्त मौर्य चाणक्य की मदद से अन्तिम नन्द शासक घननंद को पराजित कर 321 ई0पू0 में मगध की गद्दी पर बैठा। चाणक्य कृत अर्थशास्त्र[5] के अवलोकन से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सभी एकतांत्रिक राज्यों को समूल नष्ट किया क्योंकि अर्थशास्त्र में एक भी एकतांत्रिक राज्य का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु उत्तरभारत के गणराज्यों की सत्ता नष्ट नहीं की, अपितु उनको अपने अधीन करके छोड़ दिया। इनमें कुशीनगर जनपद का मल्लराष्ट्र मल्लक भी एक था।[6] चाणक्य ने अर्थशास्त्र में चन्द्रगुप्त मौर्य को मल्लों से दोस्ती करने का निर्देश दिया है, क्योंकि उसकी दृष्टि में 'संघ की मदद से अर्जित सम्पत्ति, सेना अथवा दोस्त की मदद से अर्जित सम्पति से अच्छा होता है।'[7] ऐसा

---

[1] मजूमदार एण्ड पुसालकर, पुर्वोद्धृत, वाल्यूम II, पृ0 31।

[2] पाठक, वी0एन0, पुर्वोद्धृत, पृ0 287—288।

[3] *कथासरितसागर,* I , पृ0 21।

[4] पाण्डेय राजबली, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 117।

[5] *अर्थशास्त्र,* 11/1।

[6] *महावंश,* 5.14.171।

[7] *अर्थशास्त्र,* 11.1.6।

लगता है कि मात्र इस जनपद के मल्ल गणतंत्र ही स्वतत्रता और शक्ति में क्षीण होने के साथ–साथ अपनी पहचान बचाये हुए था। चन्द्रगुप्त मौर्य के अधीन कुशीनगर का क्षेत्र मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार के समय में कुशीनगर जनपद या मल्ल राष्ट्र का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। बिन्दुसार का पुत्र एवं उत्तराधिकारी अशोक (273–236 ई.पू.) बौद्ध धर्म का प्रथम महान राजकीय संरक्षक है[1] जो भिक्षु उपगुप्त के साथ कुशीनगर की तीर्थयात्रा पर आया था। उस समय यह जनपद अशोक के साम्राज्य का भाग था। दिव्यावदान के अनुसार जब अशोक ने यह सुना कि इसी स्थान पर भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था तो वह मूर्क्षित होकर गिर गया था। उसने एक लाख मुद्रा देकर यहॉ चैत्य बनवाया था तथा कहा था "आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया।"[2] ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार इस स्थान पर अशोक द्वारा तीन स्तूप और दो स्तंभ बनवाये गये।[3] एक स्तूप और उसके सामने प्रस्तर स्तंभ परिनिर्वाण मंदिर के पास बनवाया। प्रस्तर स्तम्भ पर बुद्ध के निर्वाण की घटना अंकित थी।[4] दूसरा स्तूप बुद्ध के पवित्र अवशेष के विभाजन के स्थान को चिन्हित करता है तथा इसके सामने के प्रस्तर स्तम्भ पर अवशेषों के बंटवारे की घटना लिपिबद्ध है।[5] लेकिन अभी तक यहां से कोई स्तम्भ–लेख नहीं मिला है। ह्वेनसांग ने कुशीनगर में अशोक का बनवाया हुआ दो सौ फीट ऊँचा स्तूप देखा था।[6] अशोक को अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर बुद्ध के अवशेषों पर 84,000 स्तूप बनवाने का श्रेय दिया जाता है। भण्डारकर के अनुसार

---

[1] भण्डारकर, डी0आर0, *अशोक*, पृ0 236।

[2] दिव्यावदान, 1886, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 394।

[3] दत्त एण्ड वाजपेयी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 253।

[4] वरूण, डी0पी0, *डिस्ट्रीक्ट गजेटियर : देवरिया*, 1988, पृ0 22।

[5] पाटिल, डी0आर0, *कुशीनगर*, नई दिल्ली (प्र0सं0), 1957पृ0 11–12।

[6] मित्राा, देबाला, *बुद्धिस्ट मानुमेन्ट्स*, कलकता, 1971, पृ0 69।

अशोक अपने कलिंग विजय के एक वर्ष बाद बौद्ध हो गया।[1] अशोक के नाम का उल्लेख मास्की और गुर्जरा के लघु शिलालेखों मे हुआ है।[2] इस स्थान से उत्खनित बड़े आकार की ईटें मौर्यकालीन विभिन्न् भवनों के अवशेषों को सूचित करती है। डा. वोगेल ने लिखा है "हमारा पूर्ण विश्वास है कि कुशीनगर में कोई भी ऐसी इमारत नहीं है, जो मौर्य काल के बाद की हो।"[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अशोक के समय में कुशीनगर की पर्याप्त समृद्धि हुई थी। यद्यपि मल्ल राष्ट्र मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित हो गया था, किन्तु उसकी आन्तरिक स्वतंत्रता अभी बची हुई थी। उसकी यह परिस्थिति मौर्यों के बाद शुंगो के आगमन तक बनी हुई थी। यह बात शुंगकालीन मनुस्मृति में, मल्लों के व्रात्य क्षत्रिय के रूप में उल्लेख से सिद्ध होती है। कुशीनगर में मौर्यो के सीधे और पूर्ण अधिकार की सूचक कोई वस्तु अभी तक नहीं मिली है।

द्वितीय शाताब्दी ई.पू. में शुंगों ने मौर्यो को पद्च्युत कर स्वयं मगध की गद्दी संभाल ली और कुशीनगर जनपद उनके अधीन हो गया। पुष्यमित्र शुंग (184–148 ई0पू0) जो अंतिम मौर्य शासक वृहद्रथ का सेनापति था, वृहद्रथ की हत्या कर पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा।[4] बौद्ध ग्रन्थों में उसे वैदिक धर्म को मानने वाला और बौद्ध धर्म का विरोधी बताया गया है।[5] उसके समय में ही जनपद के मल्लगण का अन्त हुआ क्योंकि शुंगों के समकालीन पतंजलि के महाभाष्य में मल्लगण की कोई चर्चा नहीं मिलती है जबकि इस समय के अन्य गणराज्यों तथा राज्यों का उल्लेख हुआ है। राहुल संकृत्यायन ने कुशीनगर के मल्लों के प्रतिनिधि आजकल के सैंथवार जाति को बतलाया है।[6] मल्लों के आधुनिक अवशेष बिहार,

---

[1] रैप्सन, ई0जे0, *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* वाल्यूम II, नई दिल्ली, 1962, पृ0 24, 30।

[2] सरकार डी0सी0, *इन्स्क्रिप्शन ऑफ अशोक,* पृ0 36।

[3] आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट, 1905, पृष्ठ 38।

[4] *हर्षचरित* (बम्बई संस्करण), पृ0 199 ।

[5] दिव्यावदान, 1886, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 434 ।

[6] सांकृत्यायन राहुल, *बुद्धचर्या,* सारनाथ, वाराणसी, 1952, पृ0 167 ।

नेपाल, गोरखपुर, देवरिया (विभाजन के पूर्व) तथा आजमगढ में बिखरे हुए समुदायों के रूप में विद्यमान है।

शुंगों के बाद कण्ववंश मगध में स्थापित हुआ , किन्तु उनके साम्राज्य विस्तार के बारे में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। कण्वों के सम्बंध में कुशीनगर से कोई भी ऐसी वस्तु नहीं मिली है, जिससे उनके राज्यकाल में कुशीनगर की अवस्था पर प्रकाश पड़े। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनके राज्यकाल में कुशीनगर जनपद मगध साम्राज्य के अधीन रहा।

कुषाणों के आगमन तक जनपद का इतिहास अस्पष्ट है। इस कालावधि में न तो साहित्यिक और नहीं पुरातात्विक साक्ष्यों से इस क्षेत्र के राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश पडता है। कनिष्क (ई0 सन् 78–100) कुषाणवंश का सर्वाधिक योग्य शासक था। उसके राज्य की सीमा पेशावर से लेकर पाटलिपुत्र तक विस्तृत थी। इस क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से बड़ी संख्या में कुषाणों के सिक्के प्राप्त हुए हैं। ये सिक्के विमकडफिसस, कनिष्क और हुविष्क के हैं जो, यह सूचित करते हैं कि पहली और दूसरी शताब्दी ईस्वी के दौरान यह क्षेत्र कुषाणों के शासन के अधीन था।[1] कुशीनगर से कनिष्क के समय का एक अपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है।[2] उत्खनन के समय कुशीनगर से प्राप्त नक्काशीदार ईंट तथा बुद्ध की मण्मूर्तियाँ कुषाण काल से सम्बंधित है।[3] स्वयं मेरे द्वारा जिले के पुरातात्विक सर्वेक्षण के दौरान जो पुरास्थल प्रकाश में आये तथा वहाँ से जो सामग्रियाँ प्राप्त हुई उनमें से अधिकांश कुषाण काल से सम्बंधित हैं। कुशीनगर से प्राप्त एक लम्बी मूर्ति जो स्थानीय लोगों में माथा कुंवर के नाम से जानी जाती है, के निकटवर्ती एक बिहार की खुदाई में एक सिक्का मिला है जिसे मुद्राशात्रियों द्वारा कुषाण काल से सम्बन्धित बताया जाता है। उनका अनुमान है कि कुषाण सिक्के क्षत्रपों के द्वारा पूर्वी प्रान्तों में पहुँचे थे। इस अनुमान की पुष्टि गाजीपुर जिले के भित्तरी नामक स्थान से

---

[1] श्रीवास्तव, ए0के0, *फाइण्ड स्पॉट्स ऑफ कुषाण क्वायंस इन यू0पी0*, लखनऊ, 1972 पृ0 39।

[2] *आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट*, 1906–07, पृ0 19।

[3] *ए0एस0आई0ए0आर0*, 1904–05, पृ0 33–35।

प्राप्त कुषाण सिक्के करते हैं।[1] महापरिनिर्वाण विहार के एक कक्ष से क्षत्रप शासकों का एक सिक्का मिला है, जिसे हीरानन्द शास्त्री दामसेन का मानते हैं।[2]

कनिष्क ने अशोक की भॉति बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए बहुत उद्योग किया। उसके समय में ही महायान बौद्ध धर्म का उदय हुआ। कुशीनगर से प्राप्त मुर्तियॉ जनपद पर इसके प्रभाव को सूचित करती हैं। कुशीनगर में माथा कुंवर की मूर्ति संभवतः इसी काल की है।[3] मूर्ति, अलंकृत एकाश्मक पत्थर की है, जो गया क्षेत्र के नीले पत्थरों में से एक है।[4] मूर्ति में बुद्ध को भूमि स्पर्शमुद्रा में बोधिवृक्ष के नीचे बैठा दिखाया गया है, जो प्रबोधन के समय के पूर्व इनके जीवन के श्रेष्ठ क्षण की ओर संकेत करता हैं।

इसी स्थान से प्राप्त एक काले पत्थर के ऊपर 'ॐ नमो बुद्धाय' लेख अंकित है। बुद्ध के साथ ॐ का प्रयोग भी महायान के प्रभाव को सूचित करता है।

कुषाण अधिराज्य के पतन के बाद तथा गुप्त साम्राज्य के पूर्व का इस जनपद का इतिहास अस्पष्ट हैं। मुरूण्ड तथा नागवंशी भारशिवों को इस क्षेत्र पर शासन करने की बात कही जाती है, परन्तु पर्याप्त स्रोतों के अभाव में उनके साम्राज्य के तिथिक्रम एवं ऐतिहासिकता का निर्धारण एक कठिन कार्य है। इलाहाबाद स्तम्भलेख की 23वीं पंक्ति में शक–मुरूण्ड का साथ–साथ उल्लेख हुआ है।[5] पुराणों में शकों एवं मुरूण्डों का अलग–अलग विर्णन मिलता है तथा मुरूण्डों को विदेशी जाति का बताया गया है।[6] टालमी के विवरण के अनुसार मुरूण्ड राजाओं का साम्राज्य विस्तार पश्चिमी उत्तर प्रदेश से बंगाल तक फैला हुआ था,

---

[1] *एपिग्राफिका इण्डिका,* भाग 8, पृ0 82।

[2] *ए0एस0आई0ए0आर0,* 1910–11, पृ0 71।

[3] पाण्डेय राजबली, पुर्वोद्धृत, पृ0 164।

[4] पाटिल डी0आर0, *कुशीनगर,* नई दिल्ली, 1957 पृ0 29।

[5] *कारपस इन्सकिप्शनम इण्डिकारम,* III, पृ0 1।

[6] पार्जिटर एफ0ई0, पूर्वोद्धृत, पृ0 72।

जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।[1] बी.सी. सेन ने गोरखपुर से बंगाल तक का क्षेत्र मुरूण्डो के अधीन माना है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ में मुरूण्ड, कुषाणों के सामन्त थे जिन्होंने कुषाणों के पतनोपरान्त एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।

के.पी. जायसवाल के अनुसार, द्वितीय–तृतीय शताब्दी ईस्वी में नाग–भारशिवों ने कुषाण साम्राज्य पर प्रहार कर उसे छिन्न–भिन्न कर दिया तथा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच सारे उत्तर भारत पर उनका प्रभाव स्थापित हो गया।[3] एक अभिलेख में कहा गया है कि कुषाण साम्राज्य को नष्ट कर अपने पराक्रम से भारशिवों ने गंगा के प्रदेश पर अधिकार कर लिया।[4] कुशीनगर जनपद तथा इसके समीपवर्ती जिलों में आज भी भर पाये जाते हैं। राजबली पाण्डेय के अनुसार, जनश्रुति ने भारशिवों और भरों में भ्रम पैदा कर लोगों में यह धारणा उत्पन्न कर दी है कि इन क्षेत्रों में भरों का राज्य था।

कुषाणों के अघः पतन के कुछ वर्षो बाद, उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य का अभ्युद्य हुआ और यह जनपद उनके आधिपत्य में आ गया। गुप्त वंश के संस्थापक श्रीगुप्त तथा उनके उत्तराधिकारी घटोत्कच तथा चन्द्रगुप्त प्रथम के समय (319–350 ई0) की, जनपद की राजनीतिक घटनाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त सम्पूर्ण उत्तर भारत (आर्यावर्त) पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सीधा शासन करता था। उसके दिग्विजयों का वर्णन प्रयाग–प्रशस्ति में मिलता है।[5] राजबली पाण्डेय के अनुसार गुप्तों की मूल राजधानी साकेत थी और कुशीनगर जनपद इस समय कोसल राज्य में सम्मिलित

---

[1] मैकिंडल, टालमी, पृ0 212–214।

[2] सेन, बी0सी0, *हिस्टारिकल आस्पेक्टस ऑफ बंगाल इन्स्क्रिप्शन्स*, पृ0 198।

[3] जैसवाल के0पी0, *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, पृ0 1–61।

[4] फ्लीट,जे0एफ0 इन्स्क्रिप्सन ऑफ द अर्ली गुप्ता किंग्स एण्ड देयर सक्सेसर,कार्पस इंस्क्रिप्सन इण्डिकारम, III, कलकता, 1888, पृष्ठ 245।

[5] फ्लीट, *गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स*, III, संख्या 1, पृ0 1–17।

हो गया था। समुद्रगुप्त के समय से गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र हो गयी और यह जनपद मगध साम्राज्य में चला गया।

रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर कतिपय विद्वानों ने प्रश्न चिन्ह लगाया हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल के दौरान श्रावस्ती भुक्ति मगध साम्राज्य का प्रान्त था और कुशीनगर जनपद इसी में पड़ता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही चीनी यात्री फाहियान कुशीनगर पहुँचा था। उसने अपने यात्रा विवरण में कुशीनगर का विस्तृत उल्लेख किया है, जिसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

कुशीनगर के कला और वास्तु के क्षेत्र में गुप्तों का महत्वपूर्ण योगदान था। चन्द्रगुप्त द्वितीय से लेकर कुमारगुप्त प्रथम तक यहॉ बहुत से विहार, चैत्य एवं मन्दिर बनवाये गये तथा जीर्ण विहारों की मरम्मत कराई गई। कुशीनगर के उत्खनन में गुप्तकाल से सम्बन्धित अनेक सिक्के, अभिलेख तथा मुर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। जनपद के गुप्तकालीन स्थलों में फाजिलनगर, सठियाँव तथा तुर्कपट्टी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कुशीनगर से सटे देवरिया जनपद का रूद्रपुर तथा कहाँव गुप्तकालीन प्रमुख स्थल थे। रूद्रपुर से चतुर्भुजी विष्णु की एक बड़ी प्रतिमा, एक प्राचीन मंदिर दुग्धेश्वर नाथ के ध्वंशावशेषों से मिली है। यहाँ से चन्द्रगुप्त द्वितीय (375—415 ई0) का एक सोने का सिक्का तथा कुमार गुप्त (415—455 ई.) का छः चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ है।[1]

महापरिनिर्वाण मन्दिर के पीछे स्थित स्तूप में हीरानन्द शास्त्री के नेतृतव में 1911—12 के दौरान खुदाई में एक ताँबे का घड़ा मिला था, जो अभिलिखित ताम्रपत्र से ढका हुआ था। ताम्रपत्र पर हरिबल स्वामी का नाम अंकित है। घड़े में कुमारगुप्त का एक चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि स्तूप की मरम्मत या जीर्णोद्धार कुमारगुप्त के शासनकाल के दौरान हरिबल नामक व्यक्ति द्वारा कराया गया था। बुद्ध की परिनिर्वाण प्रतिमा का दान भी

[1] *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट,* 1906—7, पृ0 20 ; 1910—11, पृ0 63।

हरिबल द्वारा ही किया गया था और संभवतः महापरिनिर्वाण चैत्य के अन्दर इसी समय स्थापित की गई थी।[1] परिनिर्वाण मूर्ति पर निम्न लेख उत्कीर्ण है –

देयधमोऽयं महाविहारे स्वामिनो हरिबलस्य।

प्रतिमा चेयं घटिता दिने....मासु माथुरेण।।

कुमार गुप्त के पुत्र और उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त (455–467 ई.) के शासन के दौरान गुप्त काल की शक्ति और समृद्धि हूण आक्रमणकारियों द्वारा भंग कर दी गई। कुशीनगर जनपद से सटे देवरिया जनपद के कहांव गॉव, जो सलेमपुर से 7.5 किमी दक्षिण–पश्चिम में स्थित है, से स्कन्दगुप्त के शासन काल का लेख मिला है जो 12 पंक्तियों में प्रस्तर स्तंभ पर अंकित है।[2] इससे प्रकट होता है कि देवरिया जनपद जिसमें पहले कुशीनगर भी शामिल था, 5वीं शताब्दी के मध्य गुप्त साम्राजय के अन्तर्गत था।

मन्दसौर (म.प्र.) से प्राप्त स्तंभलेखों में, हमें दशपुर (मन्दसौर) के राजा यशोधर्मा के विषय में जानकारी मिलती है, जिसका ह्रासोन्मुख गुप्त साम्राज्य के दौरान सम्पूर्ण उत्तर भारत पर थोड़े समय के लिए अधिकार हो गया था।[3] उसके साम्राज्य की वास्तविक सीमा परिभाषित नहीं की जा सकती है, लेकिन ऐसा लगता है कि यह जनपद उसके साम्राज्य में शामिल था। यशोधर्मा एक स्थायी साम्राज्य की स्थापना न कर सका और भारत वर्ष के राजनैतिक आकाश से जल्दी ही अर्न्तध्यान हो गया।

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत कई प्रान्तीय राज्यों में बट गया। उनमें मौखरि और उत्तर गुप्त (Later Gupta) सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। मगध में उत्तर गुप्तों का शासन था जो अपने को गुप्तों का वंशज मानते थे। कुशीनगर जनपद और वर्तमान संयुक्त प्रान्त का अधिकांश भाग, कन्नौज के मौखरियों के अधीन हो गया। नालंदा से मौखरि मुहरें तथा जौनपुर की जामा मस्जिद में मौखरि

---

[1] दत्त एण्ड वाजपेयी, पुर्वोद्धृत, पृ0 361।

[2] फिलट, *गुप्त इन्स्क्रिप्शन*, संख्या 15।

[3] त्रिपाठी, आर0एस0, पुर्वोद्धृत, पृ0 282।

लेख उत्कीर्ण मिले है।[1] डा0 रामाशंकर त्रिपाठी के अनुसार मौखरि राज पूर्व में नालन्दा तक फैला हुआ था।

मौखरि, प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य के सामंत थें लेकिन बाद में उत्तर प्रदेश में एक शक्ति के रूप में उभरे और लगभग छठी शताब्दी ई0 के मध्य में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये।[2] अब कन्नौज राजनितिक शक्ति का नया केन्द्र बन गया। यह मौखरियों की राजधानी थी। मौखरि शासक ग्रहवर्मा की शादी थानेश्वर के प्रभाकर वर्धन की पुत्री राजश्री से हुयी। बंगाल के गौड़ राजा शशांक तथा मालवा के राजा देवगुप्त ने आक्रमण कर ग्रहवर्मा को मार डाला। ग्रहवर्मा को राजश्री से कोई सन्तान नहीं थी। अतः कन्नौज की मंत्रीपरिषद ने राजश्री के भाई (थानेश्वर के राजा) हर्षवर्द्धन को ही कन्नौज का राजा चुना।[3] हर्ष जो पहले से ही थानेश्वर का राजा था, अपनी राजधानी कन्नौज में स्थानान्तरित कर ली। इससे कन्नौज की शक्ति बहुत बढ गयी। कुशीनगर जनपद हर्ष के अधीन कन्नौज का भाग था। मधुबन (मऊ, उ0प्र0) दानपत्र संकेत करता है कि श्रावस्ती हर्ष के साम्राज्य का भुक्ति (प्रान्त) था। जिसमें यह जनपद भी शामिल था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय से लेकर 12वीं शताब्दी के अन्त तक कुशीनगर जनपद कन्नौज के ही आधिपत्य में रहा। केवल शासक बदलते रहे।

हर्षवर्धन के शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत वर्ष की यात्रा पर आया था। उसने अपने यात्रा वृत्तान्त में कुशीनगर का एक खंडहर के रूप में उल्लेख किया है। इसका विस्तृत विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

हर्षवर्धन के पश्चात् लगभग 7वीं शताब्दी के मध्य भाग से लेकर 10 वीं शताब्दी के अन्त तक कुशीनगर की राजनैतिक अवस्था में क्रमशः ह्रास हुआ।[4] इसके बाद 8वीं शताब्दी में, हम कन्नौज के राजसिंहासन पर यशोवर्मन नामक एक

---

[1] *एपिग्राफिका इण्डिका,* जिल्द 21, पृ0 73–74।

[2] मजूमदार एण्ड पुसालकर, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 40।

[3]वाटर्स, थामस *ऑन युवान च्वाङ्ग्स इन इण्डिया,* वाल्यूम I, पृ0 343।

[4] धर्मरक्षित, *कुशीनगर का इतिहास,* पृ0 112

महत्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली शासक को आसीन पाते है।[1] शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तरभारत में कन्नौज एक बार फिर प्रबल शक्ति के रूप में उभरा। गौडवहो के अनुसार यशोवर्मन चन्द्रवंशी था।[2] उसने 725 ई0 से 752 ई0 तक शासन किया। कुछ विद्वान उसका शासनकाल 700 ई0 से 740 ई0 के बीच मानते है। उसके नाम के अन्त में वर्मन शब्द जुड़ा देखकर कुछ विद्वान उसे मौखरि शासक मानते है, परन्तु इस विषय में निशिचित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। गौडवहों में उसके द्वारा वंग (बंगाल) तथा मगध विजय की बात कही गई है। मगध तथा गौड़ पर उसके अधिकार की पुष्टि नालन्दा से प्राप्त एक लेख से भी होता है। अतः कहा जा सकता है कि कुशीनगर जनपद का क्षेत्र, उसके शासन काल में कन्नौज राज्य का भाग था। यशोवर्मन के उतराधिकारियों के विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। उसके पश्चात कन्नौज में वज्रायुद्ध, चक्रायुद्ध, इन्द्रायुद्ध आदि आयुद्ध नामधारी निर्बल शासक हुए।

यशोवर्मन की मृत्यु के बाद 8 वीं–9वीं शताब्दी ई0 में कन्नौज त्रिकोणात्मक संघर्ष का केन्द्र बन गया, जिनमें मालवा के गुर्जरप्रतिहार, बिहार व बंगाल के पाल तथा दक्षिण के राष्ट्रकूटों ने भाग लिया। इस राजनैतिक दौड़ में अन्ततोगत्वा प्रतिहारों की विजय हुई।

प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय के ग्वालियर लेख में उसे आनर्त (उतरी कठियावाड़) मालवा (मध्यभारत) मत्स्य देश (पूर्वी राजपूताना), किरात (हिमाचल प्रदेश) और वत्स देश (कौशाम्बी) का विजेता बताया गया है।[3] जनपद कुशीनगर का क्षेत्र, प्रतिहार शासक के अधीन रहा होगा। परन्तु नागभट्ट का कोई लेख इस क्षेत्र से नहीं मिला है। मिहिर भोज (836–885 ई.) ने काठियावाड़, पंजाब, अवध आदि प्रदेशों की विजय कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तथा कन्नौज को

[1] श्रीवास्तव के0सी0, *प्राचीन भारत का इतिहास,* भाग 2, इलाहाबाद 1996, पृ0 500।

[2] '*गौडवहो*' (सीताराम पंडित का संस्करण), श्लोक संख्या 1064–65 ; गौडवहों यशोवर्मन के राजकवि वाकपति द्वारा रचित एक प्राकृत काव्य है ।

[3] त्रिपाठी आर0एस0, पूर्वोद्धृत, पृ0 321 ।

अपनी राजधानी बनाई।[1] अवध पर इसके अधिपत्य से सिद्ध होता है कि कुशीनगर जनपद इस समय प्रतिहारों के अधीन था। इस क्षेत्र पर मिहिरभोज के शासन की पुष्टि कलचुरि शासक सोढ़देव के विक्रम संवत् 1134 (1077 ई0) के कहला (गोरखपुर) अभिलेख[2] से भी होती है। इस लेख के अनुसार मिहिरभोज ने 1852 ई0 में सोढदेव के 9 वें पूर्वज, कलचुरि वंश में उत्पन्न सामन्त गुणाम्बोधि देव को पालों के विरूद्ध अभियान में उसकी सेवा के लिए कुछ भूमि दी थी।[3] भोज के पुत्र तथा उत्राधिकारी महेन्द्रपाल का एक ताम्रपत्र दिघवा–दुबौली (सीवान जिला, बिहार प्रदेश) से मिला है।[4] इससे पता चलता है कि प्रतिहारों का राज्य बिहार तक विस्तृत था। कुशीनगर गोरखपुर और सीवान के बीच स्थित है। इससे स्पष्ट है कि यह जनपद प्रतिहारों के आाधिपत्य में था। इस ताम्रपत्र से यह भी पता चलता है कि श्रावस्ती मण्डल प्रतिहारों के अधीन था, जिसके अनतर्गत कुशीनगर जनपद भी आता था।

कहला (जनपद गोरखपुर) एवं कसया (जनपद कुशीनगर) से प्राप्त अभिलेखों से यह विदित होता है कि यहॉ कलचुरि सामन्त शासन कर रहे थे, जो प्रतिहारों की अधिसत्ता स्वीकार करते थे। पत्थर पर उत्कीर्ण कसया से ज्ञात अभिलेख सर्वप्रथम 1875–76 में ए.सी.एल. कार्लाइल के माध्यम से प्रकाश में आया था।[5] दयाराम साहनी, लिपि के आधार पर कसया अभिलेख को 11वीं–12वीं शती में रखते है।[6] साथ ही साहनी महोदय ने अभिलेख के 18 वें श्लोक में वर्णित 'कीर्ति' शब्द को व्यक्तिगत नाम माना है। एच0सी0 रे इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए

---

[1] मजूमदार, आर0सी0, पुर्वोद्धृत, पृ0 287।

[2] मिराशी, वी0वी0, *कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इण्डिकेरम,* भाग 4, सं0 74, श्लोक 30।

[3] पुरी, बी0एन0, *द हिस्ट्री ऑफ द गुर्जर प्रतिहार्स,* पृ0 56 ; राय, एच0सी0, II, *डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया,* पृ0 746।

[4] *इण्डियन एंटिक्वेरी,* जिल्द 15, पृ0 107, 112–113।

[5] *इपिग्राफिका इण्डिका,* 18, पृ0 121–137।

[6] तदैव, पृ0 128।

कीर्ति का तादात्म्य चन्देल शासक कीर्तिवर्मा से करते हुए कसया अभिलेख को 13 वी शती में रखते है, परन्तु लिपि विज्ञान की दृष्टि से इस अभिलेख को कुटील से नागरी लिपि के विकास काल (10वीं शती या उससे पूर्व) में ही रखा जा सकता है। अभिलेख की आरंम्भिक कुछ पंक्तियाँ वन्दना स्वरूप हैं, जिसमें शिव को मुख्य स्थान प्राप्त है। इससे जनपद के कलचुरी शासकों के शैव मतावलम्बी होने की पुष्टि होती है। बौद्ध धर्म के प्रति भी उनका दृष्टिकोण उदार था। तारा, बुद्ध आदि अनेक बौद्ध देवी–देवताओं का वर्णन भी अभिलेख में हुआ है। मध्य की कुछ पंक्तियाँ पौराणिक तथा लौकिक वंशावली का उल्लेख करती हैं, जो संक्षेप में निम्नवत हैं[1]– अत्रि–सोम–बद्धु–पुरूरवस–नहुष–हैहय–कार्तवीर्य अर्जुन।

अभिलेख में कलचुरि शासक अपने को चन्द्रमा से जोडते है, जो उस परम्परा को इंगित करता है जिसके अन्तर्गत अधिकांश पूर्व–मध्ययुगीन राजवंश अपने को सूर्यवंश या चद्रवंश से जोड़ने में गौरव अनुभव करते थे।

कसया और कहला अभिलेखों के आरम्भिक उद्ववाचकों–दयाराम साहनी और एफ0इ0 किलहार्न ने कसया के कलचुरियों तथा कहला के कलचुरियों को कलचुरि वंश की दो भिन्न शाखाएं माना है[2] जिसका समर्थन एच0सी0रे ने भी किया है। किन्तु दोनों तालिकों में वर्णित अनेक शासकों के नामों तथा अधिकांश घटनाक्रमों की समानता एवं दोनों स्थलों की दूरी (लगभग 60 किमी0) को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों अभिलेखों से ज्ञात कलचुरि एक ही शाखा के शासक थे। कसया अभिलेख से ज्ञात कलचुरि नरेशों का नाम इस प्रकार है – शंकरगण– नन्नराज – लक्ष्मण प्रथम – शिवराज प्रथम – भीमट प्रथम – लक्ष्मण द्वितीय – शिवराज द्वितीय – लक्ष्मण तृतीय – कंचना – भीमट द्वितीय – शंकरगण द्वितीय – मुग्धतुंग – विद्या – गुण सागर द्वितीय – राजवा – शिवराज द्वितीय – भामान द्वितीय – सुगल्ल देवी – शंकर गण तृतीय – यशोलेखा – गुण सागर तृतीय – भीम – लावण्यवती – व्यास – मर्यादा सागर (1031 इ.) – सोढ़देव

---

[1] पार्जिटर, एफ0ई0ए, *एन्सिएन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन*, दिल्ली, 1962, पृ0 144।

[2] *इपिग्राफिका इण्डिका*, 18, नं0 10।

(1077 एवं 1079 ई.)।[1] रे महोदय ने सोढ़देव का राज्य विस्तार गोरखपुर मण्डल और बिहार के सारन (वर्तमान सीवान) जिले में माना है, जबकि आर.के. शर्मा ने सरयू और गण्डक नदियो के मध्य क्षेत्र में माना है[2] जिसके अन्तर्गत बहराइच, गोण्डा, बस्ती, गोरखपुर कुशीनगर, देवरिया आदि जिलों का भू–भाग आता है। कहला अभिलेख में सोढ़देव के लिए 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोढ़लदेव' उपाधि वर्णित है जो इसके स्वतंत्र शासक होने का द्योतक है।

कसया अभिलेख के बुद्ध की एक विशालकाय प्रतिमा (माथा–कुँवर) के पास उत्कीर्ण होने के आधार पर यह अनुमानित है कि कलचुरि शासक द्वारा वहाँ पर कुछ निर्मार्ण कार्य (संम्वतः पूजा स्थल और संघाराम) करवाया गया था।[3]

राजनैतिक दृष्टि से 8 वीं शताब्दी में कुशीनगर जनपद ने कलचुरियों के प्रयास से जो अपनी एक अलग पहचान कायम कर ली थी, वह उस सत्ता के पराभव के उपरान्त 11 वीं शताब्दी के अन्त में पुनः कन्नौज के गहड़वालों के अधीनस्थ हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिहारों के पतनोपरान्त जनपद के कलचुरियों की शक्ति भी क्षीण हो गई तथा इस क्षेत्र पर गहड़वालों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। गहड़वालों की मूल राजधानी वाराणसी थी।[4] इस तथ्य की पुष्टि गहड़वाल शासक चन्द्रदेव के चन्द्रावती (वाराणसी) से प्राप्त 1090 ई. तथा 1093 ई. के ताम्रपत्रों से भी होती है।[5] 1093 का ताम्र पत्र तो इस क्षेत्र पर गाहड़वाल सता की स्थापना का भी संकेत देता है। गहड़वालों ने इस क्षेत्र को जनपद के अंतिम कलचुरी शासक सोढ़लदेव से विजित किया था[6]।

---

[1] युगयुगीन सरयूपार, पूर्वो द्धृत, पृ0 6।

[2] शर्मा, आर0के0, *द कल्चुरि एण्ड देयर टाइम्स,* 1980, दिल्ली, पृ0 40।

[3] शास्त्री, हीरानन्द, एनुअल रिपोर्ट आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1910–11, पृ0 68–89।

[4] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 208।

[5] *इपिग्राफिका इण्डिका,* 9, नं0 47।

[6] नियोगी, रोमा, द हिस्ट्री आफ द गहाड़वाल डाइनेस्टी, पृ0 26–27।

एक उत्कीर्ण लेख के अनुसार चन्द्रदेव ने (1090–1103) कोसल, काशी, कान्यकुब्ज तथा इन्द्रप्रस्थ आदि पर भी आधिपत्य स्थापित किया था। कोसल इस समय श्रावस्ती मण्डल में था जिसके अन्तर्ग कुशीनगर जनपद का क्षेत्र था। चन्द्रदेव का पोता गोविद चन्द्र इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा हुआ। गोविन्दचन्द्र के लेख दोन बुजुर्ग (सीवान जिला, बिहार) तथा गोरखपुर में गगहा तथा पाली गाँव से मिले हैं।[1] आर.सी. मजूमदार ने गोविन्द चन्द्र (1114–1154 ई0) के राज्य का विस्तार बिहार तक विस्तृत बताया है।[2] 1100 ई. में कुशीनगर के उत्तर सौम्या सिन्दु का कीर्तिपाल देव एक छोटे से क्षेत्र पर शासन किया था[3] और बिसेन सिंह ने नवापुर (वर्तमान सलेमपुर) में एक राज्य स्थापित किया।[4] किन्तु सम्पूर्ण जनपद गोविन्दचन्द्र (1114–1154 ई.) द्वारा विजित कर लिया गया।[5] गहढ़वाल वंश का अंतिम शासक जयचन्द्र (1170–1194 ई) था। इसके समय में भी जनपद कुशीनगर गहडवालों के अधीन था। जयचंद्र शिहाबुद्दीन गोरी द्वारा 1194 ई. में चन्दावर (वर्तमान एटा जिला) के युद्ध में पराजित कर मार डाला गया।[6] इस प्रकार कन्नौज के साथ ही जनपद में गहडवाल शक्ति का अन्त हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्र के कुछ स्थानीय अधीन राजवंश, जो पहले से चले आ रहे थे, उन्होंने अपनी शक्ति और राज्य इस समय बढ़ा लिया। कुशीनगर जनपद से सटे देवरिया जनपद में मझौली (सलेमपुर) में बिसेन क्षत्रियों ने अपनी स्वतंत्रता धोषित कर दी तथा बाकी के अन्य क्षेत्रों में भर प्रभावशाली हो गये।[7] यही कुशीनगर

---

[1] पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ0 209।

[2] मजूमदार, आर0सी0, पूर्वोद्धृत, पृ0 316

[3] नियोगी, रोमा, पूर्वोद्धृत, पृ0 27।

[4] एलेक्जेंडर, ई0बी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 439।

[5] मजूमदार एण्ड पुसालकर, पूर्वोद्धृत, वाल्यूम 5, पृ0 55।

[6] श्रीवास्तव, के0सी0, पूर्वोद्धृत, पृ0 532।

[7] वरूण, डी0पी0, *गजेटियर आफ इण्डिया, उत्तर प्रदेश,* देवरिया, डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद, 1988, पृ0 26।

जनपद की 12 वीं शताब्दी तक की राजनीतिक स्थिति है, जो मेरे अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत है।

अध्याय 3

कुशीनगर जनपद में पूर्ववर्ती पुरातात्विक अनुसंधानों का विवेचन

प्रस्तुत अध्याय में कुशीनगर जनपद के पुरातात्विक अध्ययन का इतिहास प्रस्तुत करना अभीष्ट है। इस सन्दर्भ में कतिपय साक्ष्य पार्श्ववर्ती जनपदों से भी संकलित किये गये। कुशीनगर जनपद में कुशीनगर के अतिरिक्त पावा की पहचान के सन्दर्भ मे कतिपय. अन्य टीलो का भी पुरातातविक उत्खनन किया गया है। पुरातात्विक उत्खनन, जैसा कि हम जानते है, एक शोधार्थी की शक्ति सीमा से परे है, इसलिए शोध सस्थानों, विश्वविद्यालयों और अन्य पुरातात्विक संस्थानों द्वारा किये गये उत्खननो से प्राप्त साक्ष्यों का विवेचन प्रस्तुत करना ही यहॉ अभीष्ट है।

आधुनिक युग में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का सूत्रपात 1784 ई0 में हुआ, जब सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की।[1] इस संस्था की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य थे: एशिया महाद्वीप के पुरावशेषों (।दजपुनपजपमे), कलाओं, विज्ञानों तथा साहित्यों के इतिहास के सम्बन्ध में अनुसंधान करना। विलियम जोन्स से पूर्व वारेन हेस्टिंग्स जो इस समय बंगाल के गवर्नर जनरल थे तथा डा0 जानसन ने भारत में पुरातात्विक अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया था।[2]

विलियम जोन्स की दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी। वे एशिया के सांस्कृतिक अस्मिता का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहते थे। अनुसंधित्सुओं की खोजों को प्रकाशित करने के लिए उन्होने 1788 ई0 में 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक पत्रिका का प्रकाशन करवाने के साथ–साथ संग्रहालयों की स्थापना पर भी बल दिया।[3] फलतः सन् 1814

---

[1] *क्वार्टली रिव्यू ऑफ हिस्टारिकल स्टडीज* (1963–64), वाल्यूम 3, नं 1, खण्ड 2, पृष्ठ 23–24।

[2] दृष्टव्य–डा0 जानसन द्वारा हेस्टिंगस को लिखे गये पत्र, दिनांक 30 मार्च 1774 (इस पत्र की माइक्रो फिल्म कॉपी भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार में उपलब्ध है)।

[3] *ऐन्शियंट इण्डिया*, नं0 9, पृष्ठ 5।

ई0 में सोसाइटी के सदस्यों द्वारा संगृहीत सामग्री को सुरक्षित रखने के लिए एक संग्रहालय की स्थापना की गयी ।

ऐशियाटिक सोसाइटी का कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। जोन्स के सहयोगी चार्ल्स विल्किन्सन के द्वारा गुप्त एवं कुटील लिपियों का सफलता पूर्वक उद्वावचन किया गया और ताजमहल, कुतुबमीनार आदि उत्तरी भारत के मध्य कालीन स्मारकों , एलोरा, एलीफैन्टा तथा कन्हेरी आदि पश्चिम भारत में स्थित प्राचीन काल के स्मारकों का अत्यन्त कल्पनापूर्ण वर्णन भी प्रस्तुत किया गया।

उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी व्यक्तिगत प्रयास थे। 18 वीं शताब्दी के समाप्त होते–होते तत्कालीन सरकार ने भी पुरातत्व के सम्बन्ध में रूचि लेना प्रारम्भ कर दिया।

भारतवर्ष में पुरातात्विक अध्ययन का प्रांरम्भ डा0 फ्रांसिस बुकनन से होता है। यद्यपि उनकी नियुक्ति 1800 ई0 में मैसूर क्षेत्र के कृषि संम्बन्धी सर्वेक्षण के लिए की गयी थी। उन्होनें कृषि सम्बन्धी विवरणों के साथ–साथ पुरावशेषों के सम्बंध में आकर्षक सूचनाएँ प्रस्तुत की। 1807 ई0 में उन्हें बंगाल प्रेसिडेन्सी के सांख्यिकी सर्वेक्षण का कार्य–भार सौंप दिया गया और उन्हें निर्देश दिया गया कि इस सर्वेक्षण में भू–संरचना, इतिहास एवं पुरा–सम्पदाओं से सम्बंधित सामग्री को भी समाहित करे। डा0 बुकनन ने सात वर्षो में बिहार, शाहाबाद, भागलपुर, गोरखपुर, दीनाजपुर, पूर्णिया और रंगपुर का व्यापक सर्वेक्षण किया।[1] उनके द्वारा सर्वेक्षित प्रान्तों के श्रृंखला में गोरखपुर परिक्षेत्र एक था तथा जनपद कुशीनगर इसी परिक्षेत्र के अन्तर्गत था। बुकनन ने 1914 ई0 में कुशीनगर जनपद के पडरौना और कसया क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया था, जो मार्टिन माण्टगोमरी की पुस्तक इस्टर्न इण्डिया में प्रकाशित है। इस पुस्तक में कुशीनगर जनपद की भू–संरचना नदियों की प्रकृति, रीति–रीवाज, इतिहास, पुरा–सम्पदा आदि का विवरण सर्वप्रथम अधिकारिक रूप से प्रस्तुत किया गया है,[2]

---

[1] घोष, ए0, *इण्डियन आर्क्यालाजी,* पृष्ठ 1–2।

[2] माण्टगोमरी, मार्टिन, *द हिस्ट्री एन्टिक्विटीज, टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया,* भागलपुर–गोरखपुर, वाल्यूम 2, दिल्ली, 1976, पृष्ठ 354–358।

साथ ही पडरौना के छावनी के टीले के पास से प्राप्त मूर्तियों का रेखाचित्र भी दिया गया है।

डा0 बुकनन के पश्चात कई दशकों तक भारत वर्ष में पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं अध्ययन की दिशा में शासकीय स्तर पर कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं हुआ। यद्यपि कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आंशिक रूप से अध्यन होते रहे। 1857 ई0 के क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितयों के कारण इस योजना पर किसी का विशेष घ्यान नहीं गया। सन् 1861 ई0 का वर्ष भारतीय पुरातत्व के इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ष था, क्योकि इसी वर्ष शासकीय स्तर पर इस देश की पुरानिधियों एवं पुरावशेषों की ओर ध्यान देने के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना हुई थी। भारत में पुरातत्व संबन्धी अनुसंधान का शासकीय स्तर पर यह प्रथम प्रयास था। सन् 1861 ई0 में कनिंघम ने तत्कालीन गर्वनर जनरल कैनिंग के समक्ष भारत की विपुल पुरातात्विक धरोहर के सुव्यवस्थित अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता पर बल देते हुए एक स्मरण पत्र प्रस्तुत किया। गवर्नर जनरल ने महत्वपूर्ण स्मारकों की रूपरेखा, रेखाचित्रों, छायाचित्रों, उनके इतिहास एवं परम्पराओं के निरूपण तथा संकलन हेतु अपनी स्वीकृति दे दी और इस कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व कनिंघम को ही सौंपा गया। कनिंघम को पुरातात्विक सर्वेयर नियुक्त किया गया, जिसने सन् 1861 ई0 से लेकर 1865 ई0 के मध्य, पूर्व में गया जिले से लेकर पश्चिम में सिंधु तक तथा उत्तर में कालसी (देहरादून) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्रों की प्राचीन स्थलों की यात्रा एवंम स्मारकों का सर्वेक्षण किया और ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का विस्तृत आख्याएँ (त्मचवतजे) भी तैयार किया। दुर्भाग्यवश 1866 ई0 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लारेन्स ने पुरातत्व विभाग को समाप्त कर दिया। सन् 1870 ई0 में ब्रिटिश शासन के निर्देश पर भारत सरकार नें 'भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण' नामक एक स्वतन्त्र विभाग की स्थापना की और कनिंघम को उसका महानिदेशक नियुक्त किया गया।

मूलतः भारत में पुरातात्विक अध्ययन का व्यवस्थित क्रम सर एलेक्जेंडर कनिंघम से ही प्रारम्भ होता है। कनिंघम ने पुरातत्व की प्रासंगिकता एवं उपादेयता को

इतिहास के स्रोत के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने घनघोर जंगलों, बीहड मार्गो और असहनीय कठिनाईयों को सहकर फाह्यान एवं ह्वेनसांग के यात्रा विवरण को आधार बनाकर सम्पूर्ण भारत की यात्रा की तथा उन स्थलों को जो भूले बिसरे दम तोड़ रहे थे, उसे प्रकाश में लाया। कनिंघम के सर्वेक्षण यात्रा का मुख्य प्रयोजन प्राचीन स्थलों, स्मारकों एवं पुरावशेषों को प्रकाश मे लाना था।

कुशीनगर जनपद के अन्तस् में छिपे पुरावशेषों को प्रकाश में लाने का व्यवस्थित कार्य कनिंघम द्वारा 1860–62 में प्रारम्भ किया गया। कनिंघम नें 1861 में कुशीनगर क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। उनके इस सर्वेक्षण योजना के मूलतः दो प्रयोजन थे। प्रथम इस क्षेत्र के पुरावशेषों तथा पुरास्थलों का सर्वेक्षण एवं संग्रह तथा द्वितीय भगवान बुद्ध से सम्बन्धित स्थलों की पहचान, जो वर्तमान समय में उजाड़ हो गये थे। इस योजना को साकार करने के लिए उन्होंने जनपद के पूरे क्षेत्र का परिभ्रमण किया। इस सर्वेक्षण कम में अनेक उपेक्षित एवं अज्ञात पुरास्थल प्रकाश में आये। कनिंघम[1] द्वारा कसया के समीप स्थित टीलों के सीमित उत्खनन से कुशीनगर के पहचान का विवाद समाप्त हो गया। कनिंघम की भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (।तबीमवसवहपबंस ैनतअमल वि्पदकपं) नाम से 23 जिल्दों वाली विशाल रिपोर्ट प्रकाशित है।

कनिंघम की रिपोर्ट के आधार पर उन्हीं के सहायक ए0सी0एल0 **कार्लाइल ने 1876–77 ई0 में कुशीनगर का उत्खनन कराया और उन्हें महान ऐतिहासिक सफलता मिली। इतना ही नही कनिंघम एवं कार्लाइल की दृष्टि मल्लों के दूसरी शाखा की राजधानी पावा की ओर गयी और उन्होंने इसकी पहचान अलग–अलग की।** कनिंघम नें पडरौना के निकट छावनी नामक टीले को पावा होने की सम्भावना व्यक्त की।[2] जबकि उनके सहयोगी कार्लाइल ने सठियाँव डीह को, जो आधुनिक फाजिलनगर से लगभग 1 किमी0 दक्षिण पश्चिम दिशा में स्थित है, पावा

---

[1] कनिंघम, ए0, *आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट,* (ए0एस0आई0आर0) 1861–62, पृष्ठ 77–83 यकनिंघम, ए0 *एंशिएंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* वाराणसी, 1979, पृष्ठ 494।

[2] *ए0एस0आई0आर0,* 1862–63, वाल्यूम ५, पृष्ठ 74–75 य कनिंघम, ए0, *एंशिएंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृष्ठ 366–67 (पुनर्मुद्रित), वाराणसी, 1963 ।

होने की सम्भावना व्यक्त की।[1] कनिंघम एवं कार्लाइल ने जिले के कतिपय अन्य पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण एवं निरीक्षण किया। कनिंघम ने जनपद के पुरातात्विक स्थलों के साथ–साथ ऐतिहासिक भूगोल को भी ध्यान में रखा, जिसका विवरण इनकी पुस्तक 'एन्शियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया' में दिया गया है।[2] कार्लाइल द्वारा सर्वेक्षित जिलें के अन्य स्थलों के नाम इस प्रकार है : सरया, कुकुरपट्टी, नदवां, धनहा, ऊस्मानपुर डीह, बनवीरा, मीर बिहार, पथरवा, झारमठियॉ (धारमठिया), करमैनी और गांगीटीकर।[3]

कनिंघम की परम्परा का अनुसरण करते हुए, कार्लाइल के बाद फ्यूहरर ने 1896 ई0 में कुशीनगर जनपद के पुरावशेषों को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने जिले के कुछ स्थलों का सर्वेक्षण भी किया जिसका विवरण उनकी पुस्तक[4] में प्रकाशित है। इन्होंने धारमठिया के पुरातात्विक महत्व पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कनिंघम एवं कार्लाइल के सर्वेक्षणों का प्रतिफल यह हुआ कि सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश में पुरातात्विक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ और साथ ही पुरातत्व में प्रशासनिक अधिकारियों के साथ–साथ सामान्य जन भी रूचि लेने लगे। सन् 1899 ई0 में लार्ड कर्जन वायसराय बन कर भारत आये। उन्होने अपने एक कार्यवृत्त–विवरण में भारत में पुरातत्व के क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था एवं विसंगतियों के सन्दर्भ में अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने पूरातत्व से सम्बन्धित सभी कार्यों की देख–रेख और नियंत्रण के लिए सुयोग्य और प्रशिक्षित महानिदेशक की आवश्यकता पर बल दिया।

---

[1] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *ए0एस0आई0आर0 : रिपोर्ट ऑफ टूर्स इन गोरखपुर, सारन एण्ड गाजीपुर,* 1877–80, वाल्यूम 22, पृष्ठ 29–31, वाराणसी, 1966 ।

[2] कनिंघम, ए0, *दि एन्शियंट ज्याग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृष्ठ 363–67।

[3] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *ए0एस0आई0आर0, टूर्स इन गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट,* 1875–76 एण्ड 1876–77, वाल्यूम 18, दिल्ली 1869, पृष्ठ 102।

[4] फ्यूहरर, ए0, *द मानुमेण्टल एन्टीक्विटीज एण्ड इंस्क्रिप्शन्स इन नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज एण्ड अवध,* पृष्ठ 240, इण्डोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1969।

उन्होंने तत्कालीन शासन के पुरातत्व सम्बन्धित दायित्व को इस प्रकार स्पष्ट किया, श्उत्खनन और खोज करना, वर्गीकरण, प्रतिलिपि एवं विवरण तैयार करना, प्राचीन लिपियों की अनुकृति बनाना, पढ़ना तथा इन सबकी यादगार बनाये रखने के लिए उन्हें सुरक्षित रखना हमार दायित्व है।श[1] सन् 1902 ई0 में सर जॉन मार्शल भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक बने। 1904 ई0 में ष्प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियमष बना[2] और 1906 ई0 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को एक स्थायी विभाग बना दिया गया। मार्शल के कार्यकाल में सन् 1904 ई0 से सन् 1912 ई के बीच कुशीनगर का उत्खनन हुआ। इन उत्खननों से कुशीनारा के पहचान के सम्बन्ध में सारे भ्रम समाप्त हो गये। इन उत्खननों का श्रेय पुरातत्ववेत्ता दयाराम साहनी, वोगेल और हीरानन्द शास्त्री को दिया जा सकता है।

भारतीय पुरातत्व के अध्ययन में सन् 1944 ई0 बहुत महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष आर0 आई0 मार्टीमर व्हीलर नें भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक का पद सम्भाला। ये उत्खनन कार्य में वैज्ञानिक विधियों के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने भारत में पुरातत्व सम्बन्धित महत्वपूर्ण परिवर्तनों तथा उसके सर्वांगीण प्रगति के लिए अनेक कार्य किये। उन्होंने सन् 1945 ई0 में ष्केन्द्रीय पुरातत्व सलाहकार परिषदष का गठन किया, जिसके सदस्य विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, शैक्षिक समितियों तथा केन्द्र एवं प्रदेश शासन के प्रतिनिधि थे। व्हीलर उत्खनन में स्तर–विन्यास एवं ज्यामितीय नाप–जोख पद्वति के प्रबल हिमायती थे। व्हीलर के इन प्रयत्नों का प्रतिफल यह हुआ कि भारत वर्ष के विश्वविद्यालय भी पुरातात्विक अध्ययन में रूचि लेने लगे।

स्वतंत्रता के बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रथम वैज्ञानिक उत्खनन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रो0 कृष्ण कुमार सिन्हा ने सन् 1959 ई0 में श्रावस्ती में करवाया ।[3] इसी कम में गोरखपुर

---

[1] पाण्डेय, जे0, एन0, *पुरातत्व विमर्श,* इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 48।

[2] ग्रोवर, बी0एल0 एण्ड यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन,* नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 287।

[3] सिन्हा, के0 के0, *एक्सकेवेशन एट श्रावस्ती,* 1959, प्रीफेस ।

विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग नें सन् 1961–62 ई0 में सोहगौरा (गोरखपुर जनपद) नामक पुरातात्विक स्थल का वैज्ञानिक पद्वति से सीमित पैमाने पर उत्खनन कराया। इस उत्खनन के बाद पहली बार पूर्वी उत्तर प्रदेश में ताम्राश्म संस्कृति (बिंसबवसपजीपब) के अवशेष प्राप्त हुए।[1] पुनः इस विश्वविद्यालय ने सन् 1975–76 ई0 में सोहगौरा का उत्खनन किया जिसके प्रथम स्तर से नवपाषाणिक (छमवसपजीपब) अवशेष प्रकाश में आये।

सन् 1962–63 ई0 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 ए0 के0 नारायण अपने सहयोगी श्री पी0 सी0 पंत के साथ बस्ती, देवरिया एवं गोण्डा के अनेक स्थलों का सर्वेक्षण किया। उल्लेखनीय है कि उस समय कुशीनगर जनपद देवरिया का ही अंग था। जनपद के सर्वेक्षित स्थलों में मरचैयाडीह, पपउरडीह, वनमोर्चा, उस्मानपुरडीह तथा फाजिलनगर शामिल थे।[2] सन् 1963–64 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के डा0 आर0 बी0 सिंह द्वारा बस्ती,देवरिया (वर्तमान कुशीनगर भी सम्मिलित) एवं गोरखपुर के कुछ तहसीलों का सर्वेक्षण किया गया जिससे महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आई।[3]

सन् 1973–74 ई0 में भारतीय पुरातत्व विभाग के श्री के0 एम0 श्रीवास्तव ने कुशीनगर जनपद के उस्मानपुर (वीरभारी) टीले का सीमित पैमाने पर उत्खनन कराया था,[4] परन्तु दुर्भाग्यवश इसका विवरण प्रकाशित न हो सका। उनके द्वारा लगाए गए ट्रेन्च में पकी ईटों के दीवारों के प्रमाण आज भी देखे जा सकते हैं। वर्ष 1979–80 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व, एवं संस्कृति विभाग के प्रो0 शैल नाथ चतुर्वेदी ने अपने सहयोगियों के साथ, इस क्षेत्र का सर्वेक्षण

---

[1] चतुर्वेदी, एस0एन0, *एडवांस ऑफ द विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू द हिमालयन तराई : एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन द सरयू पार रीजन ऑफ उत्तरप्रदेश, मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट,* वाल्यूम 10, 1985, पृ0 101–103।

[2] *इण्डियन आर्कियोलाजी,ए रिव्यू,* 1962–63, पृ0 33।

[3] तर्दव, 1963–64, पृ0 45

[4] तदैव, 1973–74 पृ0 30

किया तथा उनके निर्देशन में फाजिलनगर एवं सठियॉव टीले का सीमित पैमाने पर उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ।[1] सन् 1981–82 ई0 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (मध्य पूर्वी क्षेत्र) के एच0 के0 नारायण एवं बी0 नाथ ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया तथा जनपद में स्थित तुर्कपट्टी के टीले से दो सूर्य की प्रतिमाएँ जिनमें से एक गुप्तकाल तथा एक पालयुगीन है, खोज निकाला।[2] सन् 1984–85 ई0 में मध्य पूर्वी परिक्षेत्र के ही अरूण कुमार ने पडरौना के उपनगर छावनी के टीले का उत्खनन कराया था।[3] 1997 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी के निर्देशन में पुनः उस्मानपुर (वीरभारी) टीले का सीमित उत्खनन कराया गया तथा साथ ही साथ उसके समीपवर्ती क्षेत्रों का सर्वेक्षण भी किया गया।[4] इसके अतिरिक्त समय–समय पर कतिपय अन्य विद्वानों द्वारा भी जनपद कुशीनगर के पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण एवं निरीक्षण किया जाता रहा, जिनमें गोरांगगोपाल सेनगुप्त[5] तथा राहुल सांकृत्यायन[6] का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। कुशीनगर जनपद में अद्यतन उत्खनित स्थलों का विस्तृत विवरण इस पकार है–

1. कुशीनगर

कुशीनगर प्राचीन भारत के तत्कालीन षोड्श महाजनपदों में से एक एवं मल्ल राज्य की राजधानी थी।[7] यह नगर $26^{0}45'$ उत्तरी अक्षांश और $83^{0}55'$ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। वर्तमान समय में यह गोरखपुर से 50 किमी0 पूर्व, देवरिया से 33 किमी0 उत्तर तथा पडरौना से 18 किमी0 दक्षिण पश्चिम में स्थित है।

---

[1] चतुर्वेदी, एस0 एन0, *एक्सकेवेशन एट सठियॉव–फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया (संप्रति कुशीनगर) एण्ड एक्सकेवेशन इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश,* हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी, 1980 , वाल्यूम 1, नं0 1–2, पृ 333–340

[2] *इण्डियन आर्कियोलाजी, ए रिव्यु,* 1981–82, पृ0 101

[3] *इण्डियन आर्कियोलाजी, ए रिव्यु,* 1984–85, पृ0 88

[4] त्रिपाठी, डी0 एन0, *वीरभारी (उस्मानपुरडीह) टीले का उत्खनन,* अप्रकाशित रिपोर्ट।

[5] सेनगुप्त, गोरांग गोपाल, *डेली लैण्ड रूट्स इन ऐंशियेंट इण्डिया,* पटना 1968, पृ0 1–4।

[6] सांकृत्यायन, राहुल, *बुद्धचर्या,* सारनाथ, 1952, पृ0 352

[7] *पअंगुतरनिकाय,* भाग 1, पृ0 213;तदैव, भाग 4, पृ0 252; *महावस्तु,* भाग 1, पृ0 34

कुशीनगर का पुरातत्व

कसया के अवशेषों को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय बुकानन[1] और लिस्टन[2] को है। कुशीनगर को कसया से समीकृत करते हुए भी ये विद्वान इस स्थान के ऐतिहासिक महत्व से अवगत नहीं थे। 1854 ई0 में एच0 एच0 विल्सन ने भी कसया को कुशीनगर से समीकृत किया,[3] परन्तु कुशीनगर की ओर इतिहास प्रेमियों का ध्यान कनिंघम द्वारा 1860–61 ई0 में इस क्षेत्र की खुदाई के बाद ही आकृष्ट हुआ। उत्खनन के परिणामों के आधार पर कनिंघम ने आधुनिक कसया को कुशीनगर से समीकृत किया।[4] कनिंघम के उत्खनन के समय यहाँ पर 'माथा–कुँवर का कोट' एवं 'रामाभार' नामक दो बडे तथा कुछ अन्य छोटे टीले मात्र अवशिष्ट थे। यह समस्त भूभाग वनाच्छादित एवं दुर्गम्य था। निकटवर्ती ग्रामों के निवासी इन टीलों की ईटें निकाला करते थे, जिससे प्राचीन स्मारकों का दुरूपयोग हो रहा था। मुकुट बन्धन चैत्य के ऊपर रामाभार भवानी की मठिया और एक अन्य स्तूप के ऊपर किसी नट की समाधि बन चुकी थी।[5]

कनिंघम के पश्चात् उनके सहायक अधिकारी कार्लाइल ने 1875 से 1877 ई0 तक कसया में महत्वपूर्ण सर्वेक्षण किया और कई टीलों की खुदाई करवाई। कसया की सुप्रसिद्ध परिनिर्वाण प्रतिमा मन्दिर एवं निकटस्थ स्तूप के अनुसन्धान का श्रेय कार्लाइल को ही प्राप्त है।[6] सन् 1893 ई0 में भारत सरकार ने इस क्षेत्र का अधिग्रहण किया। इस अवसर पर अनेक व्यक्तियों ने यहाँ उत्खनन किया, परन्तु

---

[1]मार्टिन, मान्टगोमरी, *ईस्टर्न इण्डिया,* भाग दो, पृ 357

[2] *जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,* 1837, पृ.417

[3]*जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी,* 1856, पृ.246, यहा इसका नाम कुसिया दिया गया है।

[4]कनिंघम ए0,*आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट,* अंक 1, पृ. 76–85

[5] नलिनाथ दत्त और कृष्णदत्त बाजपेयी, *डेवलपमेंट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश* (पब्लिकेशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956), प्रथम संस्करण, पृ. 357

[6] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया वार्षिक रिपोर्ट* ,अंक 18, कलकत्ता, 1883, पृ. 62 और आगे, अंक 22 (कलकत्ता, 1885), पृ. 16 और आगे।

उनका विवरण उपलब्ध नहीं है। 1896 ई0 में प्रान्तीय सरकार की ओर से विंसेण्ट स्मिथ ने कसया का सर्वेक्षण किया।[1]

पुनः पुरातत्व विभाग द्वारा वोगेल के निर्देशन में 1904 ई0 से 1907 ई0 तक तथा हीरानन्द शास्त्री की देख–रेख में 1910–12 ई0 तक उत्खनन किया गया।उत्खनित स्थलों का रेखाचित्र शोध प्रबंध में संलग्न है(रेखाचित्र सं0–2) इसके परिणामस्वरूप बहुत से स्तूप, चैत्य तथा बिहार प्रकाश में आए। ये स्मारक एक दूसरे के सान्निध्य में ही नहीं थे, अपितु इनका निर्माण विभिन्न तत्वों से हुआ था। तिथि तथा संवत्‌युक्त अभिलेखों के अभाव में इन स्मारकों का तिथि–निर्धारण दुष्कर है। यद्यपि इन स्मारकों में प्रयुक्त ईटों की नाप से तिथि निर्धारण किया जा सकता है, परन्तु स्मारकों के परवर्ती निर्माताओं द्वारा पूर्वकालीन ईटों के तिथि–निर्धारण के सन्दर्भ में इनकी माप का प्रयोग सर्वथा निरापद नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन कुशीनगर के पुरावशेष

कुशीनगर के बौद्ध स्मारक वस्तुतः दो स्थानों में केन्द्रित है। शालवन, जहाँ बुद्ध को परिनिर्वाण प्राप्त हुआ था और मुकुट बन्धन चैत्य, जहाँ उनका दाह–संस्कार हुआ था। परिनिर्वाण स्थल को अब 'माथा कुँवर का कोट' नाम से जाना जाता है, जबकि मुकुट बन्धन चैत्य का प्रतिनिधित्व आधुनिक रामाभार का टीला करता है। 'माथा कुँवर का कोट' के गर्भ में परिनिर्वाण मन्दिर एवं मुख्य स्तूप छिपे हुए थे। ये दोनों स्तूप कुशीनगर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक थे। इनके चारो ओर समय समय पर अनेक स्तूपों, चैत्यों तथा विहारों का निर्माण होता रहा।

मुख्य स्तूपः

इस स्तूप (फलक पर A) की खुदाई सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1876ई0 में की थी। उस समय यह बहुत जीर्ण–शीर्ण दशा में था। इस स्तूप के शिखर तथा खण्ड

[1] *जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी,* 1902, पृ.139,

कुशीनगर साइट प्लान

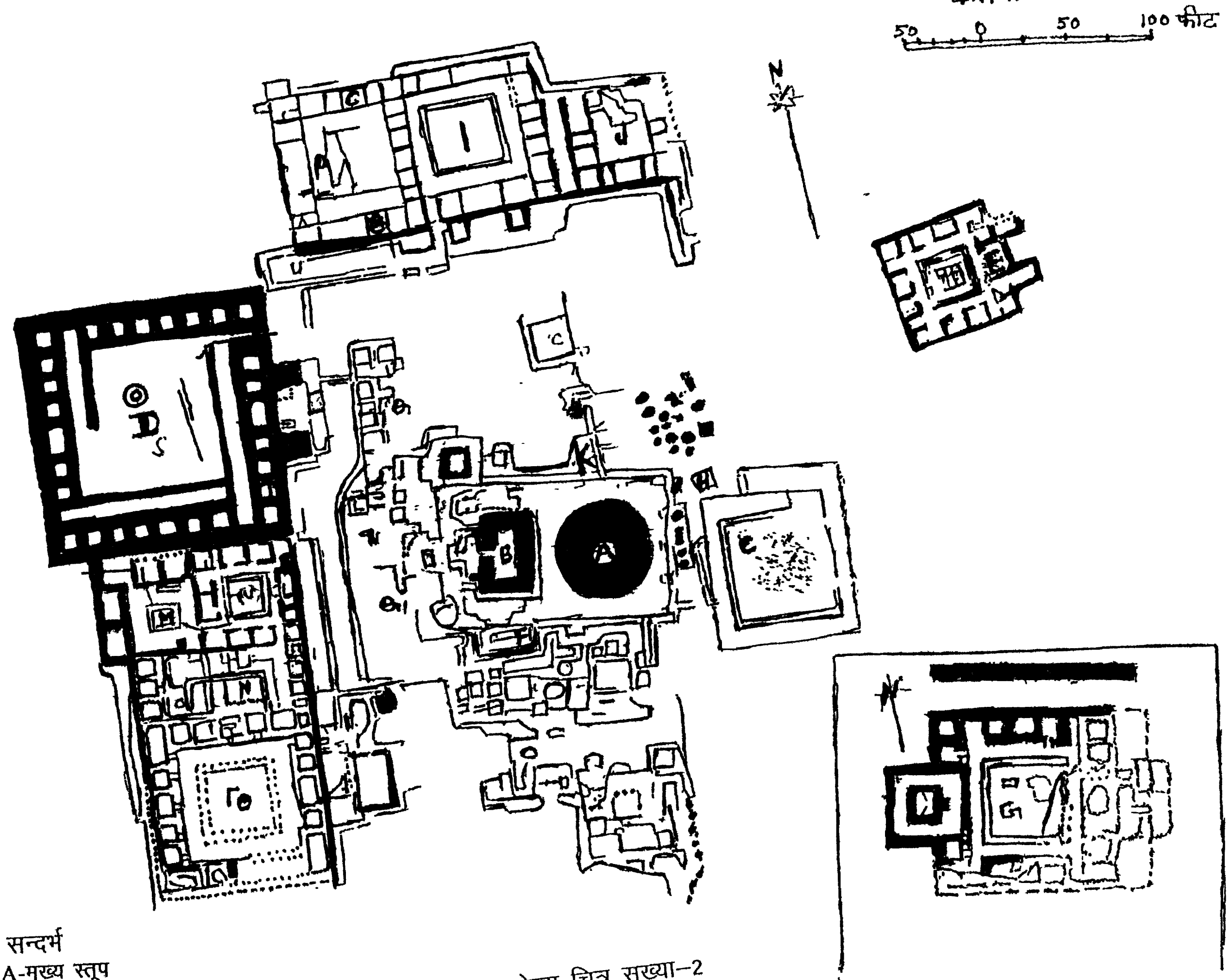

सन्दर्भ
A-मुख्य स्तूप
B-निर्वाण मन्दिर
D, E, I, J, M, N, O, Q, Q_1-प्रमुख विहारें
G-माथा कुँवर मन्दिर
H-प्रारम्भिक मौर्य कालीन संरचना
C, F, K-अन्य संरचनाएँ

रेखा चित्र सख्या–2

भाग पूर्णतः नष्ट हो चुके थे।[1] केवल अधोभाग ही अवशिष्ट था। ह्वेनसांग ने इस स्तूप की ऊँचाई 200 फुट बतायी है और इसके निर्माण का श्रेय अशोक को दिया है,[2] परन्तु कार्लाइल ने शिखर सहित इसकी ऊँचाई 150 फुट बतायी है। इसकी नींव जिस पर स्तूप और मन्दिर निर्मित हुए थे, पृथ्वी की सतह से 2.74 मी0 ऊँचाई पर थी। इस स्तूप में प्रयुक्त ईटें विभिन्न आकार की थी। कार्लाइल के अनुसार इस स्तूप के नीचे अन्य प्राचीन स्तूपों के ध्वंसावशेष दबे हुए थे।

1910 ई0 में हीरनंद शास्त्री के निर्देशन में इस स्तूप की खुदाई पुनः आरम्भ हुई। ऊपर से गुम्बद को हटाने पर गोलाकार भित्ति में सबसे ऊपर कुछ नक्काशीदार ईंटें तथा जयगुप्त नामक राजा का एक ताँबे का सिक्का मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि इन नक्काशीदार ईटों को अन्य प्राचीन स्मारकों से लिया गया था।[3] खुदाई करने पर 14 फुट (2.74 मी0) नीचे ईटों का एक वृत्ताकार कक्ष मिला।[4] स्तूपों के ध्वंसावशेष दबे हुए थे। इसकी ऊँचाई और व्यास 0.64 मीटर (2 फुट 1 ईंच) था। इसके अन्दर ताम्रपत्र द्वारा बंद एक ताम्रघट रखा था। इस ताम्रघट में बालू, लकड़ी के कोयले, कीमती पत्थर, कौड़ियाँ और दो ताम्रनलियाँ मिली हैं। इसके अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम के कुछ रजत सिक्के तथा एक छोटी स्वर्ण एवं रजत नली भी मिली है। स्वर्ण नली में भूरे रंग का कोई पदार्थ तथा किसी तरल पदार्थ की दो बूदें रखी हुई थी। मुखाच्छादन के रूप में प्रयुक्त ताम्रपत्र पर संस्कृत भाषा में 'निदानसूत्र' लिखा गया है। परिनिर्वाण चैत्य में हरिबल स्वामी ने इसे स्थापित किया था।[5] फ्लीट ने प्रतिमा पर अंकित लिपि को 5 वीं शताब्दी का माना है।[6] कुमारगुप्त प्रथम के सिक्कों

---

[1] कार्लाइल के समय अण्ड के नीचे का गोलाकार भाग 25 फुट ऊँचा था और उसकी परिधि 5 फुट थी।

[2] थामस वाटर्स, *आन युवान च्वांग्स इन इण्डिया,* जिल्द दो, पृ. 28

[3] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1910–11, पृ. 64

[4] देवला मित्रा, *बुद्धिस्ट मानुमेण्टस* (कलकत्ता, 1917), पृ. 70

[5] यह हरिबल स्वामी वही था जिसने परिनिर्वाण प्रतिमा को स्थापित किया था।

[6] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1910–11, पृ. 64

की प्राप्ति से यह निश्चित हो जाता है कि ऊपरी स्तूप की संरचना भी इसी शताब्दी में हुई थी।

इस स्तूप के 10.36 मीटर नीचे खोदने पर 2.82 मी0 ऊँचे एक छोटे स्तूप का अवशेष मिला। इसके पश्चिमी पार्श्व में प्रथम शताब्दी में निर्मित बुद्ध की एक ध्यानावस्थित मृण्मूर्ति स्थापित की गयी थी।[1] स्तूप के भीतर एक मिट्टी के पात्र में कुछ जला हुआ कोयला रखा था। सम्भवतः यह कोयला किसी भिक्षु की चिता का था, जिसे इसमें रख दिया गया था। यह स्तूप अच्छी दशा में था, अतः हीरानंद शास्त्री ने इस स्तूप को मुख्य स्तूप से बहुत पूर्व का माना है।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस स्तूप का कई बार परिवर्धन एवं जीर्णोद्धार किया गया। वहॉ सर्वप्रथम एक छोटे से स्तूप का निर्माण हुआ और कालान्तर में उसके आकार में निरनतर अभिवृद्धि होती रही। पॉचवी शताब्दी में हरिबल स्वामी ने इसका जीर्णोद्वार करवाया और परवर्ती काल में भी उसकी आवश्यक मरम्मत होती रही। 75 फुट ऊँचा स्तूप का वर्तमान कलेवर (छायाचित्र संख्या – 1) 1927 में भक्तों के किए गए कार्य का सुफल है।

परिनिर्वाण मन्दिर

यह मन्दिर (जिसे फलक पर B से दिखाया गया है), मुख्य स्तूप के पश्चिम में स्थित था। सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1876 ई0 में इस मन्दिर और परिनिर्वाण प्रतिमा को खोज निकाला था। कार्लाइल को ऊँची दीवालें तो मिली थीं, परन्तु छत के अवशेष नहीं मिले थे। इसमें केवल गर्भगृह और उसके आगे एक प्रवेश कक्ष था। इस टीले के गर्भगृह में खुदाई करते समय कार्लाइल को एक ऊँचे सिंहासन पर तथागत की 20 फुट (6.1 मी0) लम्बी परिनिर्वाण मुद्रा की प्रतिमा मिली थी। इसका निमार्ण एक ही शिलाखण्ड पर किया गया हैं। यह प्रतिमा चित्तीदार बलुआ पत्थर की है। इसमें बुद्ध को पश्चिम की तरफ मुख करके लेटे हुए दिखाया गया है। इसका सिर

[1] देवला मित्रा, *बुद्धिस्ट मानुमेण्टस* (कलकत्ता, 1917), पृ. 70

[2] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1910–11, पृ. 64–65

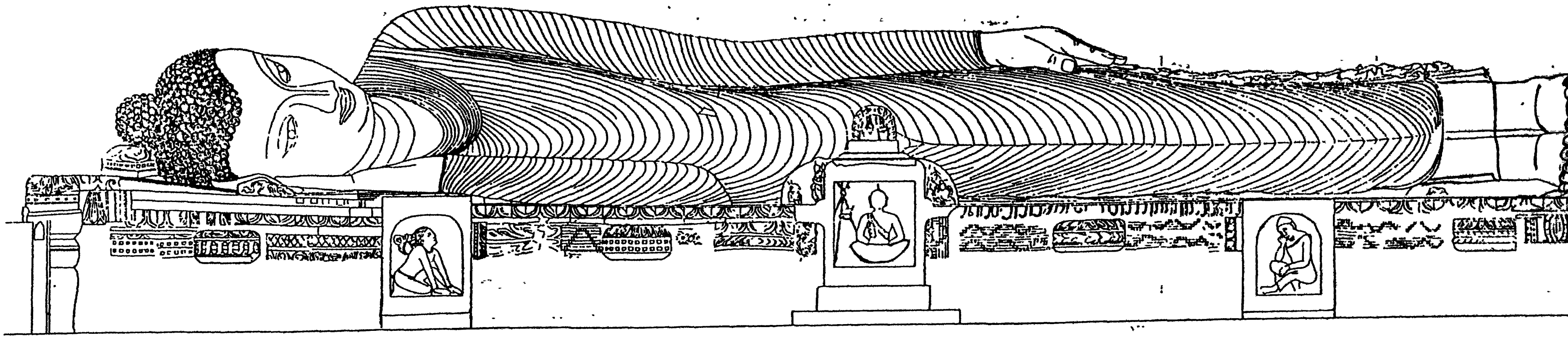

रेखा चित्र संख्या—3 बुद्ध की महापरिनिर्वाण प्रतिमा

उत्तराभिमुख है, दाहिना हाथ सिर के नीचे और बायॉ हाथ जंधे पर स्थित है। पैर एक दूसरे के ऊपर है।[1] यह मूर्ति एक लम्बे पषाण पर आधारित हैं। इसके चारों कोने पर छोटे–छोटे पाषाण स्तम्भ बने हुए हैं। यह सिंहासन 24 फुट लम्बा तथा 5 फुट 6 ईंच चौडा तथा दो फिट ऊँचा हैं। सिंहासन के ऊपर पत्थर की पट्टियाँ जड़ी हुई हैं। सिहासन के अग्र भाग में छोटे–छोटे पत्थर की मूर्तियॉ बनी हुई हैं जिनमें तीन शोक सन्तप्त मूर्तियाँ प्रमुख है।[2] कलाविद इन्हें आनन्द, सुभद्र तथा वज्रपाणि की प्रतिमा मानते हैं। ये सारी मूर्तियॉ पत्थर निर्मित छोटे–छोटे ताखे में प्रतिष्ठित हैं। बॉयी ओर एक स्त्री की मूर्ति हैं औंर इसे दुःखद मुद्रा में दर्शाया गया हैं। दायी ओर भी ठीक इसी प्रकार की मूर्ति मिलती हैं। बींच वाली मूर्ति एक पुरूष की हैं जो पद्मासन में बैंठा हुआ हैं(रेखचित्र सं0–3)। इसके नीचे पांचवी शताब्दी का ब्राह्मी लिपि में एक लेख

---

[1] कार्लाइल की यह मूर्ति 1877 ई0 में खुदाई करते समय ऊपरी सतह से 10 फुट नीचे मिली थी। उस समय यह मूर्ति कई खण्डों में विभक्त थी। इस मूर्ति की पहले भी मरम्मत की गयी थी। देखे आ. स.रि., भाग 18, पृ. 57–58 और भाग 22, पृ 17। ऐसा लगता है कि इस प्रकार की प्रतिमाओं का कुशीनगर में प्राधान्य था और इनकी पूजा की जाती थी। परिनिर्वाण से सम्बंधित अन्य छोटी प्रतिमाएँ भी मिली है। इसी प्रकार की एक विशाल प्रतिमा अजन्ता की गुफा नं0 26 से भी उपलब्ध है। देखे, नलिनाथ दत्त और कृष्णदत्त बाजपेयी, डेवलपमेंट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश, पृ. 360 (पाद टिप्पणी)

[2] इन मूर्तियों की पहचान कठिन है। बायी तरफ एक नारी की प्रतिमा है, जो दोनो हाथ जमीन पर रखकर शोकसन्तप्त मुद्रा में झुकी हुई है। दायी ओर की मूर्ति स्त्री की है या पुरूष की यह तो स्पष्ट नही पर यह मूर्ति भी शोकसन्तप्त मुद्रा में दाएँ हाथ से सिर को पकड़े हुए है। बीच की मूर्ति बैठी हुई है। ये मूर्तियां आनन्द, सुभद्र, और मल्लिका की हो सकती है। बीच की मूर्ति हरिबल की भी हो सकती है।

उत्कीर्ण है।[1] इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिनिर्वाण मूर्ति का प्रतिष्ठापक हरिबल[2] नामक व्यक्ति था और इसका शिल्पी मथुरा का दिन्न था।

मूर्ति से निर्वाण कालीन शान्ति स्फूटित हो रहीं हैं। इसकी विशिष्ट मुद्रा औंर इसका प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप भी ध्यान देने योग्य हैं। भारतीय प्रतिमाओं (हिन्दू, बौंद्ध एवं जैन) की तीन मुद्रायें मिलती हैं – स्थानक, आसन औंर शयन। महापरिनिर्वाण प्रतिमा शयन मुद्रा में हैं। शयन मूर्तियॉ अधिकांश हिन्दू परम्परा विशेषतः वैष्णव धारा की रही हैं। इस मुद्रा वाली शाक्त औंर शैव मूर्तियाँ भी कुछ मिली हैं। डा0जे0 एन0 बनर्जी का यह कथन समीचीन हैं कि शयन परम्परा में विष्णु की शेषशयन मूर्ति औंर बुद्ध की महापरिनिर्वाण मूर्ति की तुलना की जा सकती हैं[3]। अन्ततः यहीं कहना अभिष्ट होगा कि यह प्रतिमा युग–युगों तक अखिल जगत को सद्धर्म का संदेश देने वाली हैं।

मलवे की सफाई के पश्चात् कार्लाइल को निर्वाण मन्दिर का पता चला। मन्दिर की दीवाल की मोटाई 3.05 मीटर और गर्भगृह की लम्बाई चौड़ाई 9. 35×3.66 मीटर थी। प्रवेश कक्ष की लम्बाई 10.92 मीटर तथा चौड़ाई 4.57 मीटर थी। सफाई के समय कार्लाइ्ल को अल्प मात्रा में चौरस ईटे और टेढ़ी दीवाल के अवशेष मिले थे, जिसके आधार पर कार्लाइल ने यह मत व्यक्त किया था कि इस मन्दिर की छत मेहराब गुम्बद से युक्त थी। इसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर था। उत्तर और दक्षिण की दीवालों में एक–एक खिड़कियाँ थीं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मूर्ति की दृष्टि से इस मन्दिर का गर्भगृह छोटा है और प्रदक्षिणा के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि परिनिर्वाण प्रतिमा की स्थापना 5 वीं शताब्दी में हुई थी, परन्तु यह मन्दिर इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। मूर्ति पर प्रयुक्त परवर्ती प्लास्टर इस बात का सूचक है कि यह मन्दिर कई शताब्दियों तक परिवर्तित होता रहा। उत्तरी

---

[1] देयधर्म्मोयं महावीरस्वामिनो हरिबलस्य।
प्रतिमा चेयं घटिता दिन्नेन माथुरेण।।

[2] यह हरिबल स्वामी सम्भवतः वही है जिसने मुख्य स्तूप में ताम्रपत्र को स्थापित किया था।

[3] बनर्जी, जे0एन0, *डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी*, कलकत्ता, 1956, पुष्ठ – 274।

और दक्षिणी दीवालों के नीचे, मूर्ति से युक्त पूर्ववर्ती मन्दिर के अवशेष उस स्थान से मिले थे, जहॉ से कार्लाइल को परिनिर्वाण मन्दिर के अवशेष मिले थे।[1] लेकिन यह कहना कठिन है कि यह वही प्राचीन मन्दिर था, जिसमें परिनिर्वाण प्रतिमा सर्वप्रथम स्थापित की गयी थी और जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने किया था।[2] कार्लाइल द्वारा अन्वेषित इस परिनिर्वाण मन्दिर का निर्माण 11वीं–12 वीं शताब्दी में हुआ होगा, जबकि कुशीनगर अवनति की ओर अग्रसर था। कार्लाइल ने इस मूर्ति की मरम्मत और मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।[3] आधुनिक काल में भी इसका कई बार जीर्णोद्धार होता रहा।[4] इसके वर्तमान स्वरूप का निर्माण 1956 ई0 में हुआ था(छायाचित्र संख्या–2)।
मन्दिर के चारो तरफ विहार बने हुए थे। जिन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कई वर्गो में विभाजित किया जा सकता है–

पश्चिमी वर्ग

स्तूप और निर्वाण मन्दिर के चारों ओर ईटों से निर्मित कई स्थापत्य है जिनका समय समय पर एक धार्मिक मठ के रूप में विकास होता रहा। यहाँ से दो मठों (क्यू और क्यू1) का पता चला है। यहॉ उत्खनन से बड़ी मात्रा में लिपियुक्त और तिथि परक वस्तुएँ प्रकाश में आयी है। यहीं से प्राप्त मिट्‌टी की एक मुहर पर बने दो साल वृक्षों के नीचे बुद्ध की समाधि और दो पँक्तियों में 'महा परिनिर्वाण भिक्षु संघ'

---

[1] देखें, फोगल, *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1904–5, पृ. 48–49

[2] सेमुअल बील, *बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड,* भाग 3 (कलकत्ता संस्करण,1958) ,पृ 283

[3] परिनिर्वाण प्रतिमा अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि मूर्ति को तीन ओर से देखने पर शान्त, बीच से देखने पर शोकसन्तप्त, तथा सिर की ओर से देखने पर प्रसन्न मुद्रा में प्रतीत होती है।

[4] मई 1955 मे भारत सरकार द्वारा एक समिति गठित की गयी जिसका प्रमुख उददेश्य बुद्धके जीवन से सम्बंधित स्थलों का पुनरूद्धार करना था। परिणामतः इस स्थान पर भी आधुनिक मन्दिर का निर्माण 1956 में हुआ।

लेख लिखा हुआ है।[1] इन लेखों की तिथि चौथी शताब्दी प्रतीत होती है। चॉदी का एक सिक्का मिला है जिसे क्षत्रप नरेश दामसेन का माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ टूटी हुई मृण्मूर्तियॉ और बडी मात्रा में मृद्भाण्ड भी मिले हैं। इन समस्त वस्तुओं का निचली सतह से मिलना यह सिद्ध करता है कि ये दोनों मठ चौथी शताब्दी के पहले निर्मित हुए होंगे। उत्खनन से पश्चिम मन्दिर के सामने कई भवनो के खण्डहर (छाया चित्र संख्या–3) प्रकाश में आए हैं जिनका प्रसार 107.93 मीटर लम्बाई में था। इन्हें फलक में–डी, एल, एम, एन, तथा ओ– से दिखाया गया है।

इन भवनों में 45.72 मीटर वर्गाकार घेरे में फैला सबसे बड़ा एक मठ (डी) था। इस मठ के चारों ओर 3.05 मीटर चौडा गलियारा बना था। इसमें भिक्षुओं के निवास के लिए छोटे–छोटे कई कमरे बने थे। कमरों और गलियारों की फर्श कंकरीट की बनी थी। मठ की दीवारें बहुत बड़ी और मोटी थीं जिससे इस मठ के कई मंजिला होने का अनुमान किया जाता है। उत्खनन में एक कुएँ से 900 ई0 की एक अभिलिखित मुहर भी मिली है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस भवन का निर्माण 8 वीं शताब्दी में हो चुका था और विनाश 900 ई0 के आस पास हुआ।[2] ऐसा लगता है कि इस भवन निर्माण के एक शताब्दी बाद प्राचीन भवन के स्थान पर एक नए भवन का निर्माण हुआ और परवर्ती भवन के निर्माताओं ने पुराने भवन के पुरावशेषों का भरपूर उपयोग किया।

मुख्य भवन के दक्षिण एक दूसरे से सम्बंधित चार अन्य भवनों के अवशेष प्रकाश में आए हैं। उल्लेखनीय है कि एक दूसरे से सम्बंधित होते हुए भी ये सभी भवन योजना और आकार में परस्पर भिन्न हैं। मन्दिर के उत्तर पूर्व में एक चौकोर बिहार (एल) था। इस विहार के बीच में आँगन में एक ऐसा मठ मिला है जिसके आँगन में एक तालाब था। इन दोनों विहारों की खुदाई से गुप्तकाल (चौथी–पांचवी शताब्दी) की लिखित मुहरें, धातु, पाषाण पात्र एवं अन्य उपयोगी वस्तुएँ मिली है।

---

[1] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1906–7, पृ. 63

[2] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1905–6,

एक अन्य विहार का भी अवशेष मिला है, जिसे फलक पर (एन) से अभिहित किया गया है। विहार का केन्द्रीय भाग आयताकार और उसकी दीवारें नीची थी। पूर्व में एक समान दूरी पर गडढे निर्मित थे। ऐसी म्भवना है कि इन गडढों में लकडी के खम्भे रहे होंगे, जिनके सहारे लकड़ी की छत टिकी रही होगी। इन्हें स्तम्भ–गर्त कह सकते हैं। सम्भवतः इस भवन का उपयोग विचार–विमर्श के निमित्त सभा– भवन के रूप में किया जाता था। इस विहार के नीचे अन्य अवशेष विद्यमान थे, परन्तु यह स्पष्ट नही है कि ये अवशेष मूल विहार की नींव है या किसी अन्य विहार के खण्डहर। ऊपरी सतह से कुछ मृण्भाण्ड और लोहे का एक चम्मच मिला है।[1]

उपर्युक्त विहार के दक्षिण 34.53 मीटर वर्गाकार घेरे में विस्तृत एक अन्य विहार (ओ) का अवशेष मिला है। इस विहार के बीच में ऑगन और इसके चारो तरफ गलियारे युक्त 20 कमरे थे। यह विहार आकार में मेजर किटोई द्वारा उत्खनित सारनाथ के विहार से पर्याप्त समानता रखता है।[2] इसकी बाहरी दीवाल की मोटाई 5 फुट तथा आँगन के चारो तरफ के दीवाल की मोटाई 4 फुट 2 इंच है। इस विहार में प्रयुक्त ईटों की माप 14 इंच×8.5 इंच से 9 इंच×2 इंच–2.5 इंच है।

उत्खनन करने पर इन विहारों से बड़ी मात्रा में मुहरें तथा चंद्रगुप्त द्वितीय (400 ई0) का एक सोने का सिक्का मिला है। इसके अतिरिक्त एक कमरे से कुषाण काल (प्रथम शताब्दी ई0) का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। आँगन की खुदाई से मथुरा में निर्मित लाल पत्थर की कुछ मूर्तियाँ मिली है।[3] अतः यह निश्चित

---

[1] *आकियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1906–7, पृ. 44

[2] *ए.एस.आई.आर.*, भाग–1 पृ. 127, प्लेट 32

[3] *आकियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1906–7, पृ 50, उल्लेखनीय है कि लाल पत्थर की मूर्तियों का प्रचलन उस समय मथुरा में था तथा इन मूर्तियों की मांग सर्वत्र रहती थी। अतः सम्भव है यहीं से लाकर इन मूर्तियों को यहां स्थापित किया गया होगा।

होता है कि इस वर्ग के सभी विहारों का निर्माण प्रथम शताब्दी में और इनका विनाश 5 वीं–6 वी शताब्दी अर्थात गुप्त काल में हुआ।[1]

दक्षिणी वर्ग

इस वर्ग के स्मारकों में अधिकांश छोटे–छोटे स्तूप थे जिनकी स्थापना श्रद्धालु भक्तों एवं तीर्थयात्रियों द्वारा की गयी थी। ये स्मारक दक्षिण ओर से एक निश्चित लम्बाई की दीवाल से आवृत्त थे। स्मारकों के मध्य में दो ऐसे स्तूप थे जिनमें प्रयुक्त ईटें अनिश्चित आकार की थी और नीचे की कार्निसेज और अलंकृत स्तम्भ मुख्य स्तूप के समान थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसका निर्माण मुख्य स्तूप के साथ ही हुआ होगा।

इसके उत्तर एक आयताकार विहार (एफ) था जिसका अधिष्ठान मुख्य स्तूप के समान था। इसके भीतर ईट की कब्रनुमा एक ठोस संरचना थी। यह निर्माण पूर्ववर्ती प्रतीत होता है, क्योकि इसकी नींव एक पंक्ति में नहीं है। पश्चिमाभिमुख इसका प्रवेश द्वार 1.57 मीटर चौड़ा था। इसके दोनों किनारों पर बुद्ध की ध्यानावस्थित मृण्मूर्ति स्थापित थी।

पूर्वी भाग

पूर्वी वर्ग के अवशेषों में सबसे रोचक तथा महत्वपूर्ण अवशेष था, एक चबूतरेनुमा बड़ा स्थापत्य। यह संरचना पक्की ईटों की बनी थी तथा मुख्य संरचना के तिरछे थी। इसे फलक पर 'सी' नाम दिया गया है। यह दो चबूतरों से युक्त था। निचला चबूतरा चौकोर और सीढ़ियों से युक्त था। ऊपरी चबूतरा अपेक्षाकृत छोटा था और उसके चारो तरफ 3.66 मीटर ईटों का बना एक प्रदक्षिणा–पथ था। यह प्रदक्षिणा पथ चारों तरफ समान नहीं है। क्योंकि दोनो चबूतरे एक दूसरे के समानान्तर नहीं थे। निचले चबूतरे की दीवालें सादी थी, जबकि ऊपरी चबूतरे में अलंकृत साँचे में ढली

[1] उल्लेखनीय है कि हूणों ने 5 वीं और 6 वीं शताब्दी में गुप्तों को आक्रांत किया था। सम्भव है कि यह विनाश उन्हीं के द्वारा हुआ हो।

ईटों एवं कार्निसेज का प्रयोग किया गया था। यह (7 वीं शती में) निर्मित स्तूपों से घिरा हुआ था।

2.54×2.52 मीटर परिधि में विस्तृत इस चबूतरे–युक्त भवन के उत्तर–पश्चिम एक छोटे भवन 'एच' का अवशेष मिला है। इस भवन में प्रयुक्त बड़े आकार की ईंटों की माप 48.26×25.4×7.62 सेमी0 और 46.20×25.4×6.98 सेमी0 थी। इस प्रकार की ईंटे मौर्यकाल में प्रयुक्त होती थीं। अतः यह भवन मौर्यकाल का प्रतीत होता है। यहाँ से कुषाणों के तॉबें के सिक्के मिले हैं। इन कुषाण सिक्कों में 8 कनिष्क के और 4 कैडफिसेस द्वितीय के है। इसके आसपास परन्तु नीचे दबे पड़े अनेक छोटे स्तूप मिले है जिसके आधार पर इन स्तूपों के भवन से पूर्व के होने का अनुमान किया जाता है।

उत्तरी वर्ग

इस वर्ग के बने भवन मौर्यकालीन थे जो समय समय पर श्रद्धालू तीर्थयात्रियों द्वारा बनवाये गए थे। निचली सतह से दो चौकोर मकानों के अवशेष मिले हैं।[1] पश्चिम की ओर दीवालों में प्रयुक्त ईंटे मौर्ययुगीन प्रतीत होती हैं। सतह से नीचे खोदने पर एक पकाई मिट्टी की पहली शताब्दी ई0 पू0 की नारी प्रतिमा और 5 वीं शताब्दी का एक खण्डित प्रस्तर–अभिलेख मिला है। इनके उत्तर में दो अन्य भवनों के अवशेष मिले है जिन्हें क्रमशः 'आई' तथा 'जे' कहा गया है। 'आई' भवन आयताकार है जो 103 फुट लम्बा और 97 फुट चौड़ा है। इसमें चारो ओर कमरे बने थे और बीच में 67'.7''×66'.6' नाप का खाली स्थान था जिसमें 44 फुट चौकोर और 2 फुट गहरा जलकुण्ड बना था। यह जलकुण्ड 2 फुट चौड़ी दीवाल से आवृत था जिसके ऊपर 1 फुट 2 इंच चौड़ी नीची दीवाल उठी हुई थी । इस दीवाल के ऊपरी भाग से बड़ी आकार की ईंटे मिली है जिनकी माप 16 इंच×10 इंच×2.5 इंच थी।[2] ऐसा आभास

---

[1] सम्भवतः ये प्रारम्भिक मन्दिरों के अवशेष हो सकते है।

[2] *आकियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (वार्षिक रिपोर्ट)*, 1906–7, पृ 53,

से जाना जाता है।[1] इस मन्दिर में भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध की 3.05 मीटर ऊँची विशाल प्रतिमा स्थापित हैं (छायाचित्र सं0–4)। यह गया के काले पत्थर से निर्मित थी। इस मूर्ति के पादपीठिका पर 11वीं शताब्दी का एक लेख है। लेख के अनुसार मूर्ति तथा मन्दिर की रचना ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में किसी स्थानीय कलचुरि नरेश के समय में हुई थी। कालान्तर में 1875 ई0 में कार्लाइल ने इस मन्दिर का उत्खनन कराया।[2] पुनः 1911 की खुदाई में इसका प्राचीन सिंहासन भी मिल गया। इस मूर्ति की मरम्मत कराने के बाद उसे पुनः पुराने स्थान पर स्थापित कर दिया गया और 1927 ई0 में इसी स्थान पर वर्तमान मन्दिर का निर्माण किया गया। यह प्रतिमा पत्थर की एक ही शिला पर उत्कीर्ण हैं। पीठिका के दोनों ओंर शेर अंकित हैं तथा बीच में उपासिकायें उत्कीर्ण हैं। वेदी पर उल्टें में कमल पुष्प हैं जिस पर तथागत गौतम बुद्ध भूमि स्पर्श मुद्रा में एक हाथ नीचे भूमि को छूते बैठे हैं। प्रतिमा प्रभामण्डल से युक्त हैं। इसके ऊपरी भाग पर बोधिछाया अंकित हैं तथा अगल–बगल देवी–देवता उत्कीर्ण हैं जैंसे– सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यक्ष आदि। यह प्रतिमा उच्च–भावना से प्रेरित होकर बनाई गई हैं जो कठोर निश्चय की प्रतीक प्रतीत होती हैं।

परवर्ती उत्खननों से अब यह प्रायः निश्चित हो गया है कि उपर्युक्त मन्दिर एक स्वतंत्र रचना न होकर एक बडे विहार का अंग था। यह विहार 114 फुट (34.75 मीटर) चौकोर क्षेत्र में विस्तृत था। इसमें 13.41 मीटर वर्गाकार आँगन और 2. 59 मीटर चौड़े गलियारे बने थे। इस पूर्वाभिमुख विहार में ऑगन के चारो ओर कमरे बने हुए थे। पश्चिम किनारे पर बीच में बने एक कमरे में उपर्युक्त मूर्ति स्थापित थी।

उत्खनन से बुद्ध के जीवन की घटनाओं से सम्बद्ध 10वीं–11वीं शताब्दी की मिट्टी की मुहरें मिली है। कार्लाइल को इसी काल का एक शिलापट्ट[3] भी मिला

---

[1] ए. कनिंघम , *दि ऐश्येण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया,* (इण्डोलाजिकल बुक हाउस,वाराणसी, 1963) पृ.364

[2] देवला मित्रा, *बुद्धिस्ट मानुमेण्टस* , पृ. 71।

[3] उद्धृत , अभिलेख , वी.वी. मिराशी, इन्सक्रिपशन्स ऑफ दी कलचुरि एरा',प्लेट दो, *कार्पस इन्सक्रिप्सनम् इण्डिकेरम,* भाग4 (उटकसण्ड, 1955) पृ. 375 और आगे।

था जिससे इसको कलचुरि वंश के किसी स्थानीय शासक (सम्भवतः भीमत द्वितीय) द्वारा बनवाये जाने की पुष्टि होती है।

उत्खनन में मुख्य स्तूप और निर्वाण मन्दिर के चारो ओर फैले अनेक सहायक मठ मिले है। इस वर्ग के चारो ओर बनी एक दीवाल से इसकी पुष्टि होती है। टूटी ईटों से निर्मित 14.56 हेक्टेयर असमान चतुर्भुज क्षेत्रफल में विस्तृत यह दीवाल पूर्णतः भूमि के अंदर छिपी हुई थी। इसकी प्रत्येक भुजा 381 मीटर लम्बी थी।[1]

आधुनिक युग में माथा कुँवर नाम से एक नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ। इस समय अन्य प्राचीन अवशेषों के अतिरिक्त यह मन्दिर तथा स्तूप ही कुशीनगर के मुख्य दर्शनीय स्थल है। 1956 ई0 में भगवान बुद्ध की 2500वीं जयन्ती के अवसर पर कार्लाइल द्वारा निर्मित परिनिर्वाण मन्दिर को तोड़कर विस्तृत और भव्य नए मन्दिर का निर्माण किया गया।

रामाभार का टीला

कुशीनगर–देवरिया मार्ग पर माथा कुँवर मन्दिर से 1.61 किमी0 की दूरी पर रामाभार नाम से प्रसिद्ध एक टीला है जिसे वर्तमान में रामाभार स्तूप के नाम से जाना जाता है (छायाचित्र सं0–5)। इसी के पास रामाभार झील या ताल भी स्थित है। सम्भव है इस टीले का नामकरण उक्त झील के नाम पर ही किया गया हो। इस स्थान पर मल्लों की अभिषेकशाला थी और वहीं पर बुद्ध का अन्तिम संस्कार किया गया था। इसे उस समय मुकुटबन्धन चैत्य के नाम से जाना जाता था।[2]

कनिंघम के प्रथम सर्वेक्षण के समय रामाभार 'भवानी की मठिया' बन चुकी थी। समस्त भूभाग वनाच्छादित एवं दुर्गम्य था। निकटवर्ती ग्रामवासियों द्वारा इन टीलों की ईटें निकाल लिए जाने के कारण यह मात्र खण्डहर के रूप में अवशिष्ट था।

---

[1] स्मरणीय है कि इस विहार का निर्माण परवर्ती होने के कारण इनसे भी निश्चित होताहै कि चीनी यात्रियों के यात्रा विवरणों में इसका कोई उल्लेख नही मिलता।

[2] *दीधनिकाय,* भाग दो, पृ. 141, 161 चीनी यात्री हेनसांग ने भी इसका उल्लेख किया है। देखें, सेमुअल बील, *बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड,* भाग–3, पृ 287।

प्रथम बार इसकी खुदाई एक राजकीय कर्मचारी ने कराई थी।[1] उत्खनन का द्वितीय चरण 1910 ई0 में हीरानन्द शास्त्री के निर्देशन में प्रारम्भ हुआ जिससे इसके वास्तविक स्वरूप का पता चला। 115 फुट व्यास में इसकी नींव थी और ऊपर 112 फुट व्यास का स्तूप बना था।[2] शास्त्री जी को 1.52 मीटर नीचे खोदने पर ईटों की एक दीवाल का पता चला। परन्तु इस भवन की तिथि के बारे में कुछ कह पाना आज सम्भव नही है।

श्री हीरानन्द शास्त्री को टीले के पूर्वी भाग के उत्खनन से एक बड़े स्तूप का अवशेष मिला था। उत्खनन से प्राप्त मौर्यकालीन ईटें इस स्तूप की प्राचीनता की परिचायक है। स्मरणीय है कि यह स्तूप भी कई बार बनाया गया। स्तूप के अवशिष्ट भाग से यह स्पष्ट होता है कि मुकुट बन्धन स्तूप शालवन के परिनिर्वाण स्तूप से अधिक विस्तृत था। इस स्तूप के चारो ओर अन्य छोटे स्तूप, मन्दिर तथा विहारों के अवशेष मिले है।

मुख्य स्तूप की भॉति यह चैत्य भी अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध था। संभवतः इसीलिए इस चैत्य के चारो ओर सहायक स्मारक बने हुए थे।

कुशीनगर से प्राप्त वस्तुएँ

यहां के खण्डहरों से प्राप्त बड़ी मात्रा में पत्थर, मिट्टी और धातु की मूर्तियाँ, सिक्के, मुहरें, विभिन्न प्रकार के पात्र, चित्रित प्रस्तर खण्ड, काष्ठ स्तम्भ, नक्काशीदार ईटें आदि प्राचीन कुशीनगर के महत्व के परिचायक है। यहॉ से प्राप्त मूर्तियों में अधिकांश मिट्टी तथा पाषाण की बनी हुई है। विभिन्न मूर्तियों मे बुद्ध तथा बोधिसत्व की प्रतिमाएँ प्रमुख है। एक मूर्ति माया देवी की और एक सारिपुत्र की है। इसके अतिरिक्त पौराणिक देवताओं, विष्णु, गरूड़, और गणेश आदि की भी प्रतिमाएँ मिली है लेकिन इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। इन मूर्तियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण

---

[1] *ए.एस.आई.आर.*,भाग–18 पृ. 75, इन्होने उल्लेख किया है कि इस उत्खनन में मृण्मूर्तियों के अलावा कुछ नही मिला था।

[2] देवला मित्रा, *बुद्धिस्ट मानुमेण्टस* (कलकत्ता, 1917), पृ. 71।

बुद्ध की परिनिर्वाण प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त श्याम रंग की प्रस्तर प्रतिमा भी मिली है जिसे अब 'माथा कुँवर' के नाम से जाना जाता है। यहां से प्राप्त मूर्तियों में कुछ लाल पत्थर की बनी हैं। सम्भवतः ये मूर्तियाँ मथुरा से लाकर यहॉ स्थापित की गई थी।

धातु तथा पाषाण के कुछ पात्र एवं अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी मिली है। परिनिर्वाण स्तूप से स्वर्ण, रजत, तथा ताम्र नलिकाएँ भी मिली है। जिसमें धातु खण्ड रखे गए थे। प्राप्त धातु पात्रों में लोटा, चम्मच, घण्टा, धूपदान आदि का मुख्य रूप से उल्लेख किया जा सकता है। एक 2.15 सेमी0 लम्बा चम्मच मिला हैं।[1] एक लोहे की कुल्हाडी भी मिली हैं। पत्थर की बनी वस्तुओं में चक्की तथा तश्तरी मुख्य हैं। मिट्टी की बनी हुई वस्तुओं की संख्या सर्वाधिक है। इनमें विभिन्न प्रकार के बर्तन (मनुष्य और पशु आकृतियों से चित्रित), दीपक, मिट्टी की गोलियाँ तथा मकराकृति वाला धूपदान उल्लेखनीय है।[2]

कुशीनगर से 995 मिट्टी की मुहरें भी मिली है। इनमें 314 अखण्डित तथा 581 खण्डित है। इनमें से अधिकांश मुहरें प्रमुख संघों की है। अन्य मुहरों का सम्बंध एरण्ड, विष्णुद्वीप तथा सारनाथ के विहारों से है। महापरिनिर्वाण तथा मुकुटबंधन विहारों की प्रारम्भिक मुद्राओं पर भिन्न भिन्न लेख तथा चित्र अंकित है । इन मुहरों में 250 मुहरें 720 ई0 की और 540 मुहरें 900 ई0 की है। इसके अतिरिक्त एक मुहर, जिस पर बुद्ध को दो साल वृक्षों के नीचे परिनिर्वाणावस्था में प्रदर्शित किया गया है, 400 ई0 की है।[3] इन विहारों से प्राप्त परवर्ती मुहरें जिस पर धर्मचक्र एवं हिरण के चिह्न अलंकृत है, सारनाथ से प्राप्त मुहरों से समानता लिए है। वस्तुतः यह सारनाथ का चिह्न था जिसे कालान्तर में अन्य संघारामों ने भी अपना लिया। एक अन्य मुहर पर

---

[1] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया* (वार्षिक रिपोर्ट) ,1906–7, पृ0 55।

[2] नलिनाथ दत्त और कृष्णदत्त बाजपेयी, *डेवलपमेंट ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश* (पब्लिकेशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956), प्रथम संस्करण, पृ. 364।

[3] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ् इण्डिया,* वार्षिक रिपोर्ट, 1906–7, पृ0. 58।

'आर्याष्ट वुद्धे' नामक लेख अंकित है। सम्भवतः यह उन आठ स्तूपों की तरफ संकेत करता है जिनमें बुद्ध के अस्थि अवशेष समाधिस्थ किए गए थे।[1]

कुशीनगर के अवशेषों में कुछ सिक्के भी उपलब्ध हुए है, परन्तु इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। पूर्ववर्ती सिक्कों में कुषाण शासक विम कडफिसेस के चार और कनिष्क प्रथम के आठ ताँबे के सिक्के मिले हैं। चंद्रगुप्त द्वितीय (400 ई0) का एक स्वर्ण सिक्का[2] क्षत्रप नरेश दामसेन और कुमारगुप्त प्रथम (मोर प्रकार) के रजत और जयगुप्त के ताँबे के सिक्कों का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जा सकता है। सिक्कों की अपेक्षा अभिलेखों की संख्या अधिक है। यद्यपि इन लेखों में तिथि–संवत् तो अंकित नही है, लेकिन लिपि वैभिन्य के आधार पर इन्हें विभिन्न कालों का माना जा सकता है। ये लेख मुद्राओं, मृण्मूर्तियों और ताम्रपत्रों पर अंकित है। बुद्ध के परिनिर्वाण प्रतिमा के लेख का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस प्रतिमा के निर्माता शिल्पी दिन्न का नाम एक अन्य मूर्ति के पादपीठ पर अंकित है। इसमें प्रतिमा का प्रतिष्ठापक सुवीर था।[3] जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ये मूर्तियॉ मथुरा शिल्प से समानता लिए हुए है।

यहाँ से प्राप्त अन्य वस्तुओं में कीमती पत्थर (मूंगा, मोती, माणिक, पन्ना) मनके, कौड़ियाँ तथा हाथी दाँत की मुहरें भी है, लेकिन इनकी संख्या अत्यल्प है। इस नगर के लम्बे इतिहास एवं महत्व को देखते हुए यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री अत्यंत कम है। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह है कि कुशीनगर के बौद्ध अवशेष किसी दुर्घटना के कारण आकस्मिक विनाश को नही प्राप्त हुए, बल्कि उनका धीरे–धीरे

---

[1] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ् इण्डिया,* वार्षिक रिपोर्ट, 1906–7, पृ0. 90य देबला मित्रा, *बुद्धिस्ट् मानुमेण्ट्स,* पादटिप्पणी, पृ. 69।

[2] यह सिक्का धनुर्धारी प्रकार का हैं जिसका वजन 120.5 ग्रेन है। देखें, बी0 ए0 स्मिथ, जे. आर.ए. सी. (1889), पृ0. 80 और 1893, पृ0 104।

[3] लेख इस प्रकार है – 'देयधर्मोय शाक्यभिक्षोभदन्त सुवीरस्य कृतिर्दिनस्य' देखें, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ् इण्डिया, 1906–7, पृ0. 49 यनलिनाक्ष दत्त एवं कृष्णदत्त बाजपेयी, *डेवलपमेण्ट् ऑफ बुद्धिज्म इन उत्तरप्रदेश,* पृ. 366।

विनाश हुआ और इस प्रकिया में यहां जो भी महत्वपूर्ण पुरावस्तुएँ रही वे अन्य लोगों द्वारा पहले ही हटा ली गयी और कालान्तर में यहाँ के अवशेष वनों से आच्छादित हो गए।[1]

कुशीनगर परिक्षेत्र से प्राप्त कुछ कलाकृतियॉ राजकीय बौद्ध संग्रहालय, कुशीनगर में सुरक्षित हैं। इनमें से कुषाणकालीन तीन स्तूप युक्त मिट्टी की मोहर (छायाचित्र संख्या–6), डिजाइनदार ठप्पा (छायाचित्र संख्या–7), ध्यानी बुद्ध से अंकित मुहर (छायाचित्र संख्या–8), तीन ईटों से निर्मित ध्यानी उपासक (छायाचित्र संख्या–9), काले पत्थर की सिररहित भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा (छाया चित्र संख्या–10), हस्ति एवं अश्व की मृण मूर्ति (छाया चित्र संख्या–11) तथा हारीति की मृण मूर्ति (छायाचित्र संख्या–12) प्रमुख है।

हारीती प्रधानतया बौद्ध देवी हैं, यद्यपि हिन्दू ग्रंथों में षष्ठी या भद्रा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हारीती से सम्बन्धित कथानक रत्नकूट में मिलता हैं। यक्षी के रूप में जन्म लेने से पूर्व वह राजगृह में एक चरवाहे की पत्नी थी। एक बार गर्भावस्था के समय उसे बलपूर्वक एक उत्सव में नृत्य करने को कहा गया जिससे उसका गर्भपात हो गया। फलतः उसने ये प्रतिज्ञा ली कि वह राजगृह के समस्त बच्चों का भक्षण करेगी।

विनयपिटक (सर्वास्तिवाद शाखा) के चीनी अनुवाद के अनुसार उसने राजगृह में हुआंशी (संस्कृत नन्दा या नन्दिनी) के नाम से पुनर्जन्म लिया तथा 500 बच्चों की माँ बनी। किन्तु पूर्वजन्म में ली गई प्रतिज्ञा के अनुसार उसने राजगृह के बच्चों को चुराना एवं खाना प्रारम्भ किया। बच्चों को हरण करने, चुराने के कारण उसका नाम ष्हारीतीष पड़ा। राजगृह के निवासी भगवान बुद्ध की शरण में गये। भगवान बुद्ध ने उसके सबसे छोटें सर्वप्रिय पुत्र जिसका नाम संयुक्तरत्न सूत्र में पिंगल तथा क्षेमेन्द्र कृत बोधिसत्वावदानकल्पलता में प्रियंकर मिलता हैं, को छिपा दिया। हारीती

---

[1] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* (वार्षिक रिपोर्ट), 1904–5, पृ. 45 य तत्रैव, 1910–11, पृ0. 68–69।

अपने शिशु को ढूँढती हुई बुद्ध के पास गयी। बुद्ध ने उसे अहिंसा एवं प्रेम की शिक्षा दी। इससे प्रभावित होकर हारीती बच्चों से प्रेम करने लगी। अब वह बौद्ध धर्म के सॉचे में ढलकर वह शिवात्मक बन गई और मगध से गंधार तक बच्चों की रक्षक देवी के रूप में वह सर्वत्र फैल गयी। इसी कथानक के आधार को लेकर चीनी यात्री ईत्सिंग ने हारीती की प्रतिमा राजगृह के भोजनालय तथा मठ में देखी थी, ऐसा वर्णन मिलता हैं। कौशाम्बी, मथुरा, सॉची एवं अमरावती से हारीती की अतीव सुन्दर मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

कुशीनगर के कुछ दुर्लभ कलाकृतियों की छाया प्रति भिक्षु बुद्धमित्र जो वहाँ के स्थानीय निवासी है, से प्राप्त हुई है इनमें महापरिनिर्वाण विहार अभिलिखित मुहर जिसमें दो हिरणों के बीच धम्म चक अंकित है (छायाचित्र संख्या–13), मुकुट बन्धन विहार अभिलिखित मुँहर जिसमें शीर्ष पर बुद्ध की चिता को जलते हुए तथा बीच में महाकश्यप को प्रार्थना करते हुए दिखाया गया है (छायाचित्र संख्या–14), तथा एक मृण्मूर्ति फलक जिसमें दासियों को देवी की सेवा करते दिखाया गया है (छायाचित्र संख्या–15) प्रमुख है।

कुशीनगर जनपद की कुछ कलाकृतियाँ उत्तर प्रदेश राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित है जिसमें मिट्टी के एक फलक पर बुद्ध के जन्म का दृश्य अत्यन्त मनोहारी है जो गुप्तकाल से संम्बन्धित है (छायाचित्र संख्या–16)।

2. फाजिलगर–सठियाव[1]

कसया से दक्षिण पूर्व 18 किमी0 पूर्व कसया तमकुही मार्ग के किनारे स्थित फाजिलनगर–सठियाँव के टीले उन्नीसवीं शती से पुरातत्वज्ञों एवं इतिहासकारों

---

[1] फाजिलनगर सठियाँव के उत्खनन तथा उनसे प्राप्त पुरा सामग्रियों की समस्त जानकारी–*हिस्ट्री एंड अर्कियोलॉजी,* 1980, डिपार्टमेंट ऑफ ऐंश्येण्ट हिस्ट्री कल्चर एंड आर्कियोलाजी, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, वाल्यूम 1, नं0 1–2, पृ0 333–37; *पूर्वान्चल की पुरा सम्पदा,*उत्तर प्रदेश राज्य, पुरातत्व संगठन, लखनऊ, 1979 (पुरातात्विक सामग्रियों पर कुशीनगर में आयोजित प्रदर्शनी के अवसर पर प्रकाशित पत्रं); *फाजिलनगर –सठियॉव, उत्खनन (संक्षिप्त परिचय)* प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर पर आधारित है।

को आकृष्ट करते रहे है। जैन तथा बौद्ध वांग्मय के साक्ष्यों से पूर्णया ज्ञात है कि 'पावा' महावीर और बुद्ध दोनों से ही सम्बद्ध रही है। बौद्ध ग्रन्थ परिनिर्वाण सूत्र में लिखा है कि अपने निर्वाण के पूर्व वर्तमान वैशाली जिले के बसाढ़ (विहार) से कुशीनगर आते समय भगवन बुद्ध का अंतिम पडाव पावा में हुआ था और यहॉ चुन्द कर्मारपुत्र के यहॉ उन्होने अंतिम भोजन किया था।[1] चौबीसवें तीर्थकर भगवान महावीर का निर्वाण मल्लों की राजधानी पावा में ही हुआ था।[2] अपनी गणतांत्रिक प्रशासनिक पद्धति, कला संस्कृति एवं आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से भारतीय इतिहास एवं सस्कृति में पावा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पावा की प्राचीनता, भौगोलिक स्थिति तथा महावीर के निर्वाण भूमि आदि के विषय में अद्यावधि इतिहासकार एवं पुरातत्वविद् सर्वसमत निर्णय पर नही पहुँच सके हैं। प्राचीन भारत के षोड्श महाजनपदों में मल्ल महाजनपद की दो राजधानियॉ कुशीनगर एवं पावा का साहित्यिक विवरण प्राप्त होते है।[3] कुशीनगर का अभिज्ञान पुरातत्वविदों के द्वारा कर ली गई है। किन्तु पावा के पुरातात्विक अभिज्ञान की समस्या का समाधान शेष है।

सर्वप्रथम ए0 सी0 एल0 कार्लाइल ने 1876 ई0 मे फाजिलनगर–सठियाँव के टीले के साथ–साथ दूसरे समीपवर्ती प्राचीन स्थलों का निरीक्षण किया तथा वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि फाजिलनगर–सठियाँव के टीले ही प्राचीन पावा के अवशेष है।[4] डा0 राजबली पाण्डेय[5] विमल चरणलाहा, भिक्षु धर्मरक्षित[6], प्रो0 योगेन्द्र मिश्र[7], विजयेन्द्र सूरी आदि इतिहासकारों ने इसका समर्थन किया है। यद्यपि कि बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित कुशीनगर से पावा की दूरी और दिशा से कार्लाइल के मत की पुष्टि अवश्य

---

[1] *महापरिनिब्बानसुत्त* ।

[2] भद्रबाहु, *कल्पसूत्र,* सूत्र संख्या 121,122,123।

[3] *अंगुतर निकाय,* भाग 1, पृ0 213।

[4] कार्लाइल, ए0 सी0 एल0, *ए0 एस0 आई0 आर0,* 1877–78–79–80 वालयूम 22, पृ0 30–31,वाराणसी, 1966।

[5] पाण्डेय, राजबली, *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास,* 1946, पृ0 78।

[6] भिक्षु धर्मरक्षित, *कुशीनगर का इतिहास,* पृ0 24–26।

[7] मिश्र, योगेन्द्र, *प्राचीन पावा,* पृ0 17,45, गोरखपुर 1973।

होती है परन्तु इस सम्बंध में अंतिम निर्णय हेतु पुरातात्विक साक्ष्यों का अन्वेषण आवश्यक है। इसी उद्देश्य से फाजिलनगर–सठियॉव के टीले में दबे अवशेषों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वर्ष 1979–80 में उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व संगठन तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एंव पुरातत्व विभाग के संयुक्त तत्वाधान में फाजिलनगर–सठियॉव का उत्खनन किया गया।[1]

कार्लाइल के मतानुसार सठियॉव का टीला पावा के एक नगर को सूचित करता है, जबकि फाजिलनगर जो इससे उत्तर पूर्व मे अधिकतम आधा किमी0 की दूरी पर स्थित है स्तूप का स्थल था, जो मल्लों द्वारा बुद्ध के अस्थि अवशेष के एक भाग पर बनवाया गया था।[2] सठियाँव टीले के थोड़े से दक्षिणी–पूर्वी भाग को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भाग पर गाँव बसा है। गाँव के चतुर्दिक बडी संख्या में वलय कूप है। गाँव के सम्पूर्ण धरातल पर पक्की ईटों की दीवरें मिलती है। गाँव के चतुर्दिक नीची भूमि सूचित करती है कि यह स्थल चारों ओर से तालाब से घिरा हुआ था। वर्तमान में दो बारहमासी बड़े तालाब अस्तित्व में है। एक उत्तर–पश्चिम तथा दूसरा दक्षिण में है।

फाजिलनगर का टीला संभवतः प्राचीन सठियॉव के स्थल का एक भाग है। टीले की ऊँचाई घिरे हुए सतह से लगभग 9 मीटर तथा पूरब पश्चिम एवं उत्तर दक्षिण दिशा में प्रसार कमशः 120 मीटर एवं 80 मैटर है। वस्तुतः यहॉ एक दूसरे से जुड़े दो टीले स्थित है जिनमें से एक नीचा और दूसरा ऊँचा है। उत्तर पूर्व में स्थित नीचले टीले पर एक मजार निर्मित है, जिसे लोग 'सइदन' बाबा का मजार कहते है। दूसरा ऊँचा टीला पश्चिम में स्थित है। प्रकृति और मनुष्य दोनों के हाथों इसका क्षरण हो रहा है। टीले से मिट्टी खोदने के अतिरिक्त इसका उपयोग खलिहान के रूप में किया जा रहा है। टीले का उत्तरी भाग प्रतिवर्ष खलिहान बनाने के लिए काटा जाता

---

[1] चतुर्वेदी, एस0 एन0, *एक्सकेवेशन एट सठियांव फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया (सम्प्रति कुशीनगर) हिस्ट्री एंड आर्कियोलाजी*, 1980, वाल्यूम 1, नं0 1–2 पृ0 333–337।

[2] कार्लाइल, ए0 सी0 एल0, *आर्कियोलाजी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट*, 1875–76 एंड 76–77, वाल्यूम 18, पृ0 102।

है। पश्चिमी भाग मिट्टी निकाले जाने के कारण सीधी दीवार की तरह खडा है। दक्षिणी भाग आवास गृहों के नीचे दब गया है। वर्षा का जल दूसरे किनारों को काटता रहा है, किन्तु अभी इसका मुख्य भाग सुरक्षित है। सम्पूर्ण टीला ईटों से पटा है जिसके ऊपर घास उग आए है।

सठियाँव:

उत्खनन मुख्यतः फाजिलनगर टीले का ही किया गया, साथ ही सांस्कृतिक रूप के अध्ययन हेतु सठियाँव ग्राम में एक खाद के गढ़े की सफाई भी की गयी। इसमें मौर्य युग की पक्की ईटों से निर्मित दीवारों के अवशेष प्रकाश में आए है। ईटों की माप 40×26×6 सेमी0 थी। इस गढ़े के स्तरों में लाल रंग के बर्तन, कृष्ण लेपित, मृदभाण्ड के कुछ टुकडे तथा उत्तरीकाले चमकदार पालिश वाले मृदभाण्ड (एन0 बी0 पी0 वेयर) के अवशेष भी प्राप्त हुए। इतना ही नही सठियाँव से प्राप्त काले और लाल रंग के मृदभाण्डों (ब्लैक एंड रेड वेयर) के टुकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्य काल से पूर्व भी यहाँ आबादी थी। यहाँ से प्राप्त अन्य पुरावशेषों में मिट्टी की एक मूर्ति (छायाचित्र संख्या–17), मनके, एक टूटी, हुई सीलिंग, तथा कुछ लौह वस्तुएँ शामिल है। नारी के धड़ के ऊपर का हिस्सा ही अवशेष बचा है मृण्मूर्ति अत्यंत मनमोहक है । केश राशि तथा भौहों को उत्कीर्ण करके सजाया गया है। सभी पुरासामग्रियाँ गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

फाजिलनगर :

फाजिलनगर के ऊँचे टीले के शीर्ष भाग तथा उसके उत्तरी ढाल के उत्खनन में धरातल से कुछ ही सेमी नीचे अनेक प्राचीन वास्तु–अवशेष की संरचनाए प्रकाश में आयी है। सीमित उत्खनन के कारण भवन संरचना की पूर्ण रूपेण योजना स्पष्ट नहीं हो सकी है तथापि संरचनाओं को दो कालों में बाँटा जा सकता है जिनमें प्रासंगिक संरचनाएँ गुप्तकाल से तथा बाद की संरचना मध्यकालीन है।

गुप्तकालीन संरचना एवं उनसे प्राप्त पुरावशेष :

टीले के उत्खनन से विदित होता है कि प्रायः 1500 वर्ष पूर्व यहां लगभग 4 मीटर ऊँचा बालू का टीला था जिसके उपर सर्वप्रथम गुप्तकाल में विशेष प्रकार की बस्ती का निर्माण हुआ जिसे 'अग्रहार' कहा जाता था। इसकी पुष्टि यहां से प्राप्त एक मुहर पर अंकित है, 'श्रेष्ठिग्रामाग्रहारस्य' लेख से होती है।

उत्खनन में अग्रहार के उत्तरी सुरक्षा दीवार के खण्डित अवशेष प्राप्त हुए है जिसकी लम्बाई 40 मीटर से अधिक थी। इसके उत्तर की ओर लगभग 1.50 मीटर चौड़ा प्रवेश द्वार था। टीले के शीर्ष भाग पे पुर्वी किनारे उत्तर से दक्षिण एक विशाल दीवार मिली है, जिसके उपरी रद्दों में गढी हुयी ईटों (मोल्डेड ब्रीक) का उपयोग किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थल के प्रमुख गुप्त कालीन भवन की मुख्य दीवार है जो लगभग वर्गाकार था। इस भवन की पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी दीवारों के अवशेष भी मिले हैं, जिनसे लगभग 1 मीटर बाहर की ओर उसे घेरती हुयी एक अन्य दीवार है। इस संरचना के उत्तर–पश्चिमी कोने पर इससे पूर्व स्थित एक भवन का स्तम्भ मात्र मिला है जिसमें गढी हुयी ईटों का प्रयोग हुआ है। स्तम्भ से सटी हुयी ईटों की सीढी पश्चिम की ओर जाती है। सीढ़ी में ऊपर से नीचे तक दरार है। सम्भवतः भूकम्प के कारण इस बस्ती का विनाश हुआ।

उत्खनित क्षेत्र की संरचनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण टीले के शीर्ष भाग पर एक बड़े आयताकार चबूतरे का अवशेष है जिसके निचले आधार की माप 14.40 × 17.80 मीटर हैं। चबूतरे से अन्य आश्रित दीवारें (रिटेनिंग वाल्स) भी सम्बद्ध है। चबुतरे का पूर्वी दीवार जिसकी चौड़ाई एक मीटर हैं, पूरी तरह सुरक्षित है।

टीले के उत्तरी ढाल पर गुप्त कालीन भवनों के अनेक अवशेष प्राप्त हुए है जिनमे से अधिकंश क्षतिग्रस्त हो चुके है। इनमें से ढाल के पूर्वी सिरे पर स्थित एक आयाताकर संरचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसकी लम्बाई उत्तर–दक्षिण दिशा में 5.10 मीटर तथा पूर्व–पश्चिम दिशा में 3.5 मीटर है। दीवार की चौड़ाई 75 सेमी. है। इस संरचना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता इसके पश्चिमी दीवार की अन्दर की ओर एक छोटा चबुतरा (90 सेमी. × 65 सेमी.) है। यह चारो ओर से एक दीवार से घिरा

हुआ है, जो इसके चतुर्दिक एक मार्ग बनाते है। सम्पूर्ण संरचना मंदिर के आकार की प्रतीत होती है। उत्तरी ढाल के नीचले भाग में पूर्व–पश्चिम की ओर 19 मी. लम्बी ईटों की दीवार के अवशेष भी मिले है। ढाल के पश्चिमी सिरे पर दीवार से सटा हुआ ईटों का फर्श है जिस पर गुप्त कालीन मिट्टी की मुद्राएं मिली है।

उत्तरी ढाल पर एक अन्य विलक्षण संरचना भी प्रकाश में आयी है। यहाँ एक विशाल वृत्ताकार चबूतरे का अवशेष दिखाई देता है। इसके मध्य भाग में ईटों से निर्मित वर्गाकार (2 ×2 मी0) कुंड जैसी संरचना है। कुंड की चारों दीवारे अन्दर की ओर उन्नत्तोदर है, जिसके कारण वे कोनो पर समकोण नही बनाती है। इसकी खुदाई 3 मीटर नीचे तक की गयी थी जिसमें राख एवं मिट्टी भरी हुयी थी। वर्तमान अवस्था में इस संरचना के प्रयोजन के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना उचित नही होगा। सम्भव है यह यज्ञ–कुंड रहा हो। इस कुंडाकार संरचना में मिट्टी के बर्तन के अतिरिक्त अनेक उल्लेखनीय पुरावशेष यथा – लोहे के उपकरण, मिट्टी एवं हाथी दाँत की बनी चुडियाँ, मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी की गोलियाँ, शीशे एवं पत्थर के मनके तथा मिट्टी की मुद्राएँ एवं मुद्रा छाप भी प्राप्त हुए है।

यहाँ से अधिकांश पुरा सामग्रियाँ ईटों से घिरी संरचनाओं से मिली है। थोड़ी बहुत उपरी सतह से भी मिली है। वे सभी गुप्त काल से सम्बन्धित है। यहाँ से प्राप्त पुरा समाग्रियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मृण्मूर्तियाँ, मुद्रा एवं मुद्राछाप है।

यहाँ से बड़ी संख्या में मृण्मूर्तियाँ मिली है, जिसमें पुरूष, स्त्री एवं जानवरों की मूर्तियाँ शामिल है। ये साँचे में ढाल कर बनायी गयी हैं। मूर्तियाँ आकार में छोटी है, परन्तु इनमें गुप्तकालीन शैली का सौन्दर्य पूर्ण रूप से उपस्थित है। स्त्री मूर्तियों के सुपुष्ट अंग आदर्श अनुपात में बनाये गये है। उनके शरीर पर अल्प किन्तु सुरूचि पूर्ण आभूषण है। आधिकांश मूर्तियों की बायी भुजा कटि पर स्थित है और दाहिनी भुजा लटकती हुयी दिखायी गयी है। उनकी केश सज्जा में विविधता दिखाई पड़ती है (छायचित्र संख्या–18)। यहां से प्राप्त जानवर मूर्तियों में सवार के साथ घोड़े की मूर्ति का उल्लेख किया जा सकता है। घोड़े को गत्यावस्था में दिखाया गया है।

इस स्थल से मिट्टी की दश मुद्राएँ प्राप्त हुयी है। इन सभी पर पॉचवी शताब्दी ई0 की गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में लेख अंकित है। एक मुहर पर 'श्रेष्ठिग्रामाग्रहारस्य' लेख अंकित है (छायाचित्र संख्या–19)। इस लेख के ठीक उपर सर्प की आकृति बनी हुयी है । सम्भवतः एक ओर मुहर को निर्गत करने वाले व्यक्ति का नाम भी अंकित है। इस लेख से दो महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। पहला यह कि पॉचवी शताब्दी ई0 में फाजिलनगर से लगे ग्राम सठियॉव का नाम श्रेष्ठिग्राम था। दूसरा वर्तमान फाजिलनगर स्वयं श्रेष्ठिग्राम के एक अग्रहार के रूप में प्रतिष्ठित था। अग्रहार एक विशेष प्रकार का सन्निवेश था, जो राज्य की ओर से विद्वान ब्राह्मणों को उपहार स्वरूप दिया जाता था और यह कर मुक्त होता था। ये अग्रहार धीरे–धीरे शिक्षा केन्द्र के रूप में परिणत हो गये। अतः उपर्युक्त लेख से यह प्रकट होता है कि गुप्तकाल में यह स्थल एक शिक्षा का केन्द्र बन गया था जहॉ विद्वान लोग निवास करते थे।

इस केन्द्र की महत्ता इस तथ्य से भी प्रकट होती है कि यहॉ अन्य स्थानों की मुद्राएँ भी प्राप्त हुयी है, जिनका उपयोग ताड़–पत्रों को सील बन्द करने के लिए किया गया था। इनमें एक मुद्रा पर चतुर्मुख ब्राह्मा की अत्यन्त सुन्दर आकृति है जिसके नीचे 'ग्रेषूदक चातुविदय' लेख अंकित है। यह मुद्रा किसी ऐसे केन्द्र से यहाँ भेजी गयी थी, जहॉ चारों वेदों का अध्ययन किया जाता था।

मध्यकालीन संरचना एवं प्राप्त पुरावशेष

मध्य युग में टीले के शीर्ष भाग पर अनेक निर्माण हुआ जिनमें पूर्वर्ती ईटों का प्रयोग किया गया था। यहाँ से पुरानी ईटों से निर्मित एक छोटे किले के अवशेष मिले है। यह मध्यकालीन अवशेष लगभग नष्ट हो चुका है, फिर भी कुछ दीवारें बची है। टीले के उत्तर–पूर्व तथा दक्षिण–पूर्व किनारे पर स्थित बुर्ज के आकार की गोलाकार संरचना से यह विदित होता है कि इसका निर्माण गढ़ी के रूप में किया गया था। इसके चारों कोनों पर बुर्ज बने हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य काल के दौरान मुस्लिम आक्रमणकारी सेना ने इस टीले पर कब्जा कर लिया था और उन्ही के अधीन टीले के शीर्ष भाग पर छोटे से किले का निर्माण हुआ था।

इस काल के स्तरों में काचित बर्तन (ग्लेज्ड वेयर) तथा इब्राहिमशाह शर्की एवं खिलजियों के सिक्कों के अतिरिक्त लोहे की अनेक वस्तुऍ प्राप्त हुयी है। इन वस्तुओ में तीर के फलक विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इससे विदित होता है कि मध्य काल में यह स्थल संघर्ष का केन्द्र रहा।

इस प्रकार फाजिलनगर–सठियॉव के सीमित उत्खनन से इस स्थल के गौरवशाली अतीत का मात्र एक अंश ही प्रकाश में आया है। भविष्य के उत्खनन से भूगर्भ में छिपे इतिहास के पृष्ठ उजागर होने और प्राचीन पावा की समस्या का समाधान मिलने की पूरी सम्भावना है।

3. वीरभारी (उस्मानपुर डीह)

स्थानीय स्तर पर वीरभारी नाम से जाना जाने वाला यह टीला उस्मानपुर ग्राम का एक भाग है जो कुशीनगर से 20 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा कसया–फाजिलनगर मार्ग पर फाजिलनगर से लगभग 9 किमी. दक्षिण में फाजिल नगर बघौच घाट सडक के किनारे लगभग 1 किमी. की दूरी पर यह टीला कुल 40 एकड क्षेत्र में फैला हुआ है तथा पूर्णतया छोटे–छोटे वृक्षों से आच्छादित है। टीला पूर्णतया समतल हैं इसका कुछ भाग खेतों में परिवर्तित हो चुका है तथा किंचित भू–भाग पर आवास खड़े है। यहां के खेतों में दूर–दूर तक पुरावशेष बिखरे पड़े है। मुख्य टीले से हट कर दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम में भी अवशेष देखने को मिलते है। इसका सम्पूर्ण परिक्षेत्र किसी महत्वपूर्ण नगर के अति विकसित अवस्था में होने का आभास देता है।

सर्वप्रथम सन् 1962–63 ई0 में उस्मानपुर डीह का सर्वेक्षण हुआ था और वहां से सुरक्षात्मक दीवारें मिली थी।[1] महावीर की निर्वाण–स्थली पावा के अभिधान के सम्बन्ध में शिकागों एवं लन्दन से प्रकाशित 'ए हिस्टारिकल एटलस ऑफ साउथ एशिया'[2] में फाजिलनगर परिक्षेत्र के निकट पावा अंकित है। इसी आधार पर भारतीय

---

[1] *इंण्डियन आर्कियोलाजी–ए रिव्यू,* 1962–63, नई दिल्ली, 1965, पृष्ठ 33।

[2] सम्पा0 पाल विटले, *ए हिस्टारिकल एटलस ऑफ साउथ एशिया,* शिकागों एण्ड लन्दन, 1978।

पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने सन् 1973–74 ई0 में के0एम0 श्रीवास्तव के निर्देशन में एक संक्षिप्त ट्रायल टेचिंग के द्वारा उस्मानपुर में उत्खनन कराया जहाँ से कुछ मिट्टी की मुद्राछापे मिली थी। उनमें से दो पर पहली–दूसरी शताब्दी की ब्राह्मी में लेख अंकित था।[1] अभी तक उत्खनन का न तो विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ हैं और न ही किसी महत्वपूर्ण उपलब्धि का ज्ञान पुरातत्व जगत को है।

वीरभारी टीले का पावा होने के सन्दर्भ में सन् 1997 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृत विभाग द्वारा प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी के निर्देशन में उत्खनन कराया गया। सीमित समय एवं संसाधनों के अभाव के कारण मात्र दो ही खात लगाया जा सका जो कमशः डी–2 एवं डी–15 के नाम से जाना जाता है। डी$_2$ 2.5×3 मी0 तथा डी$_{15}$ 5×5 मी0 का था।

डी$_2$ में 2.7 मी0 की गहराई तक खुदाई हुयी जिसमें कुल 9 संस्तर प्राप्त हुए। इसके उपरी संस्तर से कुषाणकालीन पक्की ईटों से बने भवनों के अवशेष प्राप्त हुए। पाँचवे–छठे संस्तर में कोयले एवं राख तथा जले हुए ईटों के टुकडे प्राप्त हुए। सबसे नीचला संस्तर पीले रंग के मिट्टी का मिला जिस पर समस्त सन्निवेश आधृत थे। इन खातों में दो भवनों के तीन बार गिरने तथा पुनः निर्मित होने के प्रमाण प्रकाश में आये। तीनों बार यह घटना कुषाण काल में ही घटित प्रतीत होता है। सभी निर्माण कुषाण काल में ही हुए प्रतीत होते है जिसमें विशेष उल्लेखनीय एक कुआँ है। यहाँ से गुप्तकालीन अलंकृत ईंटो के टुकड़े भी मिले है जो गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में सुरक्षित है (छायाचित्र संख्या–20)।

डी–15 के उत्खनन से तीन निर्माण कालों के प्रमाण प्रकाश में आये जो स्तर– अध्ययन, ईंटो के नाप तथा प्राप्त मृद्भाण्डों के आकार–प्रकार के आधार पर कुषाण कालीन प्रतीत होते है। इसमें लगभग 1.35 मीटर के मोटाई के संस्तर में मानव सन्निवेश के प्रमाण प्राप्त हुए। डी2 की तरह इस काल के नीचले स्तरों से एन0बी0पी0 मृद्भाण्ड की तरह का कोई मृद्भाण्ड तो नही मिला, परन्तु कुषाण, शक तथा पह्लव कालीन मिट्टी की मूर्तियाँ (छायाचित्र संख्या–21), मिट्टी के फ्लेश रबर, लोढे, मनके,

---

[1] *इण्डियन आर्क्योलाजी ए रिव्यू,* 1973–74, नई दिल्ली 1979, पृष्ठ 30।

पहिए, बाट तथा शीशे के चूडियों के टुकडे प्राप्त हुए थे। कुछ लौह निर्मित वस्तुएँ भी मिली थी। सभी पुरासामग्रियॉ गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के संग्रहालय में सुरक्षित है।

इस उत्खनन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कुषाणकालीन सड़क के अवशेष है जो सम्भवतः वीरभारी टीले से कुशीनगर की दिशा में घोड़धाप तक जाती थी। पक्की ईटों से निर्मित यह सड़क लगभग पॉच मीटर चौड़ी थी।

उत्खनन के दौरान ही वीरभारी टीले से 2 किमी. दक्षिण–पश्चिम स्थित ग्राम सुमही बुजुर्ग में एक ईटों से निर्मित लगभग गोलाकार टीला प्रकाश में आया। टीलें की सफाई करने पर वह ईंट निर्मित एक वर्गाकार स्तूप निकला जिसका अवशेष अब भी देखा जा सकता है। स्तूप से कुछ दूरी पर इसके चतुर्दिक समकालीन एक चौडी दीवार बनायी गयी थी। दीवार और स्तूप के बीच बाहर से बलुई मिट्टी लाकर भरा गया था। दीवार तथा स्तूप का संबन्ध जानने के लिए पश्चिम की ओर एक मीटर चौडाई का एक खात लगाया गया। दीवार तथा स्तूप के निर्माण के लिए प्रयुक्त ईंटो का आकार–प्रकार एक जैसा निकला। सम्भवतः यह प्रदक्षिणा पथ रहा होगा। ठीक इसी तरह का स्तूप कुशीनगर में मुख्य स्तूप के समक्ष निर्मित है।[1]

इस प्रकार वीरभारी के उत्खनन से पावा के पहचान की समस्या का समाधान नहीं हो सका। शोधार्थी को एक स्थानीय नागरीक[2] द्वारा वीरभारी टीले के सतह से संकलित एन0बी0पी0 मृद्भाण्ड, काले और लाल मृद्भाण्ड, मौर्य कुषाण एवं गुप्त काल से सम्बन्धित मृण्मूर्तियाँ, कुषाण कालीन मुद्राएँ तथा लेखयुक्त मोहरें देखने को मिला जो इस बात का प्रमाण है कि पावा की स्थित इसी टीले के चतुर्दिक कही होनी चाहिए। सतह से प्राप्त प्रचूर मात्रा में कुषाण कालीन सिक्के, मृण्मूर्तियाँ तथा समकालीन सड़क के प्राप्त अवशेषों से यह स्पष्ट है कि यहाँ कुषाण कालीन एक समृद्ध नगर सन्निवेश था। यह नगर एकाएक विकसित नही हुआ होगा, अपितु इसका

---

[1] त्रिपाठी, डी0एन0, अप्रकाशित रिपोर्ट : *वीरभारी (उस्मानपुर डीह) टीले का उत्खनन।*

[2] डा0 श्याम सुन्दर सिंह उस्मानपुर से सटे ग्राम दर्जियां के निवासी है तथा वास्तविक पावा की पहचान हेतु इस क्षेत्र पर कार्य कर रहे है।

पूर्व इतिहास रहा होगा, जिसकी सम्पूर्ण जानकारी के लिए एक विस्तृत उत्खनन की अपेक्षा है।

4. पडरौना

पडरौना नगर पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद के उत्तरी–पूर्वी कोने पर 26^0 54′ उत्तरी अक्षांश और $83^0$59′ पूर्वी देशांतर पर हिमालय की तराई में गण्डक से 12 मील तथा गण्डक की शाखा बाँसी नदी से 5 मील की दूरी पर दक्षिण में स्थित है। पडरौना सदर तहसील का मुख्यालय है। यह कसया से लगभग 18 किमी0 उत्तर दिशा में स्थित है।

डा0 बुकानन[1] पहले व्यक्ति थे जिन्होनें बौद्ध साहित्य में वर्णित दिशा में एवं दूरी के आधार पर सन् 1814 ई0 में इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया था और पडरौना के उपनगर छावनी के निकट स्थित प्राचीन टीले का उत्खनन करवाया था। बुकनन ने वहाँ तीन मूर्तियाँ देखी थी और उनका रेखांकन किया था, जो ईस्टर्न इण्डिया[2] में प्रकाशित है। पहली सिररहित खड़ी पाषाण प्रतिमा है। इस विशाल प्रतिमा को के0 डी0 बाजपेयी[3] बुद्ध की प्रतिमा मानते है जिसके दोनों तरफ कई छोटी–छोटी प्रतिमाएँ तथा सहायकों की प्रतिमाएँ दृष्टिगोचर होती है। दूसरी तीन छत्रधारी पाषाण प्रतिमा नग्न है जो पद्मासन मुद्रा में ध्यानावस्थित है। बाजपेयी इसे जैन तीर्थंकर की मूर्ति मानते है,[4] जिसकी पूजा आज भी स्थानीय लोगों द्वारा हट्ठी भवानी के रूप में की जाती है। बुकनन ने इसे बुद्ध प्रतिमा माना है।[5] विद्वान इसे पालयुगीन मानते है। तीसरी मूर्ति पादपीठ पर स्थित चतुर्भुज भगवान विष्णु की खड़ी प्रतिमा है। बुकनन ने इस टीले के अंदर मन्दिर या स्तूप होने की संभावना व्यक्त की थी।

---

[1] मार्टिन, माण्टगोमरी, *द हिस्ट्री, एन्टीक्विटीज, टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया,* वाल्यूम–2, पृ0 354–357, दिल्ली,1976।

[2] तदैव, पृ0 382–383।

[3] बाजपेयी, के0 डी0, *लोकेशन ऑफ पावा, पुरातत्व,* पृ0 43।

[4] तदैव।

[5] मार्टिन मांटगोमरी, पूर्वोद्धत, पृ0 382–383।

बुकनन की रिपोर्ट[1] से प्रेरित होकर कनिंघम[2] ने सन् 1861 ई0 में इस क्षेत्र का सर्वेक्षण कर उक्त टीले का उत्खनन करवाया तथा पडरौना को प्राचीन पावा के साथ समीकृत किया। उत्खनन के समय कनिंघम को अनेक मूर्तियॉ एवं कलाकृतियॉ प्राप्त हुई थी। उत्खनन एवं निरीक्षण के आधार कनिंघम ने संभावना व्यक्त की है कि इस टीले पर बौद्ध विहार निर्मित रहा होगा।[3] विहार में 100 वर्ग फीट क्षे0 वाले आँगन के चारो ओर आवासीय कमरे रहे होगे। कमरों के मध्य आँगन में स्तूप अथवा मन्दिर रहा होंगा। गोरख्पुर जनपद के गजेटियर्स[4] में भी संभावना व्यक्त की गई है कि टीले पर एक बौद्ध विहार होना चाहिए और उसके मध्य में प्रमुख स्तूप होना चाहिए। कनिंघम के अनुसार टीले से प्राप्त गोल किनारे वाली ईटें बोधगया के प्रसिद्ध विशाल मन्दिर तथा गिर्यक के स्तूपों में प्रयुक्त ईटों के समान थी। कनिंघम ने ईटों के आकार के आधार पर यहॉ 30 फीट एवं 9 फीट परिधि वालें दो स्तूपों के होने की संभावना व्यक्त की थी।[5] उत्खनन में उन्हें एक खुरदुरा बलुआ पत्थर का आधार स्तंभ भी प्राप्त हुआ था जो 8 इंच वर्गाकार तथा 6.5 इंच ऊॅचा था जिसके ऊपरी किनारे पर सादी कलात्मक धारियाँ बनी हुई थी। इसके अतिरिक्त उन्हें और भी अनेक कलाकृतियॉ एवं बौद्ध मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी।[6] इसके बाद कार्लाइल और फ्यूहरर ने इस जनपद का सर्वेक्षण किया तथा पडरौना से प्राप्त अवशेषों का उल्लेख किया।

सन् 1952 ई0 में के0 डी0 बाजपेयी द्वारा पुरातत्व अधिकारी, उत्तर प्रदेश के रूप में पडरौना सहित जनपद के अनेक पुरास्थलों का सर्वेक्षण किया गया। उन्होंने कनिंघम के इस मत को सही ठहराया कि वर्तमान पडरौना ही मल्लों की

---

[1] तदैव, पृ0 356।

[2] कनिंघम, ए0, *द ऐन्शेयण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया,* वाराणसी 1975, पृ0 476; ए0 एस0 आई0 आर0 खण्ड 1, 1861–62, पृ0 74–75।

[3] *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट,* 1862–63, खण्ड 1, पृ0 74–75।

[4] *डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर,* खण्ड 31, पृ0 279–289।

[5] कनिंघम, *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट,* 1862–63, खण्ड 1, पृ0 74–75।

[6] कनिंघम, ए0, *ऐंश्येण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया,* पृ0 366।

राजधानी पावा है।[1] बाजपेयी द्वारा छावनी के टीले का पुर्नसर्वेक्षण अक्टूबर 1985 में किया गया। उन्होंने इस स्थल से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियों, ईटों तथा बर्तनों को देखा। मूर्तियॉ जैन, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म से सम्बंधित थी जो सामान्यतः प्रारम्भिक मध्यकालीन थी। उन्होने एक शुगकालीन प्रस्तर मूर्ति का भी उल्लेख किया है।[2]

सन् 1985 ई0 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के डा0 अरूण कुमार के निर्देशन में जनवरी से मार्च तक उक्त टीले का उत्खनन किया गया। उत्खनन से जो अवशेष मिले उससे यह स्थल पूर्व मध्यकालीन सिद्ध हुआ।[3] वर्तमान में यह टीला भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है। अभी तक यहाँ सीमित स्तर पर खुदाई हो सकी है। अतः यहॉ व्यापक स्तर पर उत्खनन की आवश्यकता है ताकि इसकी प्राचीनता का विवाद सुलझ सके।

---

[1] वाजपेयी, के0डी0, 1987, *लोकेशन ऑफ पावा, युग युगीन सरयूपार,* पृ0 88।

[2] युग–युगीन सरयूपार, 1987, वाराणसी, पृ0 49 (के0 डी0 बाजपेयी द्वारा प्रस्तुत पत्र–लोकेशन ऑफ पावा)।

[3] इण्डियन आर्कियोलाजिकल रिव्यू, नई दिल्ली, 1987, पृ0 88।

अध्याय 4

कुशीनगर जनपद में पुरातात्विक अन्वेषण और कला अवशेषों का अध्ययन

इस अध्याय में शोधार्थी द्वारा जनपद में किये गये पुरातात्विक सर्वेक्षण से ज्ञात स्थलों एवं उनसे प्राप्त पुरासामग्रियों का यथेष्ट विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मेरे द्वारा कुशीनगर जनपद का गहन सर्वेक्षण 1999 ई0 से 2002 ई0 के बीच किया गया जिसके परिणामस्वरूप कुल 89 महत्वपूर्ण पुरास्थल प्रकाश मे आये हैं। यद्यपि कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती शोध कर्ताओं ने भी किया है, किन्तु शोधार्थी ने उनका पुनः सर्वेक्षण कर उनके विषय में उपलब्ध सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। इन पुरास्थलों में से 28 पुरास्थल तमकुहीराज तहसील में, 27 पुरास्थल कसया तहसील में, 17 पुरास्थल पडरौना तहसील में तथा 17 ही पुरास्थल हाटा तहसील में स्थित है (रेखाचित्र संख्या–4, तालिका– 1)।

तालिका–1

तमकुहीराज तहसील के स्थल			
क0 सं0	स्थल के नाम	अक्षांश	देशान्तर
1	गंगुआ	26^0 –5′–15″ उ0	84^0 –8′–45″ पू0
2	लक्ष्मीपुर बाबू	26^0 –6′–0″ उ0	84^0 –8′–45″ पू0
3	शिव सरेया	26^0 –6′–30″ उ0	84^0 –9′–30″ पू0
4	सरेया	26^0 –7′–15″ उ0	84^0 –10′–15″ पू0
5	बसडीला खूर्द	26^0 –6′–15″ उ0	84^0 –9′–0″ पू0
6	परसौनी	26^0 –7′–30″ उ0	84^0 –11′–50″ पू0
7	सियरहॉ	26^0 –7′–15″ उ0	84^0 –11′–30″ पू0
8	मीर बिहार	26^0 –38′–7″ उ0	84^0 –11′–30″ पू0
9	बनवीरा	26^0 –37′–7″ उ0	84^0 –3′–15″ पू0
10	बदुराँव	26^0 –36′–0″ उ0	84^0 –3′–7″ पू0
11	नाथा पट्टी	26^0 –36′–0″ उ0	84^0 –3′–20″ पू0
12	पुरैना कटेया	26^0 –5.5′–30″ उ0	84^0 –6.5′–45″ पू0

14	गगलवाँ	26^{0} –41′–30″ उ0	84^{0} –5′–0″ पू0
15	देवरिया वृत्त	26^{0} –41′–45″ उ0	84^{0} –5′–15″ पू0
16	धारमठिया	26^{0} –41′–15″ उ0	84^{0} –6′–15″ पू0
17	उजारनाथ	26^{0} –42′–55″ उ0	84^{0} –4′–15″ पू0
18	सपही खास	26^{0} –45′–10″ उ0	84^{0} –5′–30″ पू0
19	करमैनी डीह	26^{0} –45′–0″ उ0	84^{0} –4′–15″ पू0
20	भेलया चन्द्रौटा	26^{0} –44′–0″ उ0	84^{0} –4′–15″ पू0
21	अहलादपुर	26^{0} –40′–55″ उ0	84^{0} –2′–15″ पू0
22	तुर्कपट्टी	26^{0} –45′–0″ उ0	84^{0} –4′–30″ पू0
23	राजा पाकड़	26^{0} –46′–30″ उ0	84^{0} –8′–0″ पू0
24	गुरूवलिया	26^{0} –46′–30″ उ0	84^{0} –4′–50″ पू0
25	घुरपट्टी	26^{0} –52′–10″ उ0	84^{0} –4′–10″ पू0
26	सपही टड़वाँ	26^{0} –45′–0″ उ0	84^{0} –8′–45″ पू0
27	मोरवन मठियाँ	26^{0} –39′–30″ उ0	84^{0} –14′–0″ पू0
28	दनियाड़ी	26^{0} –37′–15″ उ0	84^{0} –16′–0″ पू0
	कसया तहसील के स्थल		
29	फाजिलनगर	26^{0} –45′–0″ उ0	84^{0} –2′–0″ पू0
30	सठियाँव	26^{0} –44′–0″ उ0	84^{0} –2′–0″ पू0
31	अमवा	26^{0} –42′–0″ उ0	83^{0} –58′–30″ पू0
32	मरचैयाडीह' (सरेया महन्थ पट्टी)	26^{0} –41′–15″ उ0	83^{0} –69′–7.5″ पू0
33	नदवाँ–विशुनपुर	26^{0} –39′–30″ उ0	83^{0} –59′–0″ पू0
34	बेईली	26^{0} –41′–0″ उ0	83^{0} –59′–10″ पू0
35	धनहा	26^{0} –42′–30″ उ0	83^{0} –58′–30″ पू0
36	बकुलहर कला	26^{0} –39′–0″ उ0	84^{0} –1′–15″ पू0
37	उस्मानपुर (बीरभारी टीला)	26^{0} –37′–30″ उ0	84^{0} –3′–45″ पू0
38	सुमही बुजुर्ग	26^{0} –38′–10″ उ0	84^{0} –2′–0″ पू0
39	गांगी टीकर	26^{0} –42′–0″ उ0	84^{0} –1′–0″ पू0
40	सोहंग	26^{0} –44′–15″ उ0	84^{0} –0′–0″ पू0
41	करमा टोला	26^{0} –44′–15″ उ0	84^{0} –1′–10″ पू0
42	छहूँ–ए	26^{0} –45′–0″ उ0	84^{0} –0′–0″ पू0
43	छहूँ–बी	26^{0} –45′–5″ उ0	84^{0} –0′–0″ पू0
44	बसडीला	26^{0} –51′–23″ उ0	83^{0} –51′–30″ पू0
45	कुशीनगर	26^{0} –45′–0″ उ0	83^{0} –55′–0″ पू0
46	नरकटिया खूर्द	26^{0} –46′–45″ उ0	83^{0} –52′–55″ पू0
47	टेकुआ टार	26^{0} –52′–10″ उ0	83^{0} –51′–30″ पू0
48	प्रेमवलिया	26^{0} –43′–15″ उ0	83^{0} –57′–45″ पू0

49	मैनपुर कोट	26^0 –44′–15″ उ0	83^0 –58′–15″ पू0
50	कुलकुला स्थान	26^0 –41′–15″ उ0	83^0 –56′–30″ पू0
51	मल्लूडीह	26^0 –43′–0″ उ0	83^0 –58′–0″ पू0
52	मधुरिया	26^0 –41′–55″ उ0	83^0 –59′–0″ पू0
53	अन्ध्याडीह	26^0 –42′–0″ उ0	83^0 –57′–0″ पू0
54	दीघवा खूर्द	26^0 –46′–0″ उ0	83^0 –53′–0″ पू0
55	दीघवा बुजुर्ग	26^0 –47′–0″ उ0	83^0 –56′–7″ पू0
पडरौना तहसील के स्थल			
56	बलडीहा	26^0 –44′–15″ उ0	84^0 –2′–0″ पू0
57	कुबेर स्थान	26^0 –46′–30″ उ0	84^0 –4′–30″ पू0
58	कोहरवलिया	26^0 –48′–45″ उ0	84^0 –6′–0″ पू0
59	खण्डवार पिपरा	26^0 –50′–15″ उ0	84^0 –3′–30″ पू0
60	घोरघटिया	26^0 –52′–30″ उ0	84^0 –2′–0″ पू0
61	बड़गाँव	26^0 –52′–0″ उ0	84^0 –0′–0″ पू0
62	सिघुवाँ स्थान	26^0 –56′–5″ उ0	84^0 –1′–0″ पू0
63	सिघुवाँ देवलही	26^0 –44′–45″ उ0	84^0 –1′–5″ पू0
64	देवरहा स्थान	26^0 –55′–30″ उ0	83^0 –58′–45″ पू0
65	लमुहा	26^0 –55′–5″ उ0	83^0 –59′–0″ पू0
66	गांगरानी	26^0 –53′–5″ उ0	83^0 –56′–15″ पू0
67	रविन्द्रनगर	26^0 –53′–7″ उ0	83^0 –59′–10″ पू0
68	सेहुवाडीह	26^0 –54′–30″ उ0	83^0 –56′–30″ पू0
69	नौगावां इन्द्राही	26^0 –57′–15″ उ0	83^0 –56′–30″ पू0
70	कुकुरहा	26^0 –51′–30″ उ0	83^0 –54′–30″ पू0
71	मठियाँ बुजुर्ग	27^0 –8′–15″ उ0	83^0 –52′–15″ पू0
72	चमडीहा	27^0 –12′–0″ उ0	83^0 –50′–30″ पू0
हाटा तहसील के स्थल			
73	वनमोर्चा	26^0 –44′–5″ उ0	83^0 –51′–30″ पू0
74	भिसवाँ रामपुर	26^0 –44′–20″ उ0	83^0 –41′–45″ पू0
75	नाऊमुण्डा	26^0 –45′–0″ उ0	83^0 –43′–0″ पू0
76	बढेया खुर्द	26^0 –44′–45″ उ0	83^0 –40′–0″ पू0
77	भरकुलवां	26^0 –45′–30″ उ0	83^0 –37′–30″ पू0
78	डुमरी मलाँव	26^0 –47′–15″ उ0	83^0 –39′–15″ पू0
79	घोटप भिसवा	26^0 –49′–45″ उ0	83^0 –37′–30″ पू0
80	देउरवाँ	26^0 –47′–10″ उ0	83^0 –43′–5″ पू0
81	झाँगा	26^0 –47′–30″ उ0	83^0 –43′–40″ पू0
82	झरुआडीह	26^0 –45′–0″ उ0	83^0 –44′–0″ पू0

83	थरुआडीह	26^0 –44'–45" उ0	83^0 –43'–30" पू0
84	महुवाडीह	26^0 –39'–15" उ0	83^0 –47'–30" पू0
85	मुँजडीहा	26^0 –53'–45" उ0	83^0 –5'–0" पू0
86	मगडीहा	26^0 –41'–45" उ0	83^0 –39'–15" पू0
87	तुर्कडीहा	26^0 –50'–45" उ0	83^0 –38'–50" पू0
88	अमडीहा	26^0 –54'–15" उ0	83^0 –38'–15" पू0
89	पपउर	26^0 –59'–0" उ0	83^0 –52'–30" पू0

सर्वेक्षण से प्रकाश में आए इन स्थलों का विवरण, उनकी स्थिति, क्षेत्रफल और इन स्थलों से उपलब्ध महत्वपूर्ण पुरा–सामग्रियों तथा ऐतिहासिक महत्व के स्मारकों आदि का वर्णन निम्न पॅक्तियों में किया जा रहा है : –

1. गंगुआ :

यह पुरास्थल गॉव के उत्तर–पश्चिम में तमकुही से लगभग 8 किमी. दक्षिण, तमकुही–समउर लिंक मार्ग के पूर्व तथा फाजिलनगर से 9.5 किमी0 दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। यह पुरा स्थल पूर्व से पश्चिम लगभग 300 मीटर लम्बे तथा उत्तर से दक्षिण लगभग 200 मी0 चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। वर्तमान में टीले के अधिकांश हिस्से पर कृषि कार्य किया जा रहा है। स्थल के बीच में लगभग 5 मीटर ऊँचा तथा 50 मीटर लम्बा–चौड़ा टीला अब भी विद्यमान हैं(छायाचित्र संख्या–22)। टीले पर दुर्गा जी का स्थान है। स्थानीय लोग इस टीले को पूर्व में चेरों का निवास स्थल बताते है। उनके अनुसार यह गांगू और स्वायत्त नामक दो भाईयों का निवास स्थल था जिनके नाम पर कमशः गंगुआ और स्वायत्त पिपरा नामक दो गाँव बसे हुए हैं। जनश्रुतियों के अनुसार इन्होनें एक रात में 72 तालाब और 72 कुँए खुदवाये थे जिनमें से अधिकांश के प्रमाण आज भी मौजूद हैं और कुछ पट गये हैं।

टीला खंडित ईटों से पटा पड़ा है। यहाँ से प्राप्त पूर्ण ईटों की माप 31 × 31 × 4 सेमी0 तथा 36 × 22 × 4 सेमी0 है। टीले से 50 सेमी0 ऊँची तथा 25 सेमी0 चौड़ी काले चमकीले प्रस्तर से निर्मित आधार पीठ सहित उमा–माहेश्वर

जनपद कुशीनगर के पुरास्थल

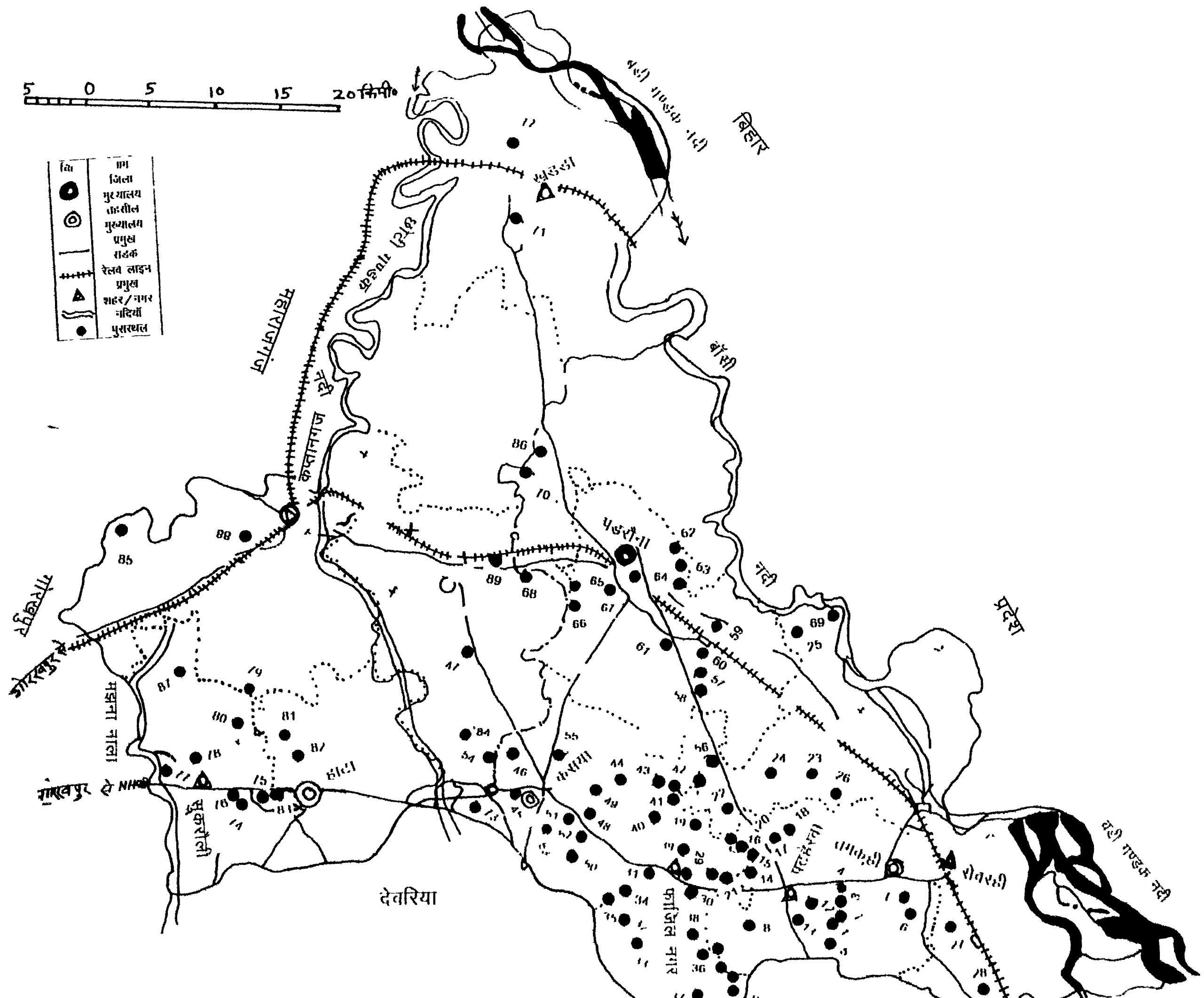

रेखा चित्र संख्या 4

की आलिंगन मुद्रा मे ललितासन रूप मे अंकित मूर्ति मिली है जो वर्तमान में गाँव के प्रधान के घर रखी है । यह 10वीं–11वीं शताब्दी का प्रतीत होता है।

यह युगल प्रतिमा एक ही आसन पर निर्मित है। इस प्रकार की प्रतिमा निर्माण का विधान विष्णु धर्मोत्तर पुराण में किया गया है[1]। माहेश्वर की प्रतिमा चतुर्भुजी है जबकि उमा की द्विभुजी । शिव के पहले हाथ में फल, दूसरे हाथ में त्रिशूल और तीसरे हाथ में सर्प का अंकन हुआ है। शिव को चौथे हाथ द्वारा पार्वती का आलिंगन किये दिखाया गया है जो अधरों को स्पर्श करते हुए अंकित है। इस प्रकार का विधान रूपमंडन में भी दिया गया है।[2] पार्वती का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर आलिंगन मुद्रा में अंकित है तथा बायाँ हाथ जो बाएँ घुटने पर टिका हुआ है, में दर्पण अंकित है। गोपी नाथ राव ने भी इसका समर्थन किया है।[3] मूर्ति के नीचे पीठिका पर शिव के समीप वाहन वृषभ तथा पार्वती के समीप उनके वाहन सिंह का अंकन हुआ है। शिव का दाहिना पैर पीठिका के ऊपर तथा बाया पैर उपर मोड़कर बैठे दिखाया गया है। पार्वती शिव के बायें जंघे पर बैठी है जिनका दाहिना पैर पीठिका पर तथा बायें पैर का घुटना कमर तक उठा हुआ अंकित है, जिस पर बाया हाथ अवलाम्बित हैं। शिव के सिर पर जटा मुकुट, कान में कुण्डल , गले में हार, कमर में मेखला, बाहों में कंकण तथा भुजबन्द अंकित है। उमा की मूर्ति विशाल वक्ष एवं नितम्ब से युक्त है। देवी के भी गले में हार, हाथों में कंगन तथा सिर करण्ड मुकुट से अलंकृत है। मूर्ति के शीर्ष पर दोनों पाश्वों में गणधर उत्कीर्ण है। (छायाचित्र संख्या–23)। उमा–माहेश्वर की इसी प्रकार की एक प्रतिमा संग्रहालय खजुराहों में रखी हुई है।[4]

यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा के तथा कुषाण युगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकडें प्राप्त हुए है। कुषाण युगीन मृद्भाण्डों में घुण्डीदार

---

[1] "युग्मं स्त्री पुरूषं कार्यमुमेशौ दिव्यरूपिणौ। "*विष्णु धर्मोत्तर पुराण,* 105,8–110।

[2] श्रीवास्तव, बलराम, *रूपमण्डन,* चतुर्थ अध्याय।

[3] राव, गोपीनाथ, *एलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी,* भाग2, खण्ड1, पृ0 133।

[4] सिंह, अजीत प्रसाद, *खजुराहों की शैव एवं शाक्त प्रतिमाएँ,* वाराणसी,1991, पृ0 61।

ढक्कन, खॉचेदार लोढा, मिट्टी के खिलौने एवं मूर्तियॉ, साधार तस्तरी एवं कटोरा, विभिन्न प्रकार के घडे, मिट्टी की किसी जानवर की खण्डित मूर्ति, कड़ाही का हैंडिल, घुंडीदार एवं दावात के आकार के ढक्कन, स्टोरेज जार, बेसिन, ओठदार कटोरा आदि शामिल है।

2. लक्ष्मीपुर बाबू :

यह स्थल तमकुही से लगभग 6 किमी0 दक्षिण–पूर्व, फाजिलनगर से 10 किमी0 पूरब गॉव के उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित है। लगभग 50 × 35 वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैले इस टीले की ऊचाई लगभग 3 मीटर है। इसके पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व में 2 बड़े तालाब है। टीले पर ईटों के टुकड़े प्रभुत्त मात्रा में दिखाई पड़ते है। यहॉ से कुषाण युगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन बहुत कम मात्रा में मिलते है जिनमें घडे, ढक्कन, नाद तथा हाड़ी शामिल है।

3. शिव सरेया :

यह स्थल तमकुही से लगभग 5 किमी. दक्षिण तमकुही–समउर लिंक मार्ग के किनारे स्थित है। यह लगभग दो एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इसके पूरब में लगभग 150 × 100 मीटर लम्बे चौड़े आकार का एक तालाब है। वर्तमान में टीले पर शिव मंदिर स्थापित है जिसमें एक शिवलिंग प्रतिष्ठापित है। मुख्य मंदिर से सटे उत्तर दिशा में एक छोटा सा मंदिर है जिसके बाहर सूर्य, नौ–ग्रह (छायाचित्र संख्या–24) सहित अनेक काले रंग की खण्डित प्रस्तर मूर्तियाँ बिखरी पड़ी है यहाँ अलंकृत वेदिका–स्तम्भ अथवा तोरण द्वार का खंडित भाग जिस पर पुरूष एवं नारी मूर्तियाँ उत्कीर्ण है, पड़ी हुयी है। यह 10वी–11वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। ये सभी इसी स्थान से प्राप्त हुई है। यहाँ से प्राप्त वामन मूर्ति की ऊँचाई 36 सेमी0 है। यह चतुर्भुजी है जिसके नीचे के दो हाथ अभय मुद्रा में है तथा उपर के एक हाथ में दण्ड धारण किये हुए है। चौथे हाथ में ग्रहित वस्तु अस्पष्ट है। प्रतिमा कर्ण कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, जटा–मुकुट मेखला तथा वनमाला से अलंकृत है। पैर के अगल–बगल तथा शीर्ष पर दोनो पार्श्वो में कुछ प्रतिमाँ उत्कीर्ण है, जिनकी पहचान संदिग्ध है(छायाचित्र चित्र–25)। अग्निपुराण में छत्र–दण्डधारी चतुभुर्ज वामन का

उल्लेख है।[1] विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार वामन मूर्ति दण्डी एवं ब्रह्मचारी के रूप में होनी चाहिए।[2] यहाँ से प्राप्त नवग्रह मूर्तियाँ एक पट्ट पर अंकित है जो धुँधली हो गई हैं। ये स्थानक मुद्रा में निर्मित है। ये नवग्रह सूर्य, चन्द्र (सोम), मंगल (भौम), बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु है। मंदिरों के प्रवेश द्वार पर नवग्रहों का अंकन शुभ माना जाता है। डा0 रामाश्रय अवस्थी ने खजुराहो से अनेक नवग्रह पट्टों का उल्लेख किया है।[3] डा0 गोपीनाथ राव ने तंजौर में सूर्यनार्कोयिल के सूर्य मंदिर से एक स्पष्ट नवग्रह समूह का उल्लेख किया है।[4] आज की कष्ट निवारणार्थ ग्रह–शान्ति की पूजा प्रचलित है। ग्रहों की वैज्ञानिक उपयोगिता ही ग्रह–पूजा की लोकप्रियता की आधारशिला है।

4. सरेयाँ :

यह पुरास्थल गाँव से उत्तर–पूर्व में लगभग .5किमी. की दूरी पर तमकुही से लगभग 4 किमी. दक्षिण में स्थित है। इस स्थल से 1 किमी0 की दूरी पर उत्तर में झरही नदी बहती है। यह लगभग 5 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। यह आसपास की जमीन से बहुत ऊँचा नही है और लगभग समतल हो चुका है। पुरास्थल के बीच से एक नहर निकली है जिसके कारण इसका अधिकांश भाग क्षतिग्रस्त हो गया है और शेष भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है।

यहाँ से कुषाणयुगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े बहुत कम मात्रा में बिखरे हुए मिलते है जिनमें चौड़े मुँह वाले घड़े, कैरिनेटेड हाड़ी, कुछ पात्रों पर स्टैम्प का चिन्ह, पाटरी डिस्क, तस्तरी तथा बेसिन शामिल है।

सरेया गाँव के पश्चिम एक मंदिर में काले प्रस्तर की चतुर्भुजी विष्णु की बैंकुंठ प्रतिमा (छायाचित्र संख्या–26) प्रतिष्ठित है। इसके अगल–बगल अन्य खंडित प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी है जिनमें बायें करवट लेती हुयी नारी की प्रतिमा विशेष

---

[1] छत्री–दण्डी वामने स्यादथवा स्याच्चतुर्भजम् !! *अग्नि पुराण।*

[2] *विष्णु धर्मोत्तर पुराण,* 85,54–55!

[3] अवस्थी, रामाश्रय, *खजुराहों की देव प्रतिमाएँ,* आगरा, 1966, पृ0 194–196।

[4] राव गोपीनाथ, पूर्वोद्धृत, जिल्द 1, भाग2, पृ0 323।

रूप से उल्लेखनीय है जिसके स्तन के पास एक लेटे हुए शिशु की प्रतिमा उत्कीर्ण है (छायाचित्र संख्या–27)। इसका बांया हाथ सिर से टेक लगाये हुए है तथा दाहिना हाथ पैर के ऊपर है। मातृ–शिशु (सद्योजात विष्णु) की यह प्रतिमा कुशीनगर जनपद की विशिष्ट कला शैली को सूचित करती है। ये सभी प्रतिमाएँ इसी स्थल से जमीन के अन्दर से मिली है।

बैकुण्ठ प्रतिमा की लम्बाई 10 फीट तथा चौड़ाई 3 फीट है। वैदिक परम्परा में बैकुण्ठ इन्द्र से सम्बद्व एक देव है, किन्तु परवर्ती साहित्व में 'वैकुण्ठ' इन्द्र का ही एक नाम बताया गया है।[1] लेकिन महाभारत, में भागवतपुराण[2] में 2 तथा विष्णु पुराण में विष्णु का एक ही नाम बैकुण्ठ बताया गया है। विष्णु के बैकुण्ठ रूप धारण करने का उल्लेख यशोवर्मन के वि0 सं0 1011 के खजुराहो अभिलेख में भी मिलता है।[3] इसके अनुसार विष्णु ने सौम्य, वराह, नरसिंह और कपिल इन चार मूखों से युक्त वैकुण्ठ अवतार धारण किया था।

इस प्रकार वैकुण्ठ प्रारम्भ में इन्द्र से सम्बद्व रहे और फिर विष्णु के एक गौण अवतार माने गए। पूर्व मध्य युग में उनका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया और वे कश्मीरागम अथवा तंत्रांत्तर सम्प्रदाय के प्रधान देव बन गये।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[4] जयख्यासंहिता तथा यशोवर्मन के खजुराहों अभिलेख[5] में वैकुण्ठ के चतुर्मख, सौम्य, नरसिंह, वराह तथा कपिल होने का उल्लेख हुआ है। ज्याख्यासंहिता में वैकुण्ठ के चतुर्भुज होने तथा उनमें शंख, चक्र और पद्म धारण करने का उल्लेख है। अपराजितपृच्छा[6] में बैकुण्ठ के चारमुख और आठ भुजाएँ होने तथा गरूड़ पर आरूढ होने का उल्लेख मिलता है। इनमें चौथा मुख

---

[1] त्रिपाठी, एल0 के0, *भारती*, नं 4 पृष्ट 116।

[2] *भागवत पुराण* 3, 16, 6।

[3] *इपिग्राफिका इण्डिका*, वाल्यूम 1, पृ0 124।

[4] *विष्णु धर्मोत्तर पुराण*, 85,43–45।

[5] कीलहार्न, *इपिग्राफिका इण्डिका*, वाल्यूम 1, पृष्ट 122–35

[6] *अपराजितपृच्छा*, 219, 25–27।

कपिल के स्थान पर स्त्रीमुख होने का विवरण दिया गया है। उनके दाहिने हाथों में गदा, खड्ग, बाण तथा चक्र और बाएं हाथ मे शंख, खेटक, धनुष तथा पद्म होने चाहिए।

यद्यपि कि बैकुण्ठ के चतुर्मुख होने की विशिष्टता सर्वमान्य है, किन्तु परमारों के नागपुर शिलालेख[1] से उनके तीन मुखों का बोध होता है। अधिकांश बैकुण्ठ मूर्तियॉ त्रिमुखी ही मिली है।

इस पुरास्थल पर प्रतिष्ठित वैकुण्ठ प्रतिमा भी त्रिमुखी है। पीछे की ओर चौथा मुख (कपिलानन) संभवतः दृष्टिगोचर न होने के कारण ही नही निर्मित हुआ है। सामने का सौम्य पुरूषमुख प्रधान है, दक्षिण मुख नरसिंह का और वाम वराह का है। यह प्रतिमा स्थानक समभंग मुद्रा में खड़ी है। केन्द्रीय मस्तक किरीटमुकुट से अलंकृत है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रतिमा अष्टभुजी रही होगी, जिसके चार हाथ खण्डित हो गये हैं तथा चार हाथ सुरक्षित है। बॉयी ओर की भुजाओं में क्रमशः चक्र व धनुष तथा दक्षिण भुजाओं में क्रमशः खड्ग और शंख अंकित है। यह मूर्ति गलाहार, ग्रैवेयक, कौस्तुमकर्ण , कुण्डलों, केयूरों, यज्ञोपवीत, लटकती मुक्ता–लड़ियों से युक्त मेखला, वनमाला तथा हाथ भुजबन्द और कंगन से सुशोभित है। यह प्रतिमा दोहरे कमलासन पर खड़ी है जिसके नीचे गरूण की आकृति उत्कीर्ण की गई है। गरूण आकृति के दाहिनी ओर स्त्री पूजक तथा बायें पुरूष पूजक की आकृतियाँ अंकित है। वैकुण्ठ के चरणों के दोनों ओर एक–एक भक्त हाथ जोड़े बैठे हुए है। बैकुंठ प्रतिमा के दाहिनें पार्श्व में पद्मधारणी लक्ष्मी तथा बायें पार्श्व में वीणाधारिणी सरस्वती खड़ी है। शिरश्चक्र के उपर, दाएॅ और बाएँ बनी तीन रथिकाओं में क्रमशः सूर्य नारायण, ब्रह्मा और शिव की छोटी प्रतिमाएँ है। सूर्य नारायण योगासन मुद्रा में हैं। मूर्ति की प्रभावली में अधिकाँश अवतार चित्रित हैं। मूर्ति के दोनों, ओर कोनों पर एक–एक अनुचर भी उत्कीर्ण है। मूर्ति के

[1] *इपिग्राफिका इण्डिका,* वाल्यूम 2, पृष्ट 183।

मुख की बायीं ओर तथा किरीट के अगल–बगल व उपर अनेक पँक्तियों में छोटी–2 अनेक मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित की गई हैं।

प्रतिमा लक्षणों एवं उनकी अन्य बातों को देखते हुए यह प्रतिमा 11वीं–12वीं शताब्दी की प्रतीत होती हैं। केन्द्रीय पुरूष मुख पर झलकता आनन्द–मिश्रित परम शान्ति का भाव दर्शक को मोह लेता है।

5. बसडीला खूर्द :

यह पुरास्थल तमकुही से 9 किमी0 दक्षिण तथा फाजिलनगर से 11 किमी0 दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। यह गाँव के दक्षिण में लगभग दो एकड़ में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई आस–पास की जमीन की सतह से लगभग 1 मी0 है। पुरास्थल के दक्षिण में चँवर है। वर्तमान में सम्पूर्ण भू–भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। ग्रामीण लोंगो के अनुसार पूर्व में यह चेरों का निवास स्थल था। इस पुरास्थल से कुषाण युगीन एवं मध्यकाल के लाल रंग के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए है जिनमें घुंडीदार ढक्कन, घडा, तस्तरी, लौह पिंड तथा कड़ाही जिसके नीचे धुएँ का निशान है, प्रमुख है। एक बर्तन के टुकड़े पर नाखुन धसाकर डिजाईन बनाया गया है।

6. परसौनी :

यह स्थल तमकुही से 4 किमी. दक्षिण पूर्व में स्थित है। इस स्थल से 200 मी0 की दूरी पर पश्चिम से सियाही नदी बहती है। यह लगभग 2 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। यह पूर्णतया समतल हो चुका हैं जिसके सम्पूर्ण भूभाग पर वर्तमान में कृषि कार्य हो रहा है। स्थानीय मान्यता के अनुसार पूर्व में यह पम्पापुर था, जो आगे चलकर परसौनी के रूप में परिणत हो गया। ग्रामीणों के अनुसार इस स्थल को चनाभार के नाम से भी जाना जाता हैं।

यहाँ से कुषाण युगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन मिले है जिनमें विभिन्न प्रकार के घड़े, बेसीन, हाड़ी, कड़ाही (कुषाण युगीन चमकदार पालिस युक्त) , घुंडीदार ढक्कन, कटोरे, आदि शामिल है। यहाँ से मिट्टी की एक मुहर भी मिली है जिसके उपर तीन वृत्तों के अन्दर एक डॉट का चिन्ह अंकित है।

7. सियरहाँ :

यह स्थल तमकुही से 3.5 किमी. दक्षिण पूर्व में स्थित है। यह सियाही नदी के पूर्वी तट पर स्थित है। यह लगभग .5 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ हैं। यहॉ से कुछ हिन्दू प्रतिमाएँ मिली हैं जो इसी स्थान पर एक मंदिर में स्थापित है। प्रतिमाओं में काले पत्थर की सूर्य की प्रतिमा (छायाचित्र संख्या–28), जो 2 फीट ऊँची एवं 1.5 फीट चौडी है, एक मुखी शिवलिंग (छायाचित्र संख्या–29) तथा नृत्यरत चतुर्भुजी गणेश (छायाचित्र संख्या–30) की प्रतिमा एवं योनिपीठ सहित अष्ठफलकीय शिवलिंग प्रमुख है। इनका समय 10वीं–11वीं शताब्दी का प्रतीत होता है।

सूर्य प्रतिमा :

सम्प्रति हिन्दू सम्प्रदायों में सौर सम्प्रदाय एक प्रतिष्ठित सम्पद्राय है। मानव मूलतः प्रकृति उपासक था। प्रकृति के उन अंगो की उपासना वह श्रद्वापूर्वक करता था, जो उसके जीवन में उपयोगी थे। प्राची दिशा में उदित एवं पश्चिम दिशा में अस्त होने वाला सूर्य दिवा–रात्रि का कारण तथा सम्पूर्ण जीवों एवं वनस्पतियों का उद्‌बोधक एवं संचारक हैं। सूर्य की प्रथम किरणें जीवन की सूचिका है। इस अत्युपयोगी सूर्य को मानव ने सर्वप्रथम अपनी उपासना का केन्द्र माना ।

सुर्योपासना मुख्यतः दो रूपों में प्राप्त होती हैंः मानव–मूर्ति के रूप में तथा प्रतीकों के रूप में । मानव रूप में सर्वप्रथम सूर्योपासना शुंग–युग में ज्ञात होती है। स्वस्तिक, पद्‌म, चक्र , मयूर, किरण्युक्त वृत, गरूण, यक्ष इत्यादि सूर्य के प्रतीक माने गये हैं। डा0 वी0सी0 श्रीवास्वत[1] ने चक्र युक्त वृत को सूर्य प्रतीक माना है। वृहत्तसंहिता,[2] शिल्परत्न,[3] विष्णु धर्मोत्तर पुराण,[4] विश्व कर्मशिल्प,[5] में

[1] श्रीवास्तव, वी0सी0, *सन वर्शिप इन ऐण्सियन्ट इण्डिया*, पृष्ट 4।

[2] *वृहत्तसंहिता*, 58,46–49।

[3] *शिल्परत्न*, अध्याय 20।

[4] *विष्णुधर्मोत्तर पुराण*, 67,2–10।

[5] राव, गोपीनाथ, विश्वकर्म शिल्प, *एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी*, जिल्द1, भाग2, पृ0 38।

सूर्य प्रतिमा के लक्षणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया हैं। खजुराहो संग्रहालय में अनेक सूर्य–प्रतिमाएँ सूरक्षित है, जिसका विस्तृत विवेचन रामाश्रय अवस्थी ने किया है।[1]

सन्दर्भित पुरास्थल से प्राप्त सूर्य प्रतिमा दोहरे कमल पर स्थानक समभंग मुद्रा में स्थित है। यह द्विभुजी प्रतिमा उद्दीच्य वेशधारी है तथा इसके दोनों हाथों मे पूर्ण विकसित सनाल पद्म प्रदर्शित किया गया है, जो उत्तर भारतीय परम्परा का उद्धाहन करता हुआ स्कंधो तक उठा हुआ है। सूर्य के सिर पर किरीटमुकुट, गले में हार तथा मुक्ता–लडियों से युक्त माला, कर्ण कुण्डल, बाहों में कंकण तथा भुजबन्द, कटि में लटकती हुई मुक्ता लडियों से युक्त मेखला तथा यज्ञोपवीत से अलंकृत है। अधोभाग वस्त्र से ढका हुआ है। दोनो हाथों से लटकता हुआ उत्तरीय जैसा वस्त्र प्रदर्शित है, जो घुटने तक है। .सूर्य के पार्श्व में नीचे दो देवियाँ छाया और संज्ञा हाथ में चामर लिए त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है। वाम पार्श्व में दण्डी ओर दक्षिण पार्श्व में पिंगल क्रमशः दण्ड, लेखनी और पत्र लिए अंकित है। सूर्य के दोनो पैंरो के बीच में महाश्वेता प्रदर्शित हैं, जिसका दायाँ हाथ अभय मुद्रा में है। प्रतिमा के शीर्ष भाग में दोनों कोनें पर दो अनुचर उत्कीर्ण है। प्रतिमा के पैरों में उपानह पश्चिमी प्रभाव को सूचित करता है। इसकी मुख मुद्रा से सहज कोमलता आभासित है। डा० जे० एन० बनर्जी ने सूर्य के चरणों के समीप बनी मूर्ति को 'भू–देवी महाश्वेता' नाम से सम्बोधित किया है।[2]

नृत्यरत गणेश :

हिन्दू पंच देवों में गणेश विशेष प्रतिष्ठित है। समस्त शुभ कार्यो, संस्कारों तथा पूजा में सर्वप्रथम गणेश की ही उपासना की जाती है। गणेश सर्व–धर्म समन्वय के प्रतीक है तथा सभी धर्म के मूर्तियों के साथ प्राप्त होते है। इन्हें विध्वविनाशक माना गया है।

---

[1] अवस्थी, रामाश्रय, *खजुराहो की देव प्रतिमाएँ,* पृ0 170–183।

[2] बनर्जी जे0 एन0, *डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी,* पृ0 439।

नृत–गणपति–मूर्तियो का निर्माण पूर्व गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ।[1] गुप्तकाल में उनका प्रचलन बढने लगा और मध्य युग में वह बहुत व्यापक हो गया। शास्त्रों के अनुसार नृत गणपति मूर्ति अष्टभुजी बननी चाहिए। सात हाथों में पाश, अंकुश, मोदक, कुठार, दन्त, बलय तथा अंगुलीय हो और शेष एक हाथ उन्मुक्त लटककर विविध नृत्य–मुद्राओं के प्रदर्शन में सहायक हों।[2] गणेश की नृत्यरत मूर्तियाँ जनपद कुशीनगर से चतुर्भुजी, अष्टभुजी तथा षोड्शभुजी ही प्राप्त हुई हैं। गणपति की नृत्य–मूर्तियाँ खजुराहो से विविध रूपों–द्विभुजी, चतर्भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी, द्वादशभुजी और षोड्शभुजी– में उपलब्ध हुई हैं।[3]

सन्दर्भित पुरास्थल पर प्रतिष्ठित नृत्यरत गणेश प्रतिमा चतुर्भुजी है। यह मूर्ति किरीटमुकुट से सुशोभित हैं बांयी ओर की भुजाओं में क्रमशः परशु को लिए हुए दण्ड–हस्त तथा मोदक पात्र (कमण्डल) प्रदर्शित हैं। दायी ओर की एक भुजा में मोदक है तथा दूसरी भुजा स्कन्ध तक उठी हुई अभय मुद्रा में है, जिसमें माला की एक छोटी लड़ी अंकित है। गणेश की सम्पूर्ण सूँड बायीं और मुड़ी हुई है, जिसमें एक नाग पकड़कर उन्होंने अपने सिर के उपर घटा टोप सा बना लिया है। यह प्रतिमा हार, यज्ञोपवीत, कंकण, कटिसूत्र और पैजनी धारण किये हुए है तथा मस्तक मोती की इकहरी लडी से अलंकृत है। यह शूर्प कर्ण तथा एकदन्त है। शीर्ष पर दोनो पार्श्वो में गणधरों के युगल अंकित है। पीठिका पर वंशी तथा वीणा बजाते तीन अनुचरो की छोटी आकृतियाँ अंकित है। प्रतिमा में मूर्ति की प्रभावली में विविध मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित है।

एकमुखी शिवलिंग :

यह कुशीनगर जनपद से प्राप्त, एक मुखी शिवलिग का एकमात्र उदाहरण है। इस 15 इंच ऊँचे लिंग में एक ओर 12.5 ईंच ऊँचे शिव की मूर्ति

---

[1] मथुरा संग्रहालय में पूर्व गुप्तकालीन एक नृत–गणपति–मूर्ति (सं0 1064) दर्शनीय है।

[2] राव, गोपीनाथ, *एलेमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी,* जिल्द 1, खण्ड2।

[3] अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृ0 43–46।

उत्कीर्ण है। इस सावक्ष द्विभुजी मूर्ति के सिर पर किरीटमुकुट, कानों में कुण्डल तथा गले में हार सुशोभित है।

यहाँ उल्लेखेनीय है कि मुख–लिंग के अन्तर्गत एक मुख से पाँच मुख तक बनते है। एक मुख लिंग की एक प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय मे रखी हुई है।[1] इसमें लिंग के एक ओर मुख बना है तथा सिर पर जटा–जूट बने है। जे0 एन0 बनर्जी ने भी एक एकमुखी तथा एक पंचमुखी लिंग का उल्लेख किया है।[2] गोपीनाथ राव ने दक्षिण भारत में प्राप्त गौडिमल्लम् एकमुखी लिंग का उल्लेख किया है जिसकी पूजा परशुरामेश्वर के नाम से होती है।[3]

8. मीर बिहार :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से 6 किमी. दक्षिण–पूर्व में फाजिलनगर–समउर मार्ग के किनारे स्थित है। लगभग 30 × 35 वर्ग मी. क्षेत्र में फैले इस टीले की ऊँचाई लगभग 4.5 मी0 है। इस स्थल का प्रथम बार उल्लेख ए0सी0एल0 कार्लाइल ने किया था। स्थानीय लोग इस टीले को 'मीरा साहब की ढेरी' नाम से पुकारते है। यह टीला ईटों से पटा पड़ा है जिनमें से कुछ पूर्ण ईटों की माप 36×19×6 सेमी0 है। यहाँ से कुषाण यूगीन तथा मध्यकालीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले है जिनके उपर उभरे डॉट की दो पंक्तियाँ है, आधार युक्त कटोरा घुंडीदार ढंकन आदि शामिल है।

9. बनवीरा :

यह पुरास्थल तमकुही से 17 किमी0 दक्षिण–पश्चिम तथा फाजिलनगर से 8 किमी0 दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। वर्तमान में टीले के अधिकांश भाग पर गाँव बसा हुआ है तथा शेष भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यह लगभग 3.5 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है तथा आस–पास की जमीन की सतह से

---

[1] लखनऊ संग्रहालय, प्र0 न0 42।

[2] बनर्जी, जे0 एन0, *डेवलपमेण्ड ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी,* पृ0 61–62।

[3] राव, गोपनीथ, *एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी,* वाल्यूम 2, पृ0 63–64।

लगभग 2 मीटर ऊँचा है। इस स्थल का प्रथम बार उल्लेख ए0सी0एल0 कार्लाइल ने किया है।[1] यहॉ से कुषाण युगीन लाल रंग के मृद्भाण्ड के टुकडे प्राप्त हुए है जिनमे चौडे और सॅकरे मुँह वाले घडे, स्टोरेज जार, बेसिन, ढक्कन आदि शामिल है। यहॉ से प्राप्त पूर्ण ईटों की माप 38 × 22 × 6 सेमी0 हैं।

10. बदुरॉव :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से 12 किमी0 दक्षिण–पूर्व फाजिलनगर–इन्दिरा बाजार लिंक मार्ग के पूर्व दिशा में बिहार की सीमा पर स्थित है । वर्तमान मे पुरास्थल के सम्पूर्ण भाग पर गाँव बसा हुआ है जिसकी उँचाई सामान्य जमीन की सतह से 2.5 मीटर ऊँचा है । बदुराँव को स्थानीय लोग बुद्ध नगर भी कहते है । गाँव के पूरब मे कटेया सोता बहता है । यह स्थल लगभग 2.0 हेक्टेयर क्षेत्र मे फैला हुआ है। स्थानीय मान्यता के अनुसार अन्तिम व 24वें जैन तिर्थंकर महावीर इस गॉव से होकर पावा गये थे। यह बुद्ध के कुशीनगर जानेवाले मार्ग मे ही पड़ता था । भिक्षु धर्म रक्षित ने बदुराँव की पहचान बुद्धकालीन भोग नगर से की है जो मल्गण के पावा की तरह एक गणराज्य था। वर्तमान मे यह स्थल क्षतिग्रस्त हो चुका है । यहाँ से कुषाणकालीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़ मिले हैं जिनमें घडे, कटोरे, बेसिन, ढक्कन आदि शामिल हैं। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित तथा लाल लेपित मृदभाण्ड के कुछ टुकड़े भी मिले हैं। गृह का निर्माण करते समय गामीणों को पुरानी आबादी के उपर पुराने कुएँ मिले थे। गाँव से सटे दक्षिण में एक पुराना कुआँ आज भी देखा जा सकता है जिसका प्रयोग वर्तमान में भी लोग करते है।

11. नाथा पट्टी :

यह स्थल फाजिलनगर से 10 किमी0 दक्षिण तथा कसया से लगभग 19 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। लगभग एक एकड़ क्षेत्र मे फैला हुआ यह स्थल आसपास के जमीनी स्तर से लगभग 2 मी0 ऊँचा एक टीला है जिसे स्थानीय लोग

---

[1] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट*, 1875–76–77, टूर्स इन गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट, वाल्यूम 18, दिल्ली 1869, पृ0 102।

गढी के नाम से पुकारते है। यहॉ से लाल रंग के कुषाणकालीन एवं मध्यकालीन मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले है। यहाँ से प्राप्त प्राचीन वलय कूप की ईट की माप 45 5× 25 5×7 सेमी0 है।

12. पुरैना कटेया :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से 8.5 किमी0 पूर्व तथा तमकुही से 5 किमी0 दक्षिण पश्चिम में स्थित हैं। लगभग 2 हेक्टेयर क्षेत्र मे फैला यह स्थल पूर्णतया समतल और क्षतिग्रस्त हो चुका है। वर्तमान में सम्पूर्ण भू–भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यहा से प्राप्त अधिकांश ईंटे लोगों द्वारा मकान में लगवा लिये गये है तथा कुछ टुकडे खेतो में बिखरे पडे है। यहाँ से प्राप्त पूर्ण ईटों की माप 30×20×6 सेमी0, 29×22×7 सेमी0 आदि है। इनमें से कुछ ईटें नक्काशीदार भी है। यहॉ से काले चमकीले पत्थर की कुछ हिन्दू प्रतिमॉए भी मिली है जिनमें सूर्य, उमा–माहेश्वर (छायाचित्र संख्या–31), द्वादश पिण्डी लिंग, शिशु को दूध पिलाती बैठी हुयी स्त्री की मूर्ति (छायाचित्र संख्या–32) तथा कुछ खंडित मूर्तियाँ प्रमुख है। ये मूर्तियाँ 10वीं–11वीं शताब्दी की प्रतीत होती है।

सूर्य प्रतिमा :

सूर्य प्रतिमा बलुआ पत्थर की बनी हुयी है। यह प्रतिमा 4.5 फीट ऊँची तथा 2 फीट चौड़ी है। यह दोहरे कमल के उपर स्थानक मुद्रा में स्थित है। इसके सिर पर किरीटमुकुट तथा स्कन्ध तक उपर उठे हुए दोनों हाथों में पूर्ण विकसित सनाल पद्म सुशोभित है। इसके बायें हाथ का कुछ हिस्सा खण्डित है। यह प्रतिमा हार, कर्णकुण्डल, मेखला, वनमाला, कंकण तथा भुजबन्द से अलंकृत हैं। प्रतिमा के नीचे पार्श्व में उषा, प्रत्यूषा तथा दोनो पैरो के बीच महाश्वेता आदि देवियाँ अंकित हैं। छाया, संज्ञा, दण्डी तथा पिंगल भी अंकित रहे होगे जो अब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नही होते । प्रतिमा वक्ष तक वस्त्र (चोलक) से आवृत है। पैरों में उपानह पश्चिमी प्रभाव को सूचित करते है।

उमा–माहेश्वर : एक ही आसन पर निर्मित उमा–माहेश्वर की यह युगल प्रतिमा ललितासन मुद्रा में है। यह दो फीट ऊँची तथा 13 ईंच चौड़ी हैं। शिव को चतुर्भुज

तथा पार्वती की द्विभुज बनाया गया है। शिव का दाहिना पैर पाद पीठ पर तथा बाया पैर उपर मोडकर बैठे दिखाया गया है। पार्वती को बायां पैर पादपीठ पर तथा दाहिना पैर मोडकर शिव के जॉघ पर बैठे दिखाया गया है। शिव का पहला हाथ अभय मुद्रा में सामने वक्ष तक उठा हुआ है। दूसरे हाथ में त्रिशूल तथा तीसरे हाथ में सर्प का अंकन हुआ है। शिव का चौथा हाथ आलिंगन मुद्रा में है जिसे देवी के कूच को स्पर्श करते हुए दिखाया गया है। पार्वती का दाहिना हाथ आलिंगन मुद्रा में शिव के कंधे पर स्थित है तथा बायें हाथ में दर्पण अंकित है। मूर्ति के नीचे पीठिका पर शिव के समीप उनके वाहन वृषभ तथा पार्वती के समीप उनके वाहन सिंह का अंकन हुआ है। शिव तथा पार्वती के मुख एक–दूसरे के आमने–सामने हैं तथा दोनों के कटि को पतला बनाया गया है। शिव की मूर्ति जटा मुकुट, कुण्डल, हार, मेखला, कंकण, भुजबन्द तथा पैजनी से अंलकृत है। उमा की मूर्ति विशाल वक्ष तथा नितम्ब से युक्त है जो हार, कंगन, करण्डमुकुट, कुण्डल तथा करधनी से अंलकृत हैं। प्रतिमा के नीचे तथा उपर दोनों पार्श्वो में अनुचर प्रदर्शित है।

मातृ–शिशु की प्रतिमा :

इसके अन्तर्गत माता को अपने शिशु को गोद में लिए पीठिका पर दोनों पैर रखकर बैठा हुआ दिखाया गया है। शिशु का बाया हाथ माँ के स्तन को स्पर्श करते हुए अंकित है। प्रतिमा के दोनो ओर एक–एक अनुचर खड़े प्रदर्शित किये गए हैं। देवी की मूर्ति मुकुट, कुण्डल, हार, कंगन तथा भुजबन्द से अंलकृत है। यह प्रतिमा इन्द्रणी की हो सकती है।

यहाँ से कुषाणयुगीन मृदभाण्ड भी प्राप्त हुये है जिनमें सीधी एवं चौड़ी मुँह वाला घड़ा तथा बेसिन प्रमुख है।

13. बिहार बुजुर्ग :

यह स्थल तमकुही से 6 किमी0 दक्षिण–पश्चिम तथा फाजिलनगर से 8 किमी0 पूर्व पटहेरवा–समउर लिंक मार्ग के किनारे स्थित है। यह लगभग पूर्व–पश्चिम 500 मीटर तथा उत्तर–दक्षिण लगभग 200 मी0 के क्षेत्र में फैला हुआ है। पुरास्थल के थोड़े हिस्से पर आबादी बसी हुयी है तथा बाकी हिस्सा समतल हो

16. धारमठियाँ :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से लगभग 6 किमी0 उत्तर–पूर्व तथा तमकुही से 8 किमी0 पश्चिम में स्थित है। स्थानीय लोगों के अनुसार 52 बीघे में फैला यह टीला समीपवर्ती जमीनी स्तर से लगभग 5–6 मीटर ऊँचा है (छायाचित्र संख्या–34)। वर्तमान मे सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। पुरास्थल के पूर्वी छोर पर एक साधु बाबा की कुटिया तथा पश्चिमी छोर पर भगवान शिव का मंदिर है। मंदिर के प्रवेश द्वार की बायी ओर कंकाली देवी की पिंडी रूप में 7 प्रतिमाएँ है। इस स्थल को कंकाली देवी का टीला भी कहा जाता है। किंबदन्ती है कि यह टीला पहले राजा मदन सिंह का किला था। यह ईटों के टुकड़ों तथा मृदभाण्डों के टुकडो से पटा पड़ा है। यहां से प्राप्त कुछ पूर्ण ईटों की माप $38 \times 22 \times 6$ सेमी0 है। यहॉ से कुषाणकालीन लाल रंग के मृदभाण्ड प्राप्त हुए है जिनमें कटोरें, विभिन्न प्रकार के घड़े, टोटीदार बर्तन, सुराही तथा बेसिन शामिल है। लाल पात्र के एक बर्तन पर रोलेटेड वेयर का अनुकरण किया गया है। यहॉ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा के कुछ टुकड़े भी मिले है।

17. उजारनाथ :

यह पुरास्थल तमकुही से लगभग 5 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा फाजिलनगर से लगभग 9 किमी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है । लगभग 0.5 एकड़ में फैला यह स्थल पूर्णतया समतल हो चुका है। स्थल पर ईट के टुकड़े बिखरे पड़े है। यहाँ से लिंग, नृत्यरत गणेश, कृष्ण, नन्दी , तथा पार्वती की प्रतिमायें मिली है। लिंग स्थल के पश्चिमी किनारे मंदिर में स्थापित है जो काले रंग का है। बलुए पत्थर से निर्मित षोड्शभुजी गणेश (छायाचित्र संख्या–35) एवं अष्टभुजी गणेश प्रतिमाएँ एवं कृष्ण प्रतिमा मन्दिर के पूर्वी दीवार मे बाहर की ओर प्रतिष्ठापित है।

षोड़शभुजी नृत–गणपति की भुजाएँ खण्डित हैं। तथा इसका सूड़ बायीं ओर मुड़ा हुआ है। अष्टभुजी नृत–गणपति की पाँच भुजाएँ खण्डित है। शेष तीन में से एक में परशु, दूसरे में भोदक तथा तीसरा नृत्यमुद्रा में अंकित है। सम्पूर्ण

सूँड बायी ओर मुडकर मोदक को ग्रहण करते प्रदर्शित है। दोनों प्रतिमाएँ शूर्प–कर्ण से युक्त है तथा सिर पर मुकुट सुशोभित है।

स्थल के दक्षिणी किनारे पर चतुर्भुजी पार्वती की प्रतिमा मंदिर मे स्थापित है(छायाचित्र संख्या–36)। मूर्ति की दाहिनी ओर मयूरारूढ़ कार्तिकेय तथा बायीं ओर मूषक पर आसीन गणेश का अंकन है। यह कमल के ऊपर स्थानक मुद्रा में निर्मित है। इस प्रतिमा की ऊँचाई 7 फीट है। यह मूलतः काले रंग की है परन्तु अघतन इस पर लाल रंग का पेंट चढा दिया गया है। स्थल के पूर्वी किनारे पर खुले आकाश के नीचे नन्दी एवं एक अन्य लिंग एक साथ अगल–बगल स्थापित है

18. सपही खास :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से लगभग 10 किमी0 उत्तर–पूर्व तथा पडरौना से 25 किमी0 दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। यह लगभग 5 एकड में फैला हुआ है जिसके कुछ भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। शेष भाग की ऊँचाई, आस–पास की जमीनी स्तर से लगभग 2.5 मीटर है। यहाँ से प्रारम्भिक मध्यकालीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले है जिनमे हाड़ी, घड़े, टोटीदार बर्तन तथा मिट्टी की मुहर शामिल है। इस स्थल के दक्षिण–पूर्व में लगभग 50 मीटर की दूरी पर एक ईट का लगभग 3 मीटर ऊँचा छोटा सा टीला है जिसके ऊपर एक मंदिर में काले रंग की एक 8.5 फीट ऊँची अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमा स्थापित है (छायाचित्र संख्या–37)। यह इसी स्थान से मिली थी। इसका समय 10वी–11वी शताब्दी प्रतीत होता है।

विष्णु को एक अलंकृत कमलासन पर खड़े वरद मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा का प्रभामण्डल अत्यंत अलंकृत हैं। नीचे दोनों पार्श्वो में चामर वाहिनी तथा उपर गरूण की छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। आसन के नीचे पीठिका पर अनेक पूजकों की छोटी–2 मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। कमर से घुटने के उपर तक अधोवस्त्र बहुत ही सुन्दर बनाये गये हैं। प्रतिमा चतुमुर्खी है जिसमें वाराह, सिंह और मानव के साथ–साथ मत्स्य भी अंकित है। भुजाओं में विविध आयुद्वों के साथ धनुष का अंकन हुआ है। प्रतिमा में किरीट मुकुट अत्यन्त भव्य बनाया गया है। इसके

अतिरिक्त गले में हार, हाथों में कंकण तथा भुजबन्द, कमर में मेखला तथा वनमाला से अलंकृत हैं। विषय एवं कला की दृष्टि से यह प्रतिमा अद्वितीय है। वस्तुतः मूर्ति के ये समस्त शिल्प पाल युग के अनुरूप है।

19. करमैनी डीह :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से 4 किमी0 उत्तर पूर्व तथा पडरौना से 22 किमी0 दक्षिण–पूर्व पडरौना–पटहेरवा मार्ग पर स्थित है। यह पुरास्थल गाँव के दक्षिण लगभग 1 किमी0 की दूरी पर है जिसे गड़ेरिया के नाम से जाना जाता है। लगभग 3 एकड मे फैला यह पुरास्थल पूर्णतया समतल हो चुका है और इस पर कृषि कार्य हो रहा है । यहाँ से कुषाणकालीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकडे मिले है, जिनमें घड़े, हाडी, कड़ाही, नॉद आदि प्रमुख हैं ।

20. भेलयाँ चन्द्रौटा :

यह पुरास्थल पडरौना पटहेरवा मार्ग पर, पडरौना से 22 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यह लगभग 1 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है तथा इसकी ऊँचाई समीपवर्ती जमीनी स्तर से लगभग 3 फीट है। यह गाँव के उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित है। स्थल के पूर्वी छोर पर एक शिव मंदिर है। पुरास्थल समतल हो चुका है तथा इस पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ ईट के टुकड़े बिखरे पड़े है। यहाँ से कुषाण एवं गुप्त युगीन मिट्टी के लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े मिले है जिनमें चौड़े मुँह वाले घड़े तथा घड़े के ऊपर वृत्त के अन्दर डॉट के चिन्ह, बेसिन, कटोरा, हाड़ी, खिलौने के रूप में मिट्टी के जानवर शामिल हैं।

21. अहलादपुर :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से दो किमी0 पूर्व फाजिलनगर–तमकुही मार्ग के किनारे स्थित है। यह पुरास्थल लगभग 7 एकड़ में फैला हुआ है। आज भी लगभग दो एकड़ क्षेत्र में टीले का अवशेष विद्यमान है, जिसकी ऊँचाई आस–पास के जमीनी स्तर से लगभग 3 मी0 है। बाकी हिस्सा समतल हो चुका है तथा उन पर कृषि कार्य हो रहा है। टीले के पश्चिम में लगभग 100 मी0 की दूरी पर सोना नाला उत्तर से दक्षिण की ओर बहता है। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र

के टुकडे तथा कुषाणकालीन लाल रंग के मृदभाण्डों के टुकड़े प्राप्त हुए है जिनमें हाड़ी, तस्तरी, टोटीदार बर्तन, ढक्कन एवं घड़ा शामिल है। .

22. तुर्कपट्टी :

यह पुरास्थल पडरौना से 18 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा कसया से 15 किमी0 पूर्व कसया–सेवरही मार्ग पर स्थित है। यह स्थल स्थानीय लोगों में 'भर योगी का टीला' नाम से जाना जाता है। टीले के पश्चिम में एक तालाब है जिसे ग्रामीण लोग देव ताल के नाम से पुकारते है। यहाँ से 1981 ई0 में सूर्य की दो प्रस्तर प्रतिमाएँ मिली थी। एक प्रतिमा बलुआ पत्थर का है जिसे गुप्तयुगीन माना जाता है (छायाचित्र संख्या–38) तथा दूसरा काले रंग का है जिसे 11वीं शताब्दी (पालयुगीन) का माना जाता है(छायाचित्र संख्या–39)। वर्तमान में काले रंग की प्रतिमा मन्दिर में स्थापित है।

पहली प्रतिमा काले चमकदार पत्थर से निर्मित है और पाल युगीन प्रतीत होती है। यह प्रतिमा सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ स्थानक समभंग मुद्रा में स्थित है तथा अरूण को सारथी के रूप में परिलक्षित किया गया है। यह द्विभुजी प्रतिमा उद्दीच्य वेशधारी है तथा इसके दोनो हाथों में पूर्ण विकसित सनाल पद्म प्रदर्शित किया गया है जो कमर तक उठा हुआ है। इसका सिर प्रमामण्डल से अलंकृत है। स्मित मुद्रा से युक्त आदित्य के सिर पर किरीट मुकुट, गले में हार, बाहों में कंकण तथा भुजबन्द, कटि में मेखला तथा उदरबन्ध एवं यज्ञोपवीत धारण किये हुए है। पद से लेकर वक्ष तक का भाग चोलक से आवृत है। चरणों में उपानह पश्चिमी प्रभाव को सूचित करता है। शीर्ष पर दोनो पार्श्वो में दो गणधर तथा मध्य पार्श्व में दो सिंह अंकित है। सूर्य के सभी अंग पुष्ट एवं मांसल है। प्रतिमा के वाम पार्श्व मे दण्डी को बाएँ हाथ में दण्ड लिये तथा दक्षिण पार्श्व में पिंगल को हाथ में लेखनी और दवात लिये, अंधकासुर को कुचलते हुए प्रदर्शित किया गया हैं। इसमें सूर्य की पाँच पत्नियाँ उषा, प्रत्यूषा, महाश्वेता, छाया तथा संज्ञा प्रदर्शित की गई है। उषा और प्रत्यूषा सर संधान करते हुए अंकित हैं, जबकि छाया और संज्ञा को हाथ में

चामर लिये दिखाया गया है। सूर्य के पैर के पास अंकित महाश्वेता का बायां हाथ अभय मुद्रा में है।

बलुए पत्थर पर निर्मित दूसरी प्रतिमा का शिल्प गुप्त युगीन प्रतीत होता है। इस प्रतिमा की लम्बाई 54 इंच है जो वृहत्तसंहिता में सूर्य प्रतिमा के निर्माण के लिए निर्दिष्ट परिमाप, तीन हाथ के बराबर है। इस प्रतिमा के हाथ खण्डित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चतुभुर्जी स्वरूप की प्रतिमा रही होगी, जिसके दो हाथों में पूर्ण विकसित सनाल पद्म अंकित रहा होगा, क्योकिं कंधे के उपर दो पूर्ण विकसित कमल मौजूद है। इसके सिर पर ऊँचा किरीटमुकुट, कान में आकर्षण कुण्डल, कंधो तक लटकती हुई केशराशि एवं गले में हार इसकी शोभा को संबर्धित करते है। उदरबन्ध एवं कटि में मेखला धारण किये हुए यह प्रतिमा भी उद्दीच्य वेश में निर्मित है। देवता के साथ पार्श्व में उषा एवं प्रत्यूषा सर संधान करते हुए तथा महाश्वेता, छाया, संज्ञा एवं सारथी अरूण को प्रदर्शित किया गया है। महाश्वेता का दायां हाथ अभय मुद्रा में है। सूर्य के दो अनुचर पिंगल और दण्ड क्रमशः दाहिनी और बायीं ओर अंकित है। पिंगल के हाथ में लेखनी व पत्रक है तथा दण्ड बायीं हाथ में दण्ड धारण किये हुए अंकित हैं। प्रतिमा के पैरों में उपानह इस बात का संकेत करते है कि इसका निमार्ण विदेशी प्रभाव के अन्तर्गत हुआ था। इस प्रकार अपने शिल्पों के आधार पर यह प्रतिमा गुप्तकालीन प्रतीत होती हैं।

23. राजा पाकड़ :

यह पुरास्थल तमकुही से 12 किमी0 उत्तर–पश्चिम, पडरौना से 30 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा कसया से 32 किमी0 पूर्व कसया–सेवरही मार्ग पर स्थित है। 3 मी0 ऊँचा तथा 50×40 वर्ग मी0 के क्षेत्र में फैला हुआ यह स्थल, गाँव के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। टीले के ऊपर एक नीम के पेड़ के नीचे दुर्गा जी का स्थान है। सम्पूर्ण टीले पर ईंट के टुकड़े बिखरे पड़े है। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े तथा कुषाणयुगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं जिनमें घड़े, कटोरे, ढक्कन, बेसिन, होठदार कटोरा, जाली छाप मिट्टी का बर्तन तथा मोटी उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड शामिल है।

24 गुरूवलिया :

यह स्थल राजा पाकड़ से लगभग 4 किमी0 पूर्व में स्थित है। यह गॉव के पूर्व में एक तालाब के पश्चिमी किनारे स्थित है। यह लगभग 0.5 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है तथा समीपवर्ती जमीन से लगभग 1 मी0 ऊँचा है। यह स्थल क्षतिग्रस्त हो चुका है। इसके पश्चिमी किनारे पर प्राथमिक विद्यालय स्थित है। स्थानीय लोगो के अनुसार यह पूर्व में बंजारो का निवास स्थल था। यहाँ से कुषाणकालीन लाल पात्र के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। जिनमें तस्तरी, हाड़ी, घड़े, नॉद आदि शामिल है। एक बर्तन के भीतरी भाग में भूरे एवं काले रंग का लेप लगा हैं।

25. घुरपट्टी :

यह स्थल पडरौना से 14 किमी0 पूरब तथा तमकुही से 15 किमी0 उत्तर–पश्चिम में पडरौना–सेवरही मार्ग पर स्थित बिशुनपुरा थाना से 2 किमी0 उत्तर में स्थित है। इस स्थल के उत्तर में बाँसी नदी की सहायक मन नदी तथा दक्षिण पश्चिम में झरही नदी बहती है। 1.5 एकड़ क्षेत्र में फैला यह स्थल 2.5 मीटर ऊॅचा है। इस टीले पर ईंट, के टुकड़े बिखरे पड़े हैं। यहाँ से प्रारम्भिक मध्य काल के अच्छी तरह पकाये हुये लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुये हैं। इनमें हाड़ी, नॉद, घड़े तथा पूजा के बर्तन शामिल हैं।

26. सपहीं टड़वाँ :

यह पुरास्थल तमकुही से 6 किमी0 उत्तर–पश्चिम झरही नदी के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह लगभग 13 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। पुरास्थल के कुछ हिस्से पर आबादी बसी हुई है तथा बाकी के हिस्से पर कृषि कार्य हो रहा है। स्थानीय लोगों के अनुसार यह पूर्व में चेरों की बस्ती थी। यहाँ से शोधार्थी को ताँबे के दो लिखित सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनकी भाषा अरबी है। एक सिक्के के मुख्य भाग पर इब्राहीमशाह तथा पृष्ठ भाग पर खलीफा अबुलफतह का नाम अंकित हैं(छायाचित्र संख्या–40)। दूसरे सिक्के के मुख्य भाग पर मुहम्मदशाह अंकित है। इसके पृष्ठ भाग पर अंकित लेख घिस जाने के कारण अपाठ्य है। यहाँ से

आरम्भिक मध्यकाल के लाल रंग के मृदभाण्ड मिले हैं जिनमें टोटीदार बर्तन, घडे, कटोरे, बेसीन आदि शामिल हैं।

27. मोरवन मठिया :

यह तमकुही से 6 किमी0 दक्षिण–पूर्व तमकुही–तरेया मार्ग के दक्षिण ओर स्थित है। गाँव के पश्चिम में स्थित यह स्थल लगभग 7 एकड़ में फैला हुआ है। 30×25 वर्गमीटर के एक टीले को छोड़कर सम्पूर्ण स्थल समतल हो चुका है तथा उनके उपर कृषि कार्य हो रहा है। टीला जमीन से 2 मीटर ऊँचा है। टीले पर 3–4 सौ वर्ष पुराना एक बेल का पेड़ है। यह स्थान स्थानीय लोगो में 'योगी वीर बाबा का स्थान' नाम से जाना जाता है। यहाँ से 22 वलय कूप के प्रमाण मिले हैं। यहाँ जमीन के अन्दर पक्की ईट की दीवारों के साक्ष्य भी मिलते हैं। ग्रामीणों ने यहाँ से प्राप्त पर्याप्त संख्या में कौड़ियाँ दिखाई। यहाँ से प्राप्त पूर्ण ईट के आकार की माप 40×24×6 सेमी0 है। यहाँ के वलय कूपों के ईटों मे घाठ बने हुए है जो एक दूसरे से आपस में जुड़े हुए है। यहाँ से कुषाणयुगीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए है जिनमें टोटीदार बर्तन, घड़े, कटोरे घुंडीदार ढक्कन, सुपारी के आकार की मिट्टी की गुड़िया (Beads) तथा जानवर का मिट्टी का खिलौना शामिल हैं।

28. दनियाड़ी :

यह पुरास्थल तमकुही–सिसवा मार्ग पर तमकुही से 18 किम0 पूर्व में स्थित है। यह लगभग 14 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। वर्तमान में सम्पूर्ण भाग समतल हो चुका है और उस पर कृषि कार्य किया जा रहा है। यहाँ से लाल रंग के बर्तन, परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र एवं कुषाणयुगीन टोटीदार बर्तन, चौडे मुँह के घड़े, बेसीन तथा तस्तरी प्राप्त हुए हैं।

29. फाजिलनगर :

फाजिलनगर का टीला सठियाँव से उत्तर–पूर्व में लगभग 800 मीटर की दूरी पर कसया–तमकुही मार्ग के बायीं ओर स्थित है। कसया से इसकी दूरी

लगभग 18 किमी0 दक्षिण–पूर्व में है। लगभग 100 मीटर लम्बे एवं 70 मीटर चौड़े क्षेत्र में फैले इस टीले की ऊँचाई लगभग 7 मीटर हैं जो ईट के टुकड़ से पटा पड़ा है (छायाचित्र संख्या–41)। इसके पूर्व में एक बड़ा सा तालाब है। वर्तमान में टीले के उपर एक प्राचीन कर्ना वृक्ष के नीचे एक मजार हैं जिसे लोग 'सइदन बाबा की मजार' कहते है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल रूप में टीले का आकार इससे बहुत अधिक रहा होगा।

1876 ई0 में जनपद में प्राचीन स्थलों के सर्वेक्षण के दौरान ए0सी0एल0 कार्लाइल ने इस टीले का निरीक्षण किया था। उनका मत है कि फाजिलनगर का टीला उस स्तूप को द्योतित करता है जिसका निर्माण मल्लों द्वारा बुद्ध के अस्थि अवशेष पर किया गया था। 1979–80 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृत विभाग द्वारा इस टीले का उत्खनन कराया गया था जहाँ से गुप्त काल से लेकर मध्य काल तक के अवशेष मिले थे। इसका विस्तृत विवरण अध्याय 3 में दिया जा चुका है।

शोधार्थी ने इस टीले का पुनः गहन सर्वेक्षण किया जहाँ से कुषाण एवं मध्य युगीन लाल रंग के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए, जिनमें बेलनाकार चूड़ीदार ढक्कन जो स्पिंकलर का ढक्कन हो सकता है, टोटीदार बर्तन, बेसीन (लाल स्लिप से बाहर की ओर डिजाइन किया हुआ), कढाही, कटोरा, तस्तरी एवं ढक्कन शामिल है। दीवारों से प्राप्त पकी हुई पूर्ण ईटों की माप $38 \times 22 \times 6$ सेमी0 तथा $40 \times 24 \times 7$ सेमी0 है।

30. सठियाँव :

यह पुरास्थल कसया से 18 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा फाजिलनगर से लगभग 500 मीटर की दूरी पर दक्षिण में स्थित है। टीले के थोड़े से दक्षिणी–पूर्वी भाग को छोड़कर सम्पूर्ण हिस्से पर गाँव बसा हुआ है। गाँव के चतुर्दिक नीचा धरातल सूचित करता है कि पूर्व में यह स्थल सभी ओर से तालाब से घिरा रहा होगा। वर्तमान में स्थल के दक्षिण तथा उत्तर–पश्चिम में एक–एक बड़े तालाब है। यहाँ से दक्षिण–पश्चिम में कुछ दूरी पर अन्हया नाला बहता हैं। यह लगभग 35

एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ हैं (छायाचित्र संख्या–42)। प्रथमतः 1876 में इस स्थल के पुरातात्विक महत्व को प्रकाश में लाने का श्रेय कार्लाइल को है जिन्होनें इसे मल्लों की राजधानी पावा बताया था। इसी सन्दर्भ में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृत विभाग ने 1979–80 में सठियाँव ग्राम के एक गड्ढे की सफाई करायी थी, जहाँ से पक्की ईटों से निर्मित दीवार के साथ–साथ लाल रंग के बर्तन, कृष्ण लेपित बर्तन के कुछ टुकड़े, उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र तथा काले और लाल रंग के मृदभाण्डों के टुकड़े मिले थे। इसका विस्तृत विवरण पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

शोधार्थी द्वारा भी इस स्थल का सर्वेक्षण किया गया जहाँ धरातल पर पक्की ईटों की अनेक दीवारें तथा वलय कूप दिखाई दिये तथा उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र, लाल पात्र और मध्ययुगीन लाल रंग के पात्र–खण्ड प्राप्त हुये हैं जिनमें कटोरे, घड़े, तस्तरी, हाड़ी, हत्थायुक्त कड़ाही शामिल है। कृष्ण लेपित पात्र–खण्ड भी यहाँ से प्राप्त हुये। ईटों की माप $40 \times 26 \times 6$ सेमी0 है।

31. अमवाँ :

यह पुरास्थल कसया से लगभग 15 किमी0 दक्षिण पूर्व तथा फाजिलनगर से 3.5 किमी0 पश्चिम में कसया–फाजिलनगर मार्ग के किनारे स्थित है। यह लगभग 2.5 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। इसके सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ से कुषाणयुगीन लाल पात्र परम्परा के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुये है, जिनमें ज्यादतर बेसीन, घड़ा और नाँद के हैं। एक कैरिनेटेड हाड़ी का टुकड़ा भी मिला है जिसके उपर आग पर चढाने का निशान बना हुआ है।

32. मरचैया डीह (सरेया महन्थ पट्टी) :

यह स्थल कसय से लगभग 16 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा फाजिलनगर से 8 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। जनश्रुति के अनुसार मीर्चे की अत्यधिक उत्पादन के कारण इसका नाम मरचैया डीह पड़ा। यह लगभग 1 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसके उपर ईंट के टुकड़े बिखरे पड़े है। इनमें से कुछ की माप $45.7 \times 26 \times 5$ सेमी0 है। यह सम्भवतः मौर्य काल से संम्बन्धित है। इस स्थल की

खोज सर्वप्रथम कार्लाइल ने की थी। शोधार्थी द्वारा इस स्थल का पुनः सर्वेक्षण किया गया। यहाँ से प्राप्त पात्र–खण्डों में परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र से लेकर कुषाण काल तक के बर्तन शामिल है जिनमें कटोरे, तस्तरी, विभिन्न प्रकार के घड़े एवं बेसीन प्रमुख है। यहॉ से लाल पात्र परम्परा के बर्तन तथा कुछ टूटी हुई कुषाण मृण्मूर्तियाँ भी मिली है।

33. नदवॉ–बिशुनपुर :

यह पुरास्थल कसया से लगभग 16 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा फाजिलनगर से 7 किमी0 दक्षिण–पश्चिम, जोकवॉ–जॉवरा लिंक मार्ग पर स्थित है। इसकी खोज सर्वप्रथम ए0.सी0एल0 कार्लाइल ने की थी। शोधार्थी द्वारा इस स्थल का पुनः गहन सर्वेक्षण किया गया। यह लगभग 7 एकड़ में क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसकी ऊँचाई समीपवर्ती भू–भाग से लगभग 3 मीटर है । स्थल से लगभग 150 मी0 की दूरी पर पूर्व की ओर एक तालाब है जो लगभग 2 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। टीले के कुछ हिस्से पर गाँव बसा है, कुछ हिस्से पर खेती हो रही है तथा कुछ खाली पड़ा है। टीले पर चारों ओर ईंट के टुकड़ें प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ पूर्ण ईटों की माप $44 \times 22 \times 6$ सेमी0 तथा $38 \times 19 \times 5$ सेमी0 है। यहाँ से मृण्मूर्तियाँ अत्यधिक संख्या में मिलती हैं। यहाँ से धूसर पात्र, उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र, लाल पात्र आदि के टुकड़े मिले हैं।

यहाँ से एक खाँचेदार मिट्टी का लोढ़ा पूर्ण रूप में प्राप्त हुआ है जिसकी लम्बाई 20 सेमी0 तथा बीच में मोटाई 18 सेमी0 है (छायाचित्र संख्या–43)। बेलनाकार लटकन बहुत संख्या में मिले है जिनमे दोनों किनारो पर धागा बांध कर लटकाने के लिए खाँचे बने हुए है (छायाचित्र संख्या–44)। कुछ पर तारे का चिन्ह अंकित है। सामान्यतः इनकी लम्बाई 6–7 सेमी0 तथा बीच में मोटाई 8–10 सेमी0 है। लाल रंग के मिट्टी के बर्तनों में तसला (बेसीन) घड़े, दीये के ढक्कन, टोटीदार बर्तन, दो कलश (छायाचित्र संख्या–45) एवं गोली प्रमुख है।

यहाँ से विविध प्रकार की मिट्टी की मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में मिली हैं (छायाचित्र संख्या–46 से 51 तक)। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थल मूर्तियों के

निर्माण का केन्द्र था। अतः इनकी मांग अधिक रही होगी तथा सुदूरवर्ती क्षेत्रों मे भी यहॉ से मूर्तियाँ जाती रही होगी। शोधार्थी को प्राप्त मृण्मूर्तियाँ अन्दर से खोखली है। धड के उपर का हिस्सा अलग से बना कर जोड़ा गया है। मूर्तियाँ अलंकृत एवं आभूषण युक्त हैं। नारी मूर्तियों को गले में हार पहने दिखाई गया है तथा केस सज्जा के रूप में पीछे की ओर जूड़ा बँधा हुआ हैं। कानों में अलंकृत कुण्डल सुशोभित है तथा माथे पर बिन्दी को दबा कर बनाया गया हैं । दो मूर्तियाँ साचें की बनी मिली हैं तथा कुछ टूटी हुई मिट्टी की खोखली मूर्तियाँ भी मिली है। कुछ मृण्मूर्तियों के खण्डित हाथ एवं पैर मिले हैं (छायाचित्र संख्या–52) जो आभूषण युक्त है। मूर्तियों के उपर गहरे लाल रंग का लेप लगा है जो कुषाण काल की मूर्तियों में प्रायः मिलता है। इस प्रकार इस पुरास्थल से प्राप्त सारे अवशेष कुषाणकालीन हैं। नदवा से प्राप्त मृण्मूर्तियों का एक अच्छा–खासा संग्रह धनहाँ के एक ग्रामीण के घर रखी हुई हैं। इनमें पुरूष एवं नारी दोनों की मूर्तियाँ शामिल हैं, जो विभिन्न अलंकरणों से सुशोभित हैं । इनमें से अधिकांश हस्त निर्मित हैं तथा कुछ साँचे में ढली हैं। हस्त निर्मित मृण्मूर्तियाँ अपरिष्कृत, कुछ भोंडी, सौष्ठव विहीन और लोकतत्व के अधिक निकट हैं। स्त्री मूर्तियों में मोटे ओष्ठ, उठी हुई आँखे तथा लम्बे कान जो अलग से चिपकाये गये हैं, देखने को मिलते हैं। ये कुषाण काल के कलात्मक वैशिष्टय को द्योतित करते हैं। नथूनों के स्थान पर छिद्र हैं। कुछ मृण्मूर्तियों में नाक को चुटकी से दबा कर बनाया गया हैं। सिर के बाल उत्कीर्ण करके बनाये गये हैं। नाभि को छिद्र द्वारा दिखाया गया हैं। गले में हार, कान में बड़े–बड़े कुण्डल, हाथ में केयूर तथा चूड़ियाँ अलग से बना कर चिपकायी गयी हैं। एक स्त्री मूर्ति एक शिशु को बाँए हाथ से पकड़े हुए अंकधात्री के रूप में निर्मित हैं । सभी मृण्मूर्ति लाल रंग की हैं।

ऐसा प्रतीत होता हैं कि कुषाण काल में प्रस्तर के मूर्तियों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिये जाने के परिणामस्वरूप मिट्टी की मूर्तियों के निर्माण की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

34. बेईली :

यह स्थल नदवॉ से लगभग 2 किमी0 दक्षिण में स्थित है जो गाँव के पूर्व में लगभग 1 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। वर्तमान में यह पूर्णतया समतल हो चुका है तथा इस पर खेती की जा रही है। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा के बर्तन के टुकड़े तथा कुषाणयुगीन लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े मिले हैं। यहाँ से मृण्मूर्तियाँ अधिक संख्या में मिलती हैं। यहाँ से प्राप्त एक बहुए पत्थर की देवी प्रतिमा, मिट्टी का लोटा तथा खिलौने के रूप में चिड़ियाँ गाँव के एक नागरिक के घर रखी हुई हैं। देवी की प्रतिमा चतुर्भुजी है जो शव के ऊपर आरूढ़ हैं। इसके एक हाथ में नरमुण्ड, एक हाथ में कटार, एक हाथ ओठ से लगा हुआ तथा एक हाथ पेट के सामने पात्र पकड़े हुये है। शीर्ष पर पाँच सर्प फन निकाले हुये हैं। इसकी सभी पसलियाँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है (छायाचित्र संख्या–53)। यह काली या चामुण्डा देवी की प्रतिमा हो सकती है। प्रतिमा के नीचे धुएँ का निशान बना हुआ है। देवी के सिर पर करण्ड मुकुट तथा कान में कुण्डल अंकित है।

चामुण्डा की कथा मार्कण्डेय पुराण में विस्तुत रूप से मिलती है। कालिका देवी ने चण्ड तथा मुण्ड नामक दो असुरों को मारकर चण्डिका देवी को समर्पित किया। अतः उन्होने कालिका का नाम चामुण्डा रख दिया।

यस्माच्चण्ड च मुण्डं व गृहीत्वा त्वमुपागता!
चामुण्डेति ततों लोके ख्याता देवि भविष्यसि!![1]

अमरकोश में सप्तमातृकाओं में चामुण्डा का नाम भी उल्लिखित है"चामुण्डा सप्तमातरः" ।[2] मार्कण्डेय पुराण[3] में चामुण्डा को विकराल मुखवाली तथा मुण्डमाला से विभूषित कहा गया है। विष्णु धर्मोत्तर में चामुण्डा को कृश देहवाली कहा गया है जो

---

[1] *मार्कण्डेय पुराण,* अध्याय 5, श्लोक 6।

[2] *अमरकोश,* प्रथमकाण्ड, श्लोक 2।

[3] *मार्कण्डेय पुराण,* अध्याय 11, श्लोक 21।

सर्पो का आभूषण धारण करती है तथा मुख, दन्त युक्त होता है।[1] अपराजित पृच्छा मे इसे शवारूढ़ कहा गया है "शवारूढ़ तु चामुण्डा जंघे घण्टावलम्बिके"। रूपमण्डन के अनुसार यह देवी अपने हाथो में यथा-स्थान त्रिशूल, खेटक, खण्ड, धनुष, पाश, अंकुश, बाण, कुठार, दण्ड, गदा, वज्र धारण करती है। चामुण्डा की प्रस्तर मूर्तियँ मुख्य रूप से एलौरा, वेलौर, कुम्भकोणम[2], जयपुर[3] तथा तमिलनाडु[4] से मिली है।

35. धनहाँ :

यह पुरास्थल फाजिलनगर से लगभग 7 .5 किमी0 दक्षिण-पश्चिम तथा कसया से लगभग 18 किमी0 दक्षिण पूर्व में, बेइली से 2 किमी0 दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। घाघी नदी, गॉव के पूरब में बहती है तथा बनी नदी, पुरास्थल के ऊत्तर में। पुरास्थल का अधिकांश हिस्सा क्षतिग्रस्त हो चुका है तथा उस पर कृषि कार्य हो रहा है । जो बचा हुआ भाग है, उसकी माप उत्तर से दक्षिण लगभग 150 मीटर तथा पूरब से पश्चिम 100 मीटर है। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र लाल लेपित पात्र और मध्य युगीन पात्र तथा लाल पर काले रंग की पालिश किये हुए बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुये हैं। इनमें हाड़ी, घड़ा, तस्तरी, बेसीन, ढक्कन व नाँद शामिल है। यहाँ से प्राप्त एक घड़े के उपर काले रंग का चमकदार पालिश है। एक पकी हुयी खंडित ईंट के उपर किसी जानवर के खुर का निशान अंकित है जो गाँव के एक नागरिक के घर रखी हुई है। गाँव से सटे पूर्व की ओर खण्डित ईंटों से निर्मित एक अष्टपदीय वृत्ताकार स्तूप का अवशेष अभी भी विद्यमान है जिसकी ऊँचाई लगभग 4 मीटर तथा परिधि लगभग 30 मीटर है(छायाचित्र संख्या-54)।

36. बकुलहर कला : फाजिलनगर से 4 किमी0 दक्षिण पश्चिम में स्थित, यह स्थल गाँव के पश्चिम एक तालाब के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह स्थल

---

[1] *विष्णु धर्मोत्तर पुराण,* 123, 8-101

[2] राव, गोपीनाथ, *एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी,* पुष्ट 355

[3] बनर्जी, जे0 एन0, *डेवेलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी,* पृ0 507।

[4] लाल, एस0 के0, *फीमेल डिविनिटीज,* चित्र 14 ए,बी0,सी0,

लगभग 50×30 वर्गमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसकी ऊँचाई लगभग 3 मीटर है। वर्तमान में टीले पर एक शिव मन्दिर स्थापित है। सम्पूर्ण टीला ईटों के टुकड़ो से पटा पड़ा है। प्राचीन ईटों की दीवारें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। यहाँ से काले पत्थर की ब्रह्मा की खण्डित मूर्ति (छायाचित्र संख्या–55), शिवलिंग तथा अन्य प्रतिमाएँ मिली है जो 11वीं शताब्दी की प्रतीत होती हैं। ब्रह्मा की प्रतिमा चतुर्मुखी हैं तथा दाढ़ी युक्त हैं। दो हाथ खण्डित हैं तथा दो हाथ स्कन्ध से ऊपर उठे हुए हैं। हाथों में ग्रहित वस्तु की पहचान अस्पष्ट हैं। यहाँ से प्राप्त पूर्ण ईटों की माप 28×22×6 सेमी0 है। टीले के दक्षिण एक वलय कूप अब भी विद्यमान है। गाँव के दक्षिण–पश्चिम दिशा में लगभग 400 मी0 लम्बा एवं 60 मी0 चौड़ा आयताकार तालाब है जिसके किनारे समतल है। जनश्रुति के अनुसार यहाँ किसी मल्ल राजा द्वारा विशेष अवसर पर घुड़ दौड़ का आयोजन किया जाता था, जिसके कारण इसका नाम घोड़धाप पड़ा। यह कमल सरोवर जैसा प्रतीत होता है।

37. उस्मानपुर (वीरभारी टीला) :

यह फ़ाजिलनगर से लगभग 8 किमी0 दक्षिण में स्थित है। स्थानीय लोगों में यह वीरभारी का डीह नाम से प्रचलित है (छायाचित्र संख्या–56)। यह गाँव के पश्चिम में लगभग 300 मीटर की दूरी पर स्थित है। पुरास्थल से 2 किमी0 पश्चिम में सोनवा नाला तथा 3 किमी0 दक्षिण–पूर्व में कटेया सोता बहता हैं। इस पुरा स्थल का सीमित उत्खनन हो चुका हैं जिसका विस्तृत विवरण अध्याय तीन में दिया गया हैं।

शोधार्थी द्वारा भी इस पुरास्थल का गहन सर्वेक्षण किया गया, जहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित के कुछ टुकड़े एवं कुषाण युगीन लाल रंग के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं जिसमें कटोरे, तस्तरी, घड़े, विभिन्न प्रकार के स्टोरेजजार, मिट्टी का खिलौना, लोढ़ा, पहिए एवं कुछ मृण्मूर्तियाँ शामिल हैं।

38. सुमही बुजुर्ग :

यह स्थल फाजिलनगर से लगभग 12 किमी0 दक्षिण में स्थित है। यहाँ से ईटों से निर्मित एक वर्गाकार स्तूप मिला है, जिसकी ऊँचाई लगभग 2 मीटर

है। वर्तमान में इसके ऊपर ग्रामीण लोगों द्वारा सीमेण्ट का लिंग स्थापित कर पूजा किया जाता है (छायाचित्र संख्या–57)। इस वर्गाकार स्तूप के ऊपरी दीवार पर अलंकृत ईटों का अवशेष अब भी विद्यमान है। स्थानीय लोगों से ज्ञात हुआ कि इसके ऊपरी चबूतरे पर काले पत्थर की धड़विहीन कोई मूर्ति थी, जिसे कुछ वर्षों पूर्व फाजिलनगर के स्थानीय लोग उठा ले गये। यदि यह सत्य है तो ऐसा लगता है कि पालों एवं प्रतिहारों के काल में इस स्तूप का प्रयोग मंदिर के रूप में हुआ होगा।

39. गांगी टीकर :

यह स्थल फाजिलनगर से 4 किमी0 उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित है। यह टीला जिसे धूस के नाम से जाना जाता है, गाँव के दक्षिण–पश्चिम लगभग 500 मीटर की दूरी पर स्थित है। घाघी नदी इस पुरा स्थल से पश्चिम में लगभग 4 किमी0 की दूरी पर बहती है। यह स्थल लगभग 2 हेक्टेयर क्षेत्र मे फैला हुआ है तथा इसकी ऊँचाई लगभग 3 मीटर है। वर्तमान में टीले के अधिकांश हिस्से पर कब्रगाह बना हुआ है। यहाँ से प्राप्त मृदभाण्ड के टुकड़े लाल, लाल लेपित है। ये कुषाण काल तथा प्रारम्भिक मध्य काल से सम्बन्धित हैं।

40. सोहंग :

यह स्थल, फाजिलनगर से लगभग 3 किमी0 उत्तर पश्चिम में स्थित है। लगभग 10 एकड़ में फैले इस टीले की ऊँचाई लगभग 4 मी0 है। टीले पर वर्तमान में जनता इण्टर कालेज, सोहंग स्थापित है। टीले के ऊपरी स्तर से बहुत कम मात्रा में कुषाण एवं मध्य कालीन लाल मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए है। कुछ टुकड़े उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के भी हैं। मृदभाण्डों में घड़े, हाड़ी, नाद और ढक्कन शामिल है।

41. करमा टोला :

यह स्थल, फाजिलनगर से लगभग 4 किमी0 उत्तर फाजिलनगर–तुर्कपट्टी मार्ग के किनारे स्थित है। लगभग 2.5 एकड़ क्षेत्र में फैले इस स्थल की ऊँचाई लगभग 5 मीटर है। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र

परम्परा से लेकर गुप्त काल तक के बर्तन, प्राप्त हुए हैं। जिनमें परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित का ढक्कन तथा गुप्त कालीन घड़े का टुकड़ा मिला है। इसके साथ ही यहॉ से कुषाण युगीन बेसीन, चौड़े मुँह वाले घड़े तथा हाड़ी के टुकड़े मिले हैं।

42. छहूँ–अ :

यह गॉव, कसया से लगभग 12.5 किमी0 पूरब तथा फाजिलनगर से लगभग 7.5 किमी0 उत्तर कसया–तुर्कपट्टी मार्ग के किनारे स्थित है। यह पुरास्थल गॉव के उत्तर–पश्चिम दिशा में है। यह लगभग 3 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है। यहॉ से 11वीं सदी की कुछ काले रंग के पत्थर पर निर्मित, हिन्दू प्रतिमाएँ मिली है जिन्हे टीले पर ही स्थापित कर दिया गया है। इनमे सूर्य प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है जो दोनो हाथों में पूर्ण विकसित सनाल पद्म धारण किये हुए है (छायाचित्र संख्या–58)। सूर्य प्रतिमा की ऊँचाई 47 सेमी0 तथा चौड़ाई 25 सेमी0 है। अन्य प्रतिमाओं में गणेश की प्रतिमा 38 सेमी0 ऊँची तथा 19 सेमी0 चौड़ी है। वराह प्रतिमा की ऊँचाई 27 सेमी0 तथा आगे से पीछे तक घड़ 34 सेमी0 लम्बा है (छायाचित्र संख्या–59)। विष्णु के वाराह अवतार के रूप में वाराह एवं नृवराह प्रतिमाओं का अंकन सर्वविदित है, लेकिन यहाँ छः शिशुओं के साथ मातृवारा का अंकन यहाँ की विशेष उपलब्धि है। टीले पर ही एक छोटा सा शिव मंदिर बना है जिसमें 30 सेमी0 ऊँची तथा 25 सेमी0 व्यास का शिव लिंग स्थापित है ।

43. छहूँ–ब :

यह स्थल गाँव के पश्चिम एक तालाब के चतुर्दिक स्थित है। लगभग 5 हेक्टेअर क्षेत्र में फैले इस टीले की ऊँचाई लगभग 2.5 मी0 है। सम्पूर्ण टीले पर प्राचीन ईटों के टुकड़े बिखरे पड़े हैं।

44. बसडीला :

यह पुरास्थल कसया–तुर्कपट्टी मार्ग पर कसया से लगभग 10 किमी0 की दूरी पर, पूर्व में स्थित है। घाघी नदी इस स्थल से तीन किमी0 पूर्व में बहती है। यह लगभग 15 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है। इस स्थल से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र और लाल लेपित पात्र खण्ड प्राप्त हुए हैं।

45. कुशीनगर :

इस पुरास्थल का पूर्ण उत्खनन हो चुका है। उत्खनन से अनेक विहारों के खण्डहर, महापरिनिर्वाण स्तूप (छायाचित्र सं0–60) के साथ–साथ अन्य स्तूपों, चैत्यों के अवशेष, बौद्ध प्रतिमाएँ एवं अन्य कलाकृतियाँ प्रकाश में आयी हैं जिनका विस्तृत विवरण अध्याय 3 में दिया गया है।

46. नरकटिया खूर्द :

यह स्थल कसया–रामकोला मार्ग के किनारे कसया से लगभग 3 किमी0 उत्तर–पश्चिम में स्थित है। यह लगभग 10 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। स्थल के कुछ हिस्से पर कब्रगाह, एक शिव मन्दिर तथा मन्दिर से सटे उत्तर में एक बड़ा सा तालाब है, जिसे 4–5 सौ साल पुराना बताया जाता है। बाकी हिस्सा समतल हो चुका है तथा उस पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ से लाल पात्र परम्परा के बर्तन के टुकड़े मिले हैं। इनमें टोटीदार बर्तन, बेसिन चौड़े मुँह वाले घड़े, नाँद, हाड़ी, कड़ाही, पाटरी डिस्क प्रमुख हैं। एक बर्तन के टुकड़े पर उत्कीर्ण आरेखित डिजाइन बना हुआ है। यहाँ से ऐसा कोई पात्र नही मिला है जिसके आधार पर इनका एक निश्चित काल निर्धारित किया जा सके। अनुमानतः ये कुषाण और मध्ययुगीन पात्र प्रतीत होते हैं।

47. टेकुआटार :

यह स्थल कसया–रामकोला मार्ग पर कसया से 12 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा पडरौना से लगभग 24 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। यह लगभग 13 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है, जो वर्तमान में पूर्णतया समतल हो चुका है और सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ से मध्यकालीन लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए है, जिनमें टोटीदार बर्तन, छिछले तस्तरी, घड़े, हाड़ी आदि शामिल हैं।

48. प्रेमवलियॉ :

यह स्थल कसया–फाजिलनगर मार्ग पर, कसया से लगभग 6 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है । यह टीला गाँव के उत्तर–पश्चिम में लगभग एक किमी0

की दूरी पर है। पुरास्थल के दक्षिण में एक तालाब है । टीले की चोटी पर एक मन्दिर है । यहाँ टूटी प्रतिमाओं का निचला हिस्सा पड़ा हुआ है जिसकी लोग पूजा करते हैं । तालाब सहित इस पुरास्थल का क्षेत्रफल लगभग 3 हेक्टेयर हैं । यह टीला 3 मीटर ऊँचा है । टीले पर प्राचीन ईट के टुकड़े बिखरे पड़े हैं। यहाँ मिट्टी के बर्तन कम मिलते हैं।

49. मैनपुर कोट :

यह पुरास्थल कसया–फाजिलनगर मार्ग पर, कसया से 8 किमी0 पूर्व में प्रेमवलिया से जाने वाली एक उपमार्ग पर स्थित है । यह लगभग 1.5 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई लगभग 10 फीट है । खनुआ नाला इस स्थल से दक्षिण मे बहता है। स्थल के चतुर्दिक वलय कूप के प्रमाण मिलते हैं। यह स्थल ईट के टुकड़ो से पटा पड़ा है, जिसके ऊपर एक पुराना मंदिर स्थित है, जिसमे मैनपुर कोट की देवी का चौरा स्थापित है। टीले को देखने से प्रतीत होता है कि यह देवी के विशाल मंदिर का अवशेष या खण्डहर है । इसमे लखौरी ईटों का प्रयोग किया गया है । टीले के चारों ओर गहरी खाई है जो आजकल झाड़ियों से ढकी हुई है। स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ प्राचीन काल में किसी राजा का किला था और यह देवी उस राज परिवार की कुल–देवी है।

ग्रामीण लोगों से यह भी पता चला है कि नवीन मन्दिर के निर्माण में नींव की खुदाई के समय, जली हुई लकड़ियों, खण्डित मूर्तियों तथा अन्य कलात्मक वस्तुएँ मिली थी। यह स्थान देवी का सिद्धपीठ है जहाँ नवरात्रि के समय देवी के दर्शन हेतु बड़ी संख्या में लोग आते हैं और मेला लग जाता है। देवी मन्दिर के सामने हनुमान जी का एक मन्दिर है।

50. कुलकुला स्थान :

यह स्थल कसया से 8 किमी0 दक्षिण–पूर्व, कसया–तमकुही मार्ग पर, दिलीपनगर कुड़वा के पास घने जंगल में नदी के किनारे स्थित है। यहाँ खुले आकाश के नीचे कुलकुला देवी का चौरा स्थापित है जहाँ प्रति वर्ष नवरात्रि के अवसर पर मेला लगता है। जनश्रुतियों के अनुसार इस स्थान की स्थापना 7 वीं

शताब्दी में नागार्जुन ने की थी। यहॉ ईंट के टुकड़े यत्र–तत्र बिखरे हुए तथा मृदभाण्ड के टुकडे अत्यल्प मात्रा में मिलते हैं।

51. मल्लूडीह :

यह पुरास्थल कसया से 7 किमी0 दक्षिण–पूर्व, कसया–तमकुही मार्ग पर स्थित है । घाघी नदी पुरास्थल से 1 किमी0 पूरब तथा बनी नदी 2 किमी0 ऊत्तर में बहती है । स्थानीय लोगों के अनुसार यह पूर्व में मल्लों की बस्ती थी जिसके आधार पर इसका नाम मल्लूडीह पड़ा। पुरास्थल पूर्णतया समतल हो चुका है जिसके कुछ भाग पर गॉव बसा है तथा शेष भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ से बहुत थोड़ी मात्रा में लाल पात्र परम्परा के मृद्भाण्ड जैंसे–घड़ा, नाँद, कड़ाही, हाड़ी इत्यादि मिले है।

52. मधुरियाँ :

यह पुरास्थल कसया से 8 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा फाजिलनगर से 11 किमी0 उत्तर–पश्चिम, खनुआ नाला के दायीं ओर स्थित है । यह स्थल क्षतिग्रस्त हो चुका है। यहॉ से कुछ लाल बर्तन के टुकड़े तथा लाल लेपित मृदभाण्ड प्राप्त हुए है ।

53. अन्ध्याडीह :

यह कसया से 8 किलो मीटर दक्षिण–पूर्व में स्थित है। पुरास्थल गाँव के दक्षिण ओर है तथा घाघी नदी, इस स्थल से लगभग 1 किमी पूरब में बहती है । यह लगभग 4 हेक्टेअर क्षेत्र मे फैला हुआ है । वर्तमान मे टीले के सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य हो रहा है । इस स्थल से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े, लाल लेपित पात्र तथा मध्यकालीन मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े पुरास्थल के पश्चिमी हिस्से से अत्यल्प मात्रा में मिले हैं।

54. दीधवा खुर्द :

यह पुरास्थल कसया से लगभग 6 किमी0 उत्तर–पश्चिम में स्थित है। यह पुरी तरह समतल तथा क्षतिग्रस्त हो चुका है। वर्तमान में इस स्थल पर

कृषि कार्य किया जा रहा है। यहाँ से बहुत थोड़ी मात्रा में लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकडे मिले हैं।

55. दीधवा बुजुर्ग :

यह पुरास्थल, कसया से 3 किमी0 की दूरी पर ऊत्तर में स्थित है। टीला समतल हो चुका है जिसके अधिकांश भाग पर खेती किया जा रहा है। पुरास्थल का बचा हुआ हिस्सा लगभग 0.05 हेक्टेअर में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई लगभग 4 फीट है। टीले पर अनेक वलय–कूप विद्यमान हैं। टीले के उत्तर पश्चिम में लगभग 100 मी0 की दूरी पर तथा दक्षिण में लगभग 500 मी0 की दूरी पर दो तालाब स्थित हैं। टीले पर एक टूटी हुई मूर्ति रखी हुई हैं जिसकी लोग पूजा करते है। टीले पर ईंट के टुकड़े प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। टीले से प्राप्त ईंटो का उपयोग ग्रामीणों द्वारा अपने घरो के निर्माण में भी किया गया है। गाँव के एक नागरिक द्वारा मुझे कुछ सिक्के दिखाए गये, जो मध्यकाल से सम्वंधित थे। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र, लाल लेपित पात्र तथा मध्ययुगीन मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए है।

56. बलडीहा :

यह स्थल पडरौना तुर्कपट्टी मार्ग पर, पडरौना से 17 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा तुर्कपट्टी से 1 किमी0 उत्तर–पश्चिम में स्थित है। यह लगभग 3 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई समीपवर्ती भू–भाग से लगभग 2 मी0 है। यह गाँव के दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है तथा पुरास्थल के सम्पूर्ण हिस्से पर कृषि कार्य हो रहा है। स्थानीय लोगों द्वारा, पूर्व में इसे डोम राजा का निवास स्थल बताया जाता है। यह कुषाण युगीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थल है। यहाँ से प्राप्त ईटों की माप 38×20×5 सेमी0 तथा 40×22×6 सेमी0 है।

यहाँ से लाल रंग के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं जिनमे विभिन्न आकार के घड़े, कैरीनेटेड हाँड़ी, एक से अधिक खाँचे बने रिंग युक्त घड़े, टोटीदार बर्तन, घुण्डीदार ढक्कन, बेसीन (तसले), तस्तरी, अत्यधिक छोटे आकार के घड़े (miniature vase), हत्था युक्त कड़ाही , सुराही के गर्दन , गोलाकार मिट्टी की

गुरिया, लूप हैण्डिल की कड़ाही, स्प्रिन्कलर तथा मिट्टी का खिलौना गाडी एवं पहिया प्रमुख हैं (छायाचित्र संख्या–61)। गाडी में पहिया लगाने तथा रस्सी लगाकर खींचने के लिए छेद बने हुए है । यहाँ से प्राप्त एक मिट्टी के बर्तन के ऊपर रस्सी की छाप मिलती है (छायाचित्र संख्या–62)। यहाँ से प्राप्त कुषाण युगीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवशेष इत्र छिड़कने वाला मिट्टी का उपकरण (Sprinkler) है ।

57. कुबेर स्थान :

यह स्थल पडरौना–तुर्कपट्टी मार्ग पर तुर्कपट्टी से 5 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा पडरौना से 10 किमी दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यहाँ डेबरिस के ऊपर मिट्टी का मोटा जमाव है, इसलिए यहाँ से मिट्टी के बर्तन अथवा अन्य कोई पुरा–सामग्री प्राप्त नहीं होते। यहाँ टीले पर भगवान शिव का एक मंदिर है, जिसमें विशाल ज्योतिलिंग स्थापित है। यह लिंग काले पत्थर का है जो 10वीं–11वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। यहाँ शिवरात्रि के दिन हजारो लोग श्रद्धापूर्वक जल चढ़ाते हैं और भगवान शिव की आराधना करते हैं।

जनश्रुतियों एवं पौराणिक आख्यानों के अनुसार वैश्रणव महर्षि मुलस्त्य का पौत्र था। उसे देवताओं ने धन–कुबेर का पद देकर लोकपाल नियुक्त किया। उसने सोने की लंका का निर्माण किया। बाद में रावण के प्रभाव से वह लंका छोड़कर इसी स्थान पर आकर बस गया, जिसके कारण इस स्थान को कुबेर स्थान कहा जाता है। उसने शिव की अराधना के लिए यहाँ शिवलिंग की स्थापना की। यह लिंग, काल के प्रवाह में भूमि में दब गया और बाद में यहाँ के टीले की मिट्टी हटने पर पुनः इस शिव लिंग का दर्शन हुआ और तब से यह हिन्दूओं का पवित्र स्थान बन गया।

58. कोहरवलियाँ :

कोहरवलियाँ गाँव, पडरौना से 11 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा फाजिलनगर से 13 किमी0 उत्तर में कुबेर स्थान के पास स्थित है। यह एक प्राचीन तलाब के के चतुर्दिक फैला हुआ है। तालाब सहित यह लगभग 16 एकड़ क्षेत्र में

फैला हुआ है तथा समीपवर्ती भूभाग से इसकी ऊँचाई लगभग 3 मी0 है। तालाब के उत्तरी किनारे एक देवी का स्थान है, जो स्थानीय लोगों में जलपादेवी के नाम से जाना जाता है। यहाँ से गुप्तोत्तर काल से सम्बंधित, कुछ हिन्दू सिक्के प्राप्त हुए हैं। यहाँ से मिट्टी के बर्तन के टुकड़े बहुत कम मात्रा में मिलते हैं।

59. खंडवार पिपरा :

यह स्थल पडरौना–तुर्कपट्टी मार्ग के पूर्व पडरौना से लगभग 14 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यहाँ देवी का भव्य मंदिर और चौरा स्थापित है। यह देवी का सिद्ध पीठ माना जाता है। यहाँ नवरात्रि में भारी भीड़ होती है और लोग अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए देवी की अराधना करते हैं।

जनश्रुतियों के अनुसार प्राचीन काल में इस क्षेत्र के राजा मदनसेन थे और उनके राज्य में थावे (जिला गोपालगंज, बिहार) क्षेत्र में निवास करने वाले हरसू गुरू को देवी का इष्ट प्राप्त था। राजा ने हरसू गुरू से देवी का प्रत्यक्ष दर्शन कराने को कहा तथा ऐसा न होने पर मृत्यु–दण्ड देने की घोषणा की। गुरू को मजबूर होकर देवी का आह्वान करना पड़ा। देवी, कलकत्ता से आकर खंडवार पिपरा में स्थिर हो गई । कुछ समय तक यहाँ देवी के स्थिर होने के कारण, यह सिद्ध पीठ बन गया।

60. घोरघटिया :

यह पुरास्थल पडरौना से लगभग 10 किमी0 दक्षिण–पूर्व कठकुईया रेलवे स्टेशन से 1.5 किमी0 दक्षिण, कटकुईया–कुबेर स्थान लिंक मार्ग पर स्थित है। यह लगभग 3 एकड़ क्षेत्र मे फैला हुआ है। यह स्थल आस–पास की जमीन से लगभग 2 मीटर ऊँचा है। इसके कुछ भाग पर आवासीय मकान बने हैं तथा शेष भाग पर कृषि कार्य हो रहा है।

यहाँ से कुषाण एवं मध्य युगीन लाल रंग के बर्तन, जिनमें टोटीदार बर्तन, चौड़े मुँह वाले घड़े, बेसीन, हाँड़ी तथा नाँद शामिल है, प्राप्त हुए है।

61. बड़गाँव : यह पुरास्थल पडरौना–कुबेर स्थान मार्ग के किनारे, पडरौना से लगभग 7 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यह लगभग 150×100 वर्ग मी0 क्षेत्र

मे फैला हुआ है। आस पास की जमीन से इसकी ऊँचाई लगभग 3 मीटर है। कृषि कार्य के कारण इसका काफी हिस्सा क्षतिग्रस्त हो चुका है। यहाँ बालू की मोटी तह मिलती है। यहॉ से कुषाण युगीन लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जिनमें कैरिनेटेड हाड़ी, डिजाइनदार घड़े, जिसके ऊपर ठप्पा लगा कर डिजाइन बनाई गई है तथा सीधी रेखा में बर्तन के चतुर्दिक, वृत्त के अन्दर डाट की आकृति बनी है(छायाचित्र संख्या–63) शामिल हैं।

62. सिधुवाँ स्थान :

यह स्थान पडरौना–तमकुही रोड मार्ग पर पडरौना से लगभग 3 किमी0 पूर्व दिशा में स्थित है। यह सिद्ध स्थान माना जाता है। यहाँ जैन धर्म के प्रमुख आचार्य श्री सिद्धनाथ जी की समाधि स्थल है। जनश्रुतियों के अनुसार इन्होने इसी स्थान पर साधना की थी और समाधिस्थ हो गये थे। गोरखपुर जनपद के गजेटियर से सूचना मिलती है कि एक सिद्ध महापुरूष ने दक्षिण–पश्चिम से आकर यहाँ साधना की थी एवं सिद्धि प्राप्त कर समाधिस्थ हुए थे।[1] यहाँ ईंट के टुकड़े यत्र –तत्र बिखरे हुए तथा मिट्टी के बर्तन के टुकड़े अत्यल्प मात्रा में मिलते हैं।

63. सिधुवाँ देवलही :

यह पुरास्थल पडरौना से 3.5 किमी0 दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। इसे देवताओं का सिद्ध स्थान माना जाता है। इस गाँव के निकट एक तालाब है। ग्रामीण लोगों से पता चला कि तालाब के निकट मार्ग के मध्य में, पत्थर का एक नोक निकला हुआ था, जिससे आवागमन में बाधा पहुँचती थी। 1954 में यहाँ स्थानीय लोगों ने खुदाई की तो खंडित प्रस्तर का युगलचरण सहित पीठासन प्राप्त हुआ एवं अन्य कलाकृतियाँ भी मिली थी। इनका विस्तृत विवरण बी0 पी0 खेतान ने दिया है।[2] इनके अनुसार यक्ष के चरण की धारीनुमा पादुका गान्धार कला की प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई बहुत बड़ी यक्ष की प्रतिमा रही होगी। बौद्ध

[1] खेतान, बी0 पी0 , महावीर निर्वाण भूमि पावाः एक विमर्श, पृ0 15 (आत्मनिवेदन) वाराणसी, 1992

[2] तदैव, पृ0 125–26।

ग्रन्थो मे अजकापालिक चैत्य की चर्चा मिलती है। संभवतः यही स्थान अजकापालिक चैत्य है। बौद्ध ग्रन्थों में इसे पावा के निकट बताया गया है।

64. देवरहा स्थान :

यह पुरास्थल, पडरौना के उपनगर छावनी के पूरब, कुबेर स्थान जाने वाली सड़क के दायीं ओर स्थित है। यहॉ लगभग 100 मीटर लम्बा तथा 60 मीटर चौड़ा स्तूपाकार एक टीला है, जिसकी ऊँचाई लगभग 4 मीटर है (छायाचित्र संख्या–64)। यह ईटों से पटा पड़ा है तथा ईंट की दीवारे स्पष्ट दिखाई पड़ती है। टीला भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है। टीले के उत्तर में लगभग 300 मीटर की दूरी पर, एक पाकड वृक्ष के नीचे एक छोटा सा मंदिर है। मन्दिर में, काले पत्थर की किसी जैन तीर्थंकर की मूर्ति रखी हुई है, जो स्थानीय लोगों द्वारा 'हठी भवानी' के रूप में पूजित है (रेखा चित्र संख्या–5)। यह पद्मासन में ध्यानावस्थित मुद्रा वाली काले पत्थर की पुरूष प्रतिमा हैं। इसके ऊपर तीन छत्र सुशोभित हैं, जो क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर छोटे होते चले गये हैं। इसके लम्बे कान कुण्डल युक्त हैं,। मूर्ति के बाँए भाग में कलात्मक मुद्रा में उपेन्द्र की मूर्ति हैं जिसके दाहिने हाथ में चँवर सुसज्जित हैं औंर बायाँ हाथ नीचे की ओर दोनों जंघो के मध्य स्थित हैं। केश–विन्यास बहुत की कलात्मक हैं। कठि के ऊपर का भाग निर्वस्त्र हैं औंर अधोभाग घुटने के नीचे तक वस्त्रयुक्त हैं। वस्त्र धारण की शैली बहुत कलात्मक हैं। इस मूर्ति के ठीक ऊपर एक पुरूष की कलात्मक चैतन्य स्थिति में बैठी हुई मूर्ति हैं, जो दोनों हाथों से तलवार धारण किये हुए हैं। इसका दायाँ पैर नीचे की ओर तथा बायाँ पैर ऊपर की ओर मुड़ा हुआ हैं औंर इसके ठीक ऊपर डमरू निर्मित हैं, जिसको बजाते हुए दो नारी हाथ दृष्टिगोचर होते हैं।

मूर्ति के नीचे बायीं ओर सिंह की मुखाकृति निर्मित हैं,जो शान्त मुद्रा में हैं। मूर्ति के नीचे मध्य में अत्यन्त सुन्दर पंखुड़ियों वाला कमल निर्मित हैं। कमल के ऊपर बैठी हुई एक नारी की मूर्ति हैं जो सिर पर मुकुट तथा कान में कुण्डल धारण किंये हुए हैं। इस मूर्ति के कटि के ऊपर का भाग निर्वस्त्र, नीचे का भाग वस्त्रयुक्त हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि नारी के बायें हाथ में एक निर्वस्त्र बालक

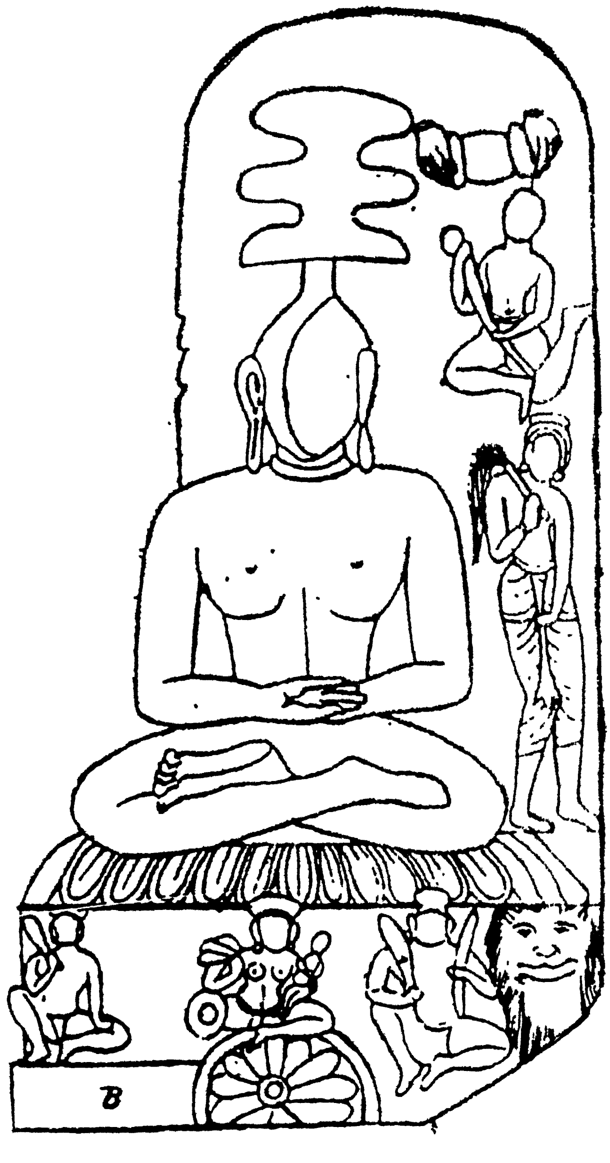

रेखा चित्र संख्या–5

जैन तीर्थंकर की प्रस्तर प्रतिमा, देवरहा (छावनी, पडरौना)

औंर दाहिने हाथ में कमल की पंखुड़ियॉ हैं। यह मूर्ति किसी आसन के सहारे पर बैंठी हुई प्रतीत होती हैं। इस मूर्ति के दोनों ओर दो मालाधारी विद्याधर अंकित हैं, जिसमें बायें पार्श्ववाले पुरूष के दाहिने हाथ में मूसल तथा बायें हाथ में अत्यन्त मजबूती से पकड़ी गई तलवार हैं। दाहिनी ओर की मूर्ति के दाहिने हाथ में मूसल सदृश कोई वस्तु हैं तथा उसका बायाँ हाथ उसके जाँघ पर हैं। हर दृष्टि से यह मूर्ति बहुत ही भव्य, अद्भुत एवं कला–प्रतिभा का श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

पूर्व में इस टीले का सीमित उत्खनन हो चुका है। यहाँ से बौद्ध, जैन एवं हिन्दू धर्म से सम्बन्धित अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। इसका विस्तृत विवरण अध्याय 3 में वर्णित है ।

64. लमुहा :

यह स्थान, पडरौना से 4.5 किमी0 दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर एक विशाल टीला रहा होगा, जिसके ऊपर वर्तमान में गाँव बसा हुआ है। स्थानिय लोगों के अनुसार पूर्व में यहाँ से अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी, जो उठाकर अन्यत्र चली गयीं।

65. गांगरानी :

यह पुरास्थल पडरौना से दक्षिण–पूर्व दिशा मे 7 किमी0 की दूरी पर स्थित है। गाँव के पश्चिम में एक बड़ा सा तालाब है। तालाब के उत्तर में टीले के अवशेष विद्यमान है। स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ बहुत पहले बहुत सी मूर्तियाँ पड़ी हुई थी। परन्तु सर्वेक्षण के दौरान एक भी मूर्ति देखने को नही मिली।

66. रवीन्द्रनगर :

यह जनपद का नव–निर्मित मुख्यालय है, जो पडरौना से 6 किमी0 दक्षिण में पडरौना–कसया मार्ग पर स्थित है। यहाँ अनेक छोटे बड़े टीले दिखाई पड़ते हैं जो पश्चिम से पूर्व की ओर फैले हुए है। इनके बीच से होकर पडरौना–कसया मार्ग गुजरता है। स्थानीय लोगों को यहाँ से खुदाई के दौरान बुद्ध, महावीर, लक्ष्मी, गणेश आदि की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं जिसे देखने का सुअवसर शोधार्थी को भी मिला। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े तथा

कुषाण काल के लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले हैं जिनमें घड़े, कटोरे, तस्तरी, बेसीन इत्यादि शामिल है।

68. सेहुवाडीह :

यह स्थल पडरौना से 10 किमी0 पश्चिम तथा रामकोला से 5 किमी0 पूर्व में स्थित है। यह पुरास्थल कृषि कार्य के कारण आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गया है । यहाँ से खुरदुरे ईंट के टुकड़े, लाल पात्र तथा मध्यकालीन मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए है।

69. नौगावाँ इन्द्राही :

यह स्थान, बनरी नदी के बायीं ओर स्थित है। स्थल से नदी की दूरी लगभग 800 मीटर दक्षिण में है। झरही नदी इस स्थल से 1.6 किमी0 पूर्व में बहती है। यह स्थल पडरौना से लगभग 24 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है, जो लगभग 1.5 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है। मानव क्रिया–कलापों के चलते, स्थल पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया है। यहाँ से लाल एवं लाल लेपित मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जो कुषाण एवं प्रारंभिक मध्यकाल से सम्बंधित है। बर्तनों मे पाटरी डिस्क, कैरीनेटेड हाड़ी, तस्तरी, नाद आदि प्रमुख है।

70. कुकरहाँ :

यह स्थल पडरौना से लगभग 19 किमी0 उत्तर–पश्चिम में, बॉसी नदी के दाहिने तरफ स्थित है। रामकोला से इसकी दूरी लगभग 21 किमी0 उत्तर–पूर्व में है। यह लगभग 1 हेक्टेअर क्षेत्र मे फैला है। यहाँ से लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।

71. मठिया बुजुर्ग :

यह स्थल, खड्डा से लगभग 4 किमी0 दक्षिण तथा छितौनी रेलवे स्टेशन से लगभग 9 किमी0 पश्चिम में स्थित है। पडरौना से इसकी दूरी लगभग 28 किमी0 उत्तर–पश्चिम में है। इस स्थल के पश्चिम में लगभग 1.5 किमी0 की दूरी पर बनी नदी बहती है। इसके पास ही एक ताल स्थित है जो नदी से मिला हुआ है। यह पुरास्थल लगभग 1.5 हेक्टेअर क्षेत्र मे फैला हुआ है। इस पुरास्थल से

कृष्ण लेपित मृदमाण्ड तथा लाल लेपित मृदमाण्ड के टुकडे प्राप्त हुए हैं जिनमें तस्तरी ,घड़े, वेसीन, टोटीदार बर्तन, घुण्डीदार ढक्कन, हॉडी, नाद आदि शामिल है

72 चमडीहा :

यह स्थल खड्डा रेलवे स्टेशन से लगभग 3 किमी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है । टीले के पास एक बड़ा सा तालाब है। 2 हेक्टेअर क्षेत्र मे फैला हुआ यह टीला, अंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गया है। यहाँ से केवल मध्यकालीन लाल रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े, यथा–हाड़ी, कड़ाही, चौड़े मुँह वाले घड़े, टोटीदार, तस्तरी प्राप्त हुए हैं। स्थल के चारों ओर कुछ ईंट के बड़े टुकड़े भी दृष्टिगोचर होते हैं।

73. वनमोर्चा :

यह पुरास्थल कसया–गोरखपुर मार्ग पर स्थित, हेतिमपुर से 3 किमी0 दूर दक्षिण में छोटी गण्डक के किनारे हथियागढ़ मार्ग पर स्थित है। कुशीनगर से इसकी दूरी लगभग 5 किमी0 दक्षिण–पश्चिम है। यह लगभग 11 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई लगभग 2.5 मीटर है। किंवदन्ती हैं कि यहाँ पर किसी थारू राजा का किला था जो 52 बीघे क्षेत्र में फैला हुआ हैं। इसके प्रमाण आज भी पुरास्थल पर छोटे–छोटे टीले के रूप में दिखायी पड़ते हैं। टीले पर देवी का स्थान तथा एक राम–जानकी मंदिर है। टीले के पश्चिम में एक बड़ा सा तालाब तथा तालाब के चतुर्दिक प्राचीन भवनों के खण्डहर विद्यमान है जिनकी ईंटो से निर्मित चौड़ी दीवारें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है (छायाचित्र संख्या–65)। स्थानीय लोगो के अनुसार इस टीले से अनेक छोटी–छोटी मूर्तियाँ और मिट्टी के पात्र मिले थे।

74. भिसवाँ रामपुर :

यह स्थान कुशीनगर सुकरौली के बीच, ढाढ़ा कस्बे से दक्षिण पश्चिम लगभग 2 किमी0 की दूरी पर स्थित है। हाटा से इसकी दूरी लगभग 7 किमी0 दक्षिण पश्चिम में है। यह टीला पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है। भिक्षु धर्मरक्षित ने

इसे मल्लों का प्राचीन निगम 'अनुपिया' माना है[1], जो अन्य विद्वानों को मान्य नहीं है। यहॉ मझना नाला के किनारे अनेक खण्डहर दिखाई पड़ते हैं। लगभग 25 एकड़ क्षेत्र में फैले इस टीले की ऊॅचाई लगभग 7 मीटर है। टीले के दक्षिण–पश्चिम में लगभग 100 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ झील है, जिसे कुशेसर ताल कहा जाता है। इस बालू के टीले के ऊपर एक देवी का स्थान है जिसे स्थानीय लोग 'मंझरिया देवी का स्थान' कहते हैं। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के कुछ टुकड़े तथा लाल मृदभाण्ड जो प्रारम्भिक मध्य काल से सम्बन्धित है, प्राप्त हुए है।

75. नाऊमुण्डा :

यह पुरास्थल हाटा से 4 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। यह समीपवर्ती जमीन से लगभग 2 फीट ऊँचा तथा 10 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। वर्तमान में स्थल के सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। पुरास्थल के पश्चिम में एक नहर है। टीले पर काली माई का मन्दिर है तथा प्राथमिक विद्यालय, नाऊमुण्डा स्थापित है। सम्पूर्ण भू–भाग पर ईंट के टुकड़े बिखरे हुए मिलते हैं। स्थानीय लो्गो के अनुसार खेतों में मिट्टी की कटाई के दौरान ईट की चौड़ी–चौड़ी दीवारें मिलती है।

यहाँ से प्रारम्भिक उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े मिले है। लाल पात्र परम्परा के अन्तर्गत मिट्टी की गुरिया, बेसीन, घड़े, ओठदार कटोरे नाद मिट्टी का पाइप प्रमुख हैं। एक मोटे लाल बर्तन के ऊपर उत्तरी कृष्ण मार्जित की लेप लगी है जो अब छूट रही है। सम्भवतः यह पाटरी स्टैंण्ड है।

76. बढेया खूर्द :

यह पुरास्थल कसया–गोरखपुर मार्ग के किनारे हाटा से लगभग 7 किमी0 पश्चिम में स्थित है। यह लगभग 200×150 लम्बे–चौड़े क्षेत्र मे फैला हुआ है जो आस पास की जमीन से लगभग 3 फीट ऊँचा है। वर्तमान में सम्पूर्ण भूमि पर कृषि कार्य हो रहा है। यह स्थल गाँव के पूरब में स्थित है तथा इसके

---

[1] बुद्धमित्र, भगवान बुद्ध के समकालीन अनुयायी तथा बौद्ध केन्द्र, गोरखपुर 1999, पृ0 226।

उत्तर–पश्चिम में 1 किमी0 की दूरी पर मझना नाला बहता है। पुरास्थल के ऊपरी भाग पर लाल मृदभाण्ड तथा ईंटो के टुकड़े बिखरे हुए मिलते हैं। यहाँ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के कुछ टुकड़े तथा प्रारम्भिक मध्य काल के लाल रंग के मृदभाण्ड प्राप्त हुए है, जिनमें टोटीदार बर्तन, तस्तरी तथा कटोरे शामिल हैं।

77. भरकुलवाँ :

यह पुरास्थल हाटा से 5 किमी0 पश्चिम, कसया–गोरखपुर मार्ग के किनारे स्थित है। यह लगभग 0.5 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है, जो जमीन से लगभग 1 फूट ऊँचा है। स्थल के अधिकांश भाग पर मकान बन चुके हैं तथा शेष बचे हिस्से पर बाजार लगता है। स्थानीय लोगों के अनुसार यह पूर्व में बंजारो का निवास स्थल था। यहाँ से शुंग–कुषाण युगीन मिट्टी के साधार कटोरा, हाड़ी, घड़ा तथा तस्तरी प्राप्त हुए हैं। मिट्टी के एक बर्तन के ऊपर स्टाम्प डिजाइन किया हुआ है।

78. डुमरी मलाँव :

यह स्थल कसया–गोरखपुर मार्ग के किनारे, हाटा से लगभग 6 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा सुकरौली से 3 किमी0 उत्तर में स्थित है जो समीपवर्ती जमीन से 2 फीट ऊँचा है तथा यह लगभग 3 एकड़ बीघा क्षेत्र में फैला हुआ है। वर्तमान में सम्पूर्ण भाग पर कृषि कार्य हो रहा है। यहाँ से ईंट के टुकड़े बिखरे हुये मिलते हैं। कुषाणयुगीन लाल रंग के चौड़े मुँह वाले घड़े, कटोरे, तस्तरी, टोटीदार बर्तन, पाटरी डिस्क, मिट्टी के खिलौने आदि यहाँ से मिले है।

79. घोटप भिसवाँ :

यह पुरास्थल हाटा से 6 किमी0 उत्तर–पश्चिम, हाटा–मधवापुर लिंक–मार्ग से 3 किमी0 पश्चिम में स्थित है। यह गाँव के पूरब में स्थित लगभग 7–8 मीटर ऊँचा बालू का टीला है। टीले के पश्चिम में एक बड़ा सा तालाब है। तालाब के उत्तर में 2.5 फीट व्यास का एक वलयकूप विद्यमान है। स्थानीय लोगो के अनुसार यह पूर्व में थारूओं का निवास स्थल था। यह लगभग 500×400 मी0 लम्बे–चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। टीले के कुछ भाग पर कृषि कार्य हो रहा है तथा

बाकी भाग खाली पडा है। यहॉ से परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के कुछ टुकडे तथा लाल रंग के चौडे मुँह के घडे तथा बेसिन मिले हैं।

80. देउरवाँ :

यह पुरास्थल हाटा से उत्तर–पश्चिम दिशा में लगभग 5 किमी0 की दूरी पर स्थित है। यहाँ पहुचने के लिए कोई सड़क मार्ग नहीं है और पगडंडी एवं चकरोडो से होकर जाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह गाँव टीले पर ही बसा है जिसकी ऊँचाई आसपास के जमीनी स्तर से लगभग 1.5 मी0 है। गाँव के दक्षिण में एक वृक्ष के नीचे देवी का स्थान है। जहाँ से बहुत कम मात्रा में बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। यहाँ से प्राप्त पात्रों में लाल रंग के पात्र तथा अत्यल्प मात्रा में परवर्ती उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े प्राप्त हुये हैं। लाल रंग के मृदभाण्ड, कुषाण युगीन हैं। जिनमें ढक्कन, हाड़ी, घड़े तथा बेसीन शामिल है।

81. झाँगा :

यह पुरास्थल हाटा से 4 किमी0 उत्तर–पश्चिम में, हाटा मधवापुर लिंक मार्ग के किनारे स्थित है। यह लगभग 150×100 मीटर लम्बे–चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है जिसकी ऊँचाई लगभग 2 मीटर है। पुरास्थल पर ईंट के टुकड़े बिखरे पड़े हैं। यहाँ से शुंग–कुषाण युगीन लाल पात्र परम्परा के बर्तन प्राप्त हुए हैं। जिनमें चौड़े मुँह के घड़े, कैरीनेटेड हाड़ी, जिसके ऊपर मिट्टी का लेप लगा है तथा लेप के ऊपर जले का निशान है, प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त, तस्तरी, बेसिन, नाद, एक बर्तन पर लहरदार लाईन एवं वृत्त के अन्दर डाट की आकृति ठप्पा लगाकर बनायी गयी है। यहाँ उल्लेखनीय है कि ठप्पा जैसा चिन्ह, शुंग कालीन बर्तनों की प्रमुख विशेषता है।

82. झरूआ डीह :

यह पुरास्थल हाटा सोनबरसा–लिंक मार्ग पर, हाटा से लगभग 3 किमी0 उत्तर–पश्चिम में स्थित है। यहाँ एक बड़ा सा ताल है । यह लगभग 1.5 हेक्टेअर के क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ से लाल रंग के मध्यकालीन मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।

83. थरूआडीह :

यह स्थल हाटा से लगभग 1.5 किमी0 की दूरी पर पश्चिम में स्थित है। यहाँ से लाल एवं लाल लेपित मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जो प्रारम्भिक मध्य काल से सम्बन्धित है।

84. महुवाडीह :

यह पुरास्थल कुशीनगर से लगभग 10 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा हाटा से लगभग 9 किमी0 उत्तर–पूर्व में, छोटी गण्डक नदी के बायें किनारे पर स्थित है। यह लगभग 5 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है। टीले पर एक दुर्गा जी का मंदिर है। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के कुछ टुकड़े तथा लाल रंग के आरम्भिक मध्यकालीन मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।

85. मुँजडीहा :

यह पुरास्थल हाटा से लगभग 26 किमी0 उत्तर–पूर्व तथा बोदरवार रेलवे स्टेशन से 8 किमी0 उत्तर में स्थित है । यह लगभग 3 हेक्टेअर के क्षेत्र में फैला हुआ है। पुरास्थल के दक्षिण पश्चिम में एक प्राचीन मंदिर है। यहाँ से प्राप्त मृदभाण्डों में उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र तथा रूक्ष लाल पात्र के टुकड़े उल्लेखनीय हैं।

86. मगडीहा :

यह पुरास्थल, हाटा से लगभग 13 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा बोदरवार रेलवे स्टेशन से लगभग 7 किमी0 दक्षिण–पश्चिम स्थित है। स्थल के समीप उत्तर–पश्चिम में एक तालाब है। यह लगभग 0.50 हेक्टेअर क्षेत्र मे फैला हुआ है। यहाँ से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के कुछ टुकड़े तथा आरम्भिक मध्यकालीन लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुये हैं, जिनमें हाड़ी, घड़े, तस्तरी, ढक्कन, नाँद, बेसीन आदि शामिल हैं।

87. तुर्कडीहा : यह पुरास्थल हाटा से लगभग 15.5 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा कप्तानगंज से लगभग 12.5 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। इस स्थल से

मझना नाला, पश्चिम की ओर 1 किमी0 की दूरी पर बहती है । यह लगभग 1.5 हेक्टेअर क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसका अधिकांश भाग क्षतिग्रस्त हो चुका है तथा शेष हिस्से पर निर्माण कार्य हो रहा है । यहॉ से आरम्भिक मध्यकालीन लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकडे प्राप्त हुए हैं।

88. अमडीहा :

यह स्थल कप्तानगंज से लगभग 6.5 किमी0 पश्चिम तथा बोदरवार रेलवे स्टेशन से लगभग 3.5 किमी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है। यह लगभग 4 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ से लाल रंग के मृदभाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। यहाँ से ऐसा कोई पात्र नही मिला है जिससे इनका समय निर्धारित किया जा सके।

89. पपउर :

यह स्थल पडरौना रामकोला मार्ग पर, पडरौना से 12 किमी0 उत्तर–पश्चिम तथा रामकोला से 6 किमी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है। यह स्थल गाँव के पश्चिम में लगभग 500 मीटर की दूरी पर है। स्थानीय लोग इसे देउरवा डीह के नाम से पुकारते हैं। यहाँ दो स्तूपाकार टीले आस–पास हैं, जिनमें एक बड़ा है और दूसरा छोटा है। छोटे टीले का अधिकांश भाग खेती में बदल चुका है। ईटों के टुकड़ो का जो अवशेष बचा हैं वह जमीन से लगभग 2.5 मी0 ऊँचा है तथा इसकी परिधि लगभग 41 मीटर है।

बड़े टीले की ऊँचाई लगभग 7 मीटर है तथा क्षेत्रफल लगभग 150×150 वर्गमीटर है (छायाचित्र सं0–66)। वर्तमान में सम्पूर्ण टीले पर कृषि कार्य हो रहा है। इसके ऊपरी सतह से ईंट के टुकड़े, उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र के टुकड़े तथा बाद के ठीकरें, चारों तरफ फैले हुए मिलते है।

दोनों टीलों के अतिरिक्त पुरानी आबादी के भरपूर चिह्न उत्तर व दक्षिण में दूर तक दिखाई देते हैं। यद्यपि सब खेत में बदल चुके है, फिर भी पुरानी आबादी के अनेक कुँए और भग्नावशेष दिखाई देते हैं। यहाँ से प्राप्त लाल रंग के मिट्टी के बर्तनों में चौड़े मुँह वाले घड़े, बेसीन तथा कटोरे की पेंदी शामिल है।

अध्याय 5

उपसंहार

कुशीनगर जनपद उत्तर प्रदेश राज्य के उत्तर–पूर्व में $26^0 35'$ $27^0 18'$ उत्तरी अक्षांश तथा $83^0 32'$ से $84^0 26'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य नेपाल की तराई अवस्थित है।[1] गोरखपुर मण्डल से सम्बद्ध इस जिले का सम्पूर्ण भू–भाग प्रारम्भ देवरिया जनपद के अन्तर्गत था । 13 मई सन् 1994 को इस जिले का सृजन किर गया तथा इसका नाम पड़रौना रखा गया। कालान्तर में 19 जून 1997 को प्रसिद्ध बौ स्थल कुशीनगर के नाम पर इसका नामकरण कुशीनगर जिला कर दिया गया पड़रौना, हाटा, तमकुहीराज तथा कसया तहसीलों में विभक्त इस जनपद का क्षेत्रफ 2873 वर्ग किमी0 है । क्षेत्रफल की दृष्टि से जिले का राज्य में 44वाँ स्थान है । से पश्चिम इस जनपद की लम्बाई 80 किमी0 तथा उत्तर से दक्षिण 70 किमी0 है इसके उत्तर में नेपाल दक्षिण में देवरिया पूर्व में बिहार राज्य का गोपालगंज जिला तः पश्चिम में महराजगंज जिला स्थित है ।

मध्य गंगा घाटी में स्थित इस जनपद का सम्पूर्ण भू–भाग प्रायः समत तथा उपजाऊ है । समुद्र तल से 128.6 मी0 की ऊँचाई पर स्थित इस जनपद व ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की तरफ है। अपनी भौगोलिक स्थिति, उर्वर भू तालाबों, झीलों और उनसे निकलने वाली नदियों तथा बड़ी गण्डक और छोटी गण्ड जैसी बड़ी नदियों ,वन्य जीवों और वनस्पतियों से सम्पन्न यह क्षेत्र प्रारम्भिक काल ही मनुष्य के आकर्षण का केन्द्र रहा है ।

मध्य देश (कोशल) में विभिन्न संस्कृतियाँ विकसित हुई , जिन्होंने केवल गंगा के मैदान के सांस्कृतिक स्वरूप का निर्माण किया , अपितु सम्पूर्ण उ

[1] त्रिपाठी, आर0एस0, *हिस्ट्री ऑफ एंशियण्ट इण्डिया*, पृ0 41।

भारत को सास्कृतिक विरासत भी प्रदान की । विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से कोशल महाजनपद (मध्य गंगा घाटी) के इतिहास का जो पुनर्निर्माण किया गया है वह कुशीनगर जनपद पर भी लागू किया जा सकता है। यद्यपि पौराणिक इतिहास को अभी भी इतिहासकार संदेह की दृष्टि से देखते हैं। नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व कुषाण, गुप्त, परवर्ती गुप्त, मौखरि, बर्धन, भर, प्रतिहार, कलचुरि तथा गहड़वाल आदि वंशो नें क्रमशः इस क्षेत्र पर शासन किया। इस तरह हम देखते हैं कि यहाँ के इतिहास में अविच्छिन्नता दिखायी पड़ती हैं।

यद्यपि कुशीनगर जनपद में इस समय मूल आदि जातियाँ[1] बहुत कम रह गयी हैं, और जो हैं, भी वे अन्य जातियों के सामाजिक रीति–रिवाजों और परम्पराओं से अत्यधिक प्रभावित होकर उनके साथ घुल मिल गयी हैं, लेकिन फिर भी उन्नीसवी और बीसवीं शताब्दी में की गयी जनगणन के अनुसार बहेलिया, वधिक मुसहर, कंजड़ आदि जैसी कुछ आखेटक आदिम जातियाँ आज भी विद्यमान हैं। आदिम जातियों के सामाजिक नृतत्वीय अध्ययन से भी प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है।

मध्य गंगाघाटी में स्थित अन्य जनपदों – गोरखपुर, बनारस, जौनपुर, सुल्तानपुर तथा प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश में स्थित जिले तथा सारन वैशाली, गया तथा रोहतास बिहार राज्य में स्थित जिलों की भाँति इस जिले में न तो आखेटक एवं संग्रहक मध्य पाषाणिक संस्कृति, न तो कृषि औंर पशुपालन परक नव पाषाणिक संस्कृति और न ही ताम्र पाषाणिक संस्कृति फली–फूली दिखायी पड़ती है इस तरह हम देखते हैं कि पाषाणिक संस्कृतियों का अभ्युदय इस जनपद में नहीं हो सका। यद्यपि कुशीनगर जनपद पुरात्तव कि दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है और इसका सम्बन्ध ऐतिहासिक काल की संस्कृतियों से है। जनपद से जुड़ी किंवदन्तियों, पुरातात्विक अवशेषों–मूर्तियों, सिक्कों, अभिलेखों और अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त ईटों तथा मंदिरों, स्तूपों और

---

[1] नागर मालती और मिश्र वी0एन0, 1990, *द कन्जर्स–ए–हंटिग गैदरिंग कम्युनिटी ऑफ द गंगा वैली, उ0प्र0, मैन एण्ड इनवायरमेन्ट,* वाल्यूम 15, पृ0 71–78।

बौद्धमतो के अवशेष जनपद में कई स्थानों पर पाये गये हैं। इसका आशय हैं कि जनपद मे विभिन्न ऐतिहासिक संस्कृतियों के पुरातात्विक अवशेष विद्यमान हैं।

कुशीनगर जनपद के पुरातत्व का श्री गणेश सर अलेक्जेण्डर कनिंघम के द्वारा होता है। कनिघम ने सर्वप्रथम 1861 ई0 में कुशीनगर क्षेत्र का पुरातात्विक सर्वेक्षण दो प्रयोजनों को ध्यान में रख कर किया – पहला पुरासामग्रियों का संग्रह तथा दूसरा भगवान बुद्ध से सम्बन्धित स्थलों की पहचान। इस सर्वेक्षण क्रम में अनेक उपेक्षित एवं अज्ञात पुरास्थल प्रकाश में आये। कनिंघम[1] द्वारा कसया के समीप स्थित टीलों के सीमित उत्खनन से कुशीनगर के पहचान का विवाद समाप्त हो गया।

कनिंघम की रिपोर्ट के आधार पर ए0सी0एल0 कार्लाइल ने 1876 – 77 ई0 में कुशीनगर स्थल का उत्खनन कराया और उन्हें महत्वपूर्ण सफलता हाथ लगी। इतना ही नहीं कनिंघम एवं कार्लाइल की दृष्टि मल्लों की दूसरी राजधानी पावा की ओर भी गयी लेकिन पावा की पहचान को लेकर दोनों विद्धानों में मतैक्य नहीं हो सका। कनिघम ने पड़रौना के निकट छावनी नामक टीले को पावा से समीकृत किया तो कार्लाइल ने सठियाँव डीह को, जो आधुनिक फाजिल नगर से लगभग एक किलोमीटर दक्षिण – पश्चिम दिशा में स्थित है पावा होने की सभावना व्यक्त की। उल्लेखनीय है कि पावा की पहचान की समस्या अद्यावधि बरकरार है। कनिंघम एवं कार्लाइल नें जिले के कतिपय अन्य पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण किया कनिंघम ने जनपद के पुरातात्विक स्थलों के साथ – साथ ऐतिहासिक भूगोल को भी ध्यान में रखा जिसका विवरण उनकी पुस्तक इश्न्यिट ज्याग्राफी में दिया गया है कार्लाइल द्वारा सर्वेक्षित, जिले के अन्य स्थल इस प्रकार हैं: सरया, कुकुर पट्टी, नदवाँ, धनहा, उस्मानपुर वनवीरा, मीरविहार, पथरवा, झारमठिया (धारमठिया) करमैनी और गांगीटीकर।[2]

---

[1] कनिंघम, ए0, *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट*, 1861, पृ0 77–83।

[2] कार्लाइल, ए0सी0एल0, *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, टूर्स इन गोरखपुर डिस्ट्रीक्ट*, 1875–76 एण्ड 1876–77, वाल्यूम 18, दिल्ली 1869, पृ0 102।

कार्लाइल के बाद फ्यूहरर ने 1896 ई0 में कुशीनगर जनपद के पुराअवशेषों को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं। फ्यूहरर के बाद बनारस हिन्दू विश्वविद्यायल के प्रोफेसर ए0 के0 नारायण तथा पी0सी0 पन्त ने इस क्षेत्र का पुरातात्विक सर्वेक्षण किया एवं कुछ पुरास्थलों की पहचान करने में सफल रहे। उल्लेखनीय है कि अलेक्जेण्डर कनिंघम द्वारा इस क्षेत्र में प्रारम्भ किये गये कार्य व्यक्तिगत और संस्थागत दोनो माध्यमों द्वारा अद्यावधि जारी हैं। कनिंधम के समय (1860–61) से लेकर अब तक किये गये सर्वेक्षणों एवं उत्खननों से जो परिणाम सामने आये हैं उनसे कुछ हद तक तो इस क्षेत्र के पुरातत्व की समस्या का समाधान हो सका है लेकिन पूर्ण समाधान होना बाकी हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में किये गये कार्यो पर दृष्टि डाले तो देखते हैं कि इस क्षेत्र के ऊपर व्यक्तिगत एवं संस्थागत दोनों तरह के प्रयास हुए है तथा इस क्षेत्र पर काम करने वालों की एक लम्बी सूची भी है। लेकिन दुर्भाग्य ही कहिये कि इन व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्यो का पूर्ण एवं समग्र विवरण प्रकाशित नहीं हो सका है।

जनपद में स्थित दो प्रमुख स्थलों कुशीनगर और पावा को क्रमशः बुद्ध और महावीर के निर्माण स्थल से जोड़ने के कारण इस क्षेत्र के इतिहास की ही नही अपितु भारतीय इतिहास की एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई है। इन दोनों समस्याओं का समाधान पुरातत्व के माध्यम से करने का प्रयास किया गया। कुशीनगर की समस्या के समाधान के लिए सर अलेक्जेण्डर कनिंघम ने सर्वप्रथम 1860 – 61 में इस स्थल के आस – पास स्थित टीलों का सीमित पैमाने पर उत्खनन कराया तत्पश्चात् 1875 से 1877 तक कार्लाइल ने, 1904–1907 तक वोगेल और 1910–12 के बीच हीरानन्द शास्त्री ने भी इस स्थल पर स्थित विभिन्न टीलों का विस्तृत उत्खनन कराया।

कुशीनगर स्थल के उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं में बड़ी मात्रा में पत्थर, मिट्टी और धातु की मूर्तियाँ, सिक्के, मुहरें, विभिन्न प्रकार के पात्र, चित्रित प्रस्तरखण्ड, काष्ट स्तम्भ, नक्काशीदार ईंटे प्रमुख हैं। यहाँ से प्राप्त मूर्तियों में अधिकांश मिट्टी तथा पत्थर की बनी हैं। विभिन्न मूर्तियों में बुद्ध तथा वोधिसत्व की प्रतिमाएं प्रमुख हैं। एक मूर्ति माया देवी की और एक सारिपुत्र की हैं। इनके अतिरिक्त पौराणिक देवताओं,

एक ही संस्कृति से सम्बन्धित हैं। उल्लेखनीय हैं कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक युगीन संस्कृति (एन0बी0पी0) से सम्बन्धित स्थल नदियों या बड़े तालाबों के किनारे स्थित हैं। परवर्ती एन0 बी0 पी0 और कुषाण काल के अधिकांश स्थल नदियों से दूर तालाबों, पोखरों आदि के किनारे स्थित दिखायी देते हैं। कुषाण काल के बाद के स्थल आन्तरिक क्षेत्रों में प्रायः स्थित दिखायी पड़ते हैं जो संभवतः जनसंख्या के दबाव के कारण हुआ हैं।

कौशाम्बी के समीपवर्ती क्षेत्रों में हुए पुरातात्विक अनुसंधानों से जार्ज एरडसी ने यह निष्कर्ष निकाला कि गंगा के मैदान में 700 ई0 पूर्व के पहले के स्थल प्रायः ग्रामीण स्वरूप के हैं औंर नदियों के तट पर ही स्थित हैं लेकिन 700 ई0 पूर्व के बाद राजनीतिक सत्ता के केन्द्र स्वरूप नगर स्थल मिलने लगते हैं। द्वितीय शताब्दी ई0 पूर्व के आते – आते आवासों की स्थिति विकसित अवस्था का द्योतन करने लगती है।

बड़े आकार का नगरीय केन्द्र और उसकी परिधि में, सामरिक महत्व के क्षेत्रों में, उससे छोटे आकार के केन्द्र ग्राम्य क्षेत्रों में कुछ छोटे–छोटे ग्रामों के रूप में आवास। यह आवास व्यवस्था मौर्य, शुंग और कुषाण कालों में लगभग एक जैसी रही। ऐतिहासिक और आरम्भिक ऐतिहासिक स्थलों की अधिकता से प्रमाणित होता है कि इस काल में जनपद अधिक सघनता से आबाद रहा। अधिकांश वर्तमान गाँवों में इस युग की पुरासम्पदायें बिखरी हैं। इनके संरक्षण, सम्यक विवेचन, अंकन तथा प्रकाशन के लिए जन जागरण की आवश्यकता हैं।

सन्दर्भ–सूची

मौलिक ग्रन्थ

संस्कृत

अमरकोश — अमर सिंह, भाषा टीकाः रामस्वरूप, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1905

अर्थशास्त्र — कौटिल्य,सं0 आर0 शामशास्त्री, मैसूर, 1919

अपराजितपृच्छा — भुवनदेव, गायकवाड़ ओरिएण्टल, बड़ौदा,1950

अष्ठाध्यायी — पाणिनी, सं0 वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल, बनारसी दास, बनारस

दिव्यावदान — सं0 पी0 एल0 वैध, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा,1959

पद्म पुराण — गुरूमण्डल ग्रन्थमाला सं0 18, कलकत्ता,1957–59

ब्रह्म पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस बाम्बे, शक सं0 1857

बृहतसंहिता — बराहमिहिर, सरस्वती प्रेस कलकत्ता, 1880

बुद्धचरित — अश्वघोष, टीकाः सूर्यनरायण चौधरी, 2 वाल्यूम, बनारस, 1942

मनुस्मृति — गोपाल शास्त्री नेने (सं0), वाराणसी, 1935

महाभारत — गीता प्रेस, गोरखपुर, 1956

महाकाव्य — पतंजलि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1935

मत्स्य पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1895

भागवत पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0 स0 2010

रघुवंश — सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रन्थावली, काशी, वि0 सं0 2001 (द्वि0 सं0)

रामायण — वाल्मिकी, नारायण स्वामी (सं0) मद्रास 1933

लिंगपुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

वायु पुराण — खेमराज जी, कृष्णदास, वेंकटेश्वर स्ट्रीट प्रेस, कल्याण, बम्बई, 1810

वराह पुराण — (अनु0) अभिभूषण भट्टाचार्य, रामनगर, वाराणसी, 1923

विष्णु धर्मोत्तर पुराण प्रियबल शाह (सं0), बडौदा, 1958

शतपथ ब्राह्मण मोती लाल शर्मा एवं अन्य, राजस्थान वैदिक तत्व शोध संस्थान, जयपुर, 1958

शिव पुराण वेंकटेश्वर, प्रेस, बम्बई 1965 वि0 सं0

संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी मोनियर विलियम्स, मोतीलाल, बनारसी दास, जवाहर नगर दिल्ली, 1973

हर्षचरित बम्बई संस्करण, बम्बई।

हरिवंश पुराण चित्रशाला प्रेस, पूना, 1936

<u>प्राकृत–</u>

कल्पसूत्र भद्रबाहु, विजयसूर्योदय सूरि, बारसासूल प्रकाशक समिति, सूरत, गुजरात, 1980

तीर्थवन्दन संग्रह (सम्पा0) डा0 विद्याधर जोहरापुरकर , जैन संस्कृति रक्षक संघ,सोलापुर प्र0 सं0 1965

विविध तीर्थकल्प जिनप्रभसूरि, मुनि जिनविजय, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, गं0 10, शान्ति निकेतन, पश्चिम बंगाल, 1934

पालि–

अंगुत्तर निकाय (मूल) सं0 भिक्षु जगदीश काश्यप, बिहार राजकीय पालि प्रकाशन मण्डल, महाविहार नालन्दा, पटना, 1960

जातक अट्ठकथा आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1946

दीघनिकाय (हि0 अ0) राहुल सांकृत्यायन एवं जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध विहार परिषद्, लखनऊ, द्वि0 सं0 1919

दीपवंश ओल्डेन वर्ग संस्करण

महावंश श्रीधर वासुदेव, नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा, पटना, 1971

मिलिन्दपन्हो मूल व हिन्दी टीका, वाराणसी, 1979।

मज्झिम निकाय अनु0, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, प्र0 सं0 1922

विनयपिटक (हि0 अ0) राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1935

सुतनिपात भाग 1–2 (मूल एवं हि0 अनु0), भिक्षु धर्मरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1951

संयुक्त निकाय भिक्षु जगदीश काश्यप, भिक्षु धर्मरक्षित, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1954

सुमंगल विलासिनी (प्र0 भाग) टीका दीघनिकाय, अट्ठकथा, प्रो0 महेश तिवारी, नवनालन्दा महाविकार, नालन्दा, पटना, 1974

सुत्तनिपात परायणवग्ग (हि0), महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1951

आधुनिक ग्रन्थ–

अग्रवाल, डी0 पी0, 1984 *द आर्क्यालाजी आफ इण्डिया,* नई दिल्ली

अग्रवाल, वासुदेव शरण, 1966 *भारतीय कला,* वाराणसी

अवस्थी, रामाश्रय, 1966 *खजुराहो की देव प्रतिमाएं,* आगरा

आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट 1904–05, 1905–06, 1906–07, 1910–11, 1911–12,

इण्डियन आर्क्योलाजी :ए रिव्यू 1962–63, 1973–74, 1981–82, 1982–83, 1984–85

इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1902 वाल्यूम xxxi सं0 सर रिचार्ड कारनेक टेम्पुल,एजुकेशन, सोसायटी प्रेस बम्बई

उपाध्याय, भरतसिंह, 1961 *बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल,* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (प्रथम संस्करण)

उपाध्याय, वासुदेव, 1972 *मूर्ति विज्ञान,* वाराणसी

एलेक्जेण्डर, इ0 वी0, 1881	*स्टैटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज,* गोरखपुर
कनिंघम, ए0, 1924	*एन्सियण्ट ज्यॉग्राफी आफ इण्डिया,* कलकत्ता।
1972	*आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया,* एनुअल रिपोर्ट, भाग 1, 1862–63–64–65 भाग, 18, 1875–76, 1876–77 भाग 22, 1877–78–79–80 (पुनर्मुद्रित) वाराणसी
कुक, डब्ल्यू0, 1896	*द ट्राइब्स एण्ड कास्टस आफ द नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध,* वाल्यूम 1–4, कलकत्ता
1950	आर्कियोलाजी इन इण्डिया, उ0 प्र0, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली
काला, सतीशचंद्र, 1950	*टेराकोटा फिगरीन्स फ्रॉम कौशाम्बी,* इलाहाबाद
क्रेमरिश, स्टेला, 1981	*इण्डियन स्कल्पचर,* दिल्ली
कुमार स्वामी , 1929	*शिल्परत्न, त्रिवेन्द्रम* संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम
कुमार स्वामी, ए0 के0 1913	*आर्ट्स एण्ड क्राफ्टस आफ इण्डिया एण्ड सीलोन,* लंदन।
कुशवाहा, रमाकान्त, 1993	*देवरिया जनपद का प्रतीकात्मक अध्ययन,* शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्व विद्यालय।

खेतान, भगवती प्रसाद, 1992 *महावीर निर्वाण भूमि पावा, एक विमर्श,* वाराणसी

गिरी, कपिलदेव, 1970 *महावीर की निर्वाण भूमि पावाः एक विमर्श,* वाराणसी।

ग्रोवर, बी0 एल0 एण्ड यशपाल, 1990 *आधुनिक भारत का इतिहास,* एक नवीन मूल्यांकन, नई दिल्ली।

गाइल्स, एच0 ए0 (तृ0 सं0) 1959, *ट्रेवेल्स आफ फाहयान, रटलेज एण्ड केगन वाल लिमिटेड,* लन्दन

घोष, ए0, 1989 *एन इन्साइक्लोपीडिया आफ इण्डियन आर्क्यालाजी,* इण्डियन कौसिल आफ हिस्टारिकल रिसर्च, नई दिल्ली।

चौधरी, बी0 एन0, 1969 *बुद्धिस्ट सेण्टर्स इन एन्सियन्ट इण्डिया,* कलकत्ता।

चतुर्वेदी, शैलनाथ, 1985 एडवांस आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चैल्कोलिथिक कल्चर्स टू द हिमालयन तराई : इक्सकैवेश एण्ड इक्सप्लोरेशन इन द सरयूपार रीजन आफ उ0 प्र0, *मैन एण्ड इनवायरमेण्ट* ।

जैन, हीरालाल, 1962 *भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान,* भोपाल।

जेम्स लेगे, 1972 *द ट्रेवेल्स आफ फाहयान,* दिल्ली

जे0 तकाकुसू, 1896 *ए रेकार्ड आफ द बुद्धिस्ट रिलिजन,* आक्सफोर्ड, लन्दन ।

जायसवाल के0 पी0, 1978 *हिन्दू पालिटी,* भाग 1, बंगलौर प्रिटिंग प्रेस पब्लिकेशन कम्पनी लिमिटेड, बंगलौर , पंचम संस्करण।

सी0, वी0, लिब्ज, 1841	*जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी* वैपिस्ट मिशन आफ बंगाल प्रेस, कलकत्ता
जोशी, एन0 पी0, 1989	*ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम* लखनऊ, भाग–2
टर्नर, जी0, 1838	*बुद्धिस्ट एनल्स,* जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी नं019, कलकत्ता।
मित्रा, देवला, 1971	*बुद्धिस्ट मानुमेण्ट्स,* कलकत्ता
दे, नन्दलाल, 1990	*द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एन्सियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया* (द्वितीय संस्करण) बाम्बे।
त्रिपाठी, आर0 एस0, 1937	*हिस्ट्री आफ कन्नौज,* वाराणसी
1942	*हिस्ट्री आफ एन्सियन्ट इण्डिया,* वाराणसी
दत्त, एन0 एण्ड वाजपेयी, के0 डी0, 1956	*डेवलपमेण्ट आफ बुद्धिज्म इन उत्तर प्रदेश,* पब्लिकेशन ब्यूरो, उ0 प्र0 शासन लखनऊ,
धर्मरक्षित, भिक्षु,(बुद्धाब्द) 2493	*कुशीनगर का इतिहास,* कुशीनगर
नगराज, मुनि, 1969	*महावीर एवं बुद्ध की सामयिकता,* आत्माराय एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
नाहर, पूर्णचंद्र,1927	*जैन लेख संग्रह* भाग 3, कलकत्ता।
नाहटा, भंवरलाल,1973	*महातीर्थ पावापुरी (एक विश्लेषण)* जैन श्वेताम्बर सेवा समिति, कलकत्ता
नियोगी, आर0, 1959	*द हिस्ट्री आफ गहडवाल डायनेस्टी,* कलकत्ता

नागर, मालती, 1989 — हन्टर गैदरर्स इन ऐन अग्रेरियन सेटिंग द नाइनटीन्थ सेन्चुरी सिचुएशन इन दी गंगा प्लेन्स, *मैन एण्ड इनवायरमेण्ट,* वाल्यूम 131

नेविल एच0 आर0 — *गोरखपुर गजेटियर,* वाल्यूम xxxi, द डिस्ट्रीक्ट जेटियर्स आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध , गवर्नमेण्ट प्रिंट्रिग प्रेस, इलाहाबाद।

नेशफील्ड, 1983 — *ब्रीफ रिव्यू आफ द कास्ट सिस्टम आफ द नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध ,* कलकत्ता

पार्जिटर, एफ0 ई0 — *पुराण टैक्टस आफ द डायनेस्टीज आफ द कलिएज,* आक्सफोर्ड

पाण्डेय, राजबली, 1946 — *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास,* गोरखपुर

पाण्डेय, गोविन्दचंद, 1963 — *बौद्ध धर्म का विकास,* लखनऊ

पाण्डेय, रामप्रसाद, 1942 — *गोरखपुर जिले का इतिहास,* प्रयाग

पाण्डेय, जे0 एन0, 1997 — *पुरातत्व विमर्श,* इलाहाबाद

पूर्वांचल की पुरासम्पदा, 1979 — पुरातत्व विभाग, उ0 प्र0 राज्य संगठन, लखनऊ

प्रेमी, नाथूराम, 1956 — *जैन साहित्य और इतिहास* (द्वि0 सं0) बम्बई

पाण्डेय, हरिनन्दन, 1919 — *द मल्लाज आफ पावा,* जर्नल आफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, वाल्यूम, पटना

पाटिल, डी0 आर0, 1957 — *कुशीनगर,* दिल्ली (प्र0 सं0)

पार्जिटर, एफ0 ई0, 1962 *एन्सियण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन,* दिल्ली

फ्लीट, जे0 एफ0, 1888 *इन्स्क्रिप्सन आफ द अर्ली गुप्ता किंग्स एण्ड देयर सक्सेसर, कार्पस इन्स्क्रिप्सन इण्डिकारम,* कलकत्ता।

फारूकी–मोहम्मद, अब्दुल गफूर, 1901 *सजर–ए–शदाब, गोरखपुर।*

फाजिलनगर–सठियांव उत्खनन (संक्षिप्त परिचय)1979 प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरात्तव विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

फ्यूहरर, ए0, 1891 *द मानुमेण्टल एण्टीक्विटी एण्ड इंस्क्रिप्सन इन द नार्थ वेस्ट एण्ड अवध,* दिल्ली से 1969 में पुनर्मुद्रित।

बी0 सुब्बाराव, 1958 *द पर्सनालिटी आफ इण्डिया* (द्वि0 सं0) बड़ौदा।

बुद्धमित्र, भिक्षु, 1999 *भगवान बुद्ध के समकालीन अनुयायी तथा बौद्ध केन्द्र* गोरखपुर

बील, सैमुअल, 1906 *बुद्धिस्ट रिकार्ड आफ वेस्टर्न वर्ल्ड,* लन्दन

भण्डारकर, डी0 आर0 लिस्ट आफ इन्स्क्रिप्सन्स इन नार्दर्न इण्डिया इन ब्राह्मी एण्ड इट्स डेरीवेटिव स्क्रिप्ट्स फ्राम एबाउट 200 ए0 सी0, *एपिग्राफिका इण्डिका,* वाल्यूम 19–23 ।

मललसेकर, जी0 पी0, 1938 *डिक्शनरी आफ पालि प्रापर नेम्स,* जानमुरे, अलमार्टा स्ट्रीट, डब्लू, लंदन

माण्टगोमरी, मार्टिन, एम0 आर0, 1976 — *हिस्ट्री एण्टीक्विटीज टोपोग्राफी एण्ड स्टैटिस्टिक्स आफ इस्टर्न इण्डिया,* वाल्यूम II, भागलपुर, गोरखपुर कास्मों पब्लिकेशन, दरियागंज, दिल्ली।

मेहता, मोहनलाल, 1970 — *प्राकृत प्रापर नेम्स,* दो भाग, एल0 डी0 इन्स्टीटयूट, अहमदाबाद।

मोतीचंद्र, 1953 — *सार्थवाद,* बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना।

मुखर्जी, जे0 एन0, 1956 — *द डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी* कलकत्ता

मिश्र, इन्दूमती, 1972 — प्रतिमा विज्ञान, भोपाल

मजूमदार, आर0 सी0, 1951 — *द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पिपुल* वैदिक एज वाल्यूम 1, बम्बई।

1964 — *एन्सियण्ट इण्डिया,* दिल्ली

मिश्र, वी0 डी0, 1977 — *सम ऐस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालाजी,* इलाहाबाद

मिश्र, आर0 जी0, 1919 — *कसिया रेलिक्स,* द जरनल आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज, हिस्टाारिकल सोसायटी, लखनऊ

मिश्र, अवनीश चंद्र, 1993 — *द स्टडी आफ द आर्कियोलाजी ऑफ देवरिया डिस्ट्रिक्ट ।*

मैकडोनेल, ए0 एण्ड कीथ ए0 बी0, 1958 — *वैदिक इंडेक्स, ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्टस,* 2 वाल्यूम, वाराणसी

मैकिण्डल, 1960 — *एन्सियण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थानीज एण्ड एरियन,* कलकत्ता।

मिश्र, योगेन्द्र, 1973	श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक निर्वाण भूमि पावा, *प्राचीन पावा,* गोरखपुर
याकोबी, हरमन, 1844	सैक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट वाल्यूम xxxi, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, वेयर हाउस लंदन,
राय, उदय नारायण, 1965	*प्राचीन भारत में नगर और नगर जीवन,* इलाहाबाद।
राय, चौधरी, एच0 सी0, 1953	*पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सियण्ट इण्डिया,* कलकत्ता।
रीज डेविडस्, टी 0 डब्ल्यू, 1950	*बुद्धिस्ट इण्डिया,* प्रथम भारतीय संस्करण, कलकत्ता।
राव, गोपीनाथ, 1966	*एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी* वाल्यूम 2, पार्ट 1,2, मद्रास
राय, कृष्णदास, 2009 (वि0 सं0)	*भारतीय मूर्तिकला,* काशी
ला, वी0 सी0, 1932	*ज्याग्रफी आफ अर्ली बुद्धिज्म* केगनपालट्रेन्च ट्रबुनर एण्ड कम्पनी, लंदन
1943	*ट्राइब्स इन एन्सियण्ट इण्डिया* , पूना।
1953	*हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ* ऐन्सियण्ट इण्डिया , पूना
लारी, अहमर	*मुख्तसीर तारीख गोरखपुर,* गोरखपुर
लाल, अगने , 1968	*संस्कृत बौद्ध साहित्य में भारतीय जीवन* लखनऊ
विजयेन्द्र सूरि, 1960	*तीर्थंकर महावीर,* बम्बई।

विटले पाल एवं अन्य सं0 1978 — *द हिस्टारिकल एटलस आफ द साउथ एशिया,* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रेस, शिकागो एण्ड लंदन।

मिश्र, वी0 एन0, 1990 — द कन्जर्स–ए–हंटिंग गैदरिंग कम्युनिटी आफ द गंगा वैली, उ0 प्र0 *मैन एण्ड इन्वायरमेण्ट,* वाल्यूम 15 नं0 2।

वाटर्स, थामस, 1904–05 — *आन युवानच्वांग्स इन इण्डिया,* सम्पादित द्वारा टी0 डब्लू रीज डेविडस और एस0 डब्ल्यू0 बुसेल, दो खण्ड, लंदन।

वैशाली अभिनंदन ग्रन्थ, 1985 — वैशाली (बिहार)

वर्मा ठाकुर प्रसाद एवं अन्य (सं0) 1987 — *युग–युगीन सरयू पार* (गोरखपुर परिक्षेत्र का इतिहास) इतिहास संकलन समिति, वाराणसी

विकास पुस्तिका, 2001–2002 — कुशीनगर

विकास के नियोजित कदम, 1996–97 — पडरौना, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग

वरूण, डी0 पी0, 1988 (पुनर्मुद्रित) — गजेटियर आफ इण्डिया, उत्तर प्रदेश , डिस्ट्रिक्ट देवरिया, इलाहाबाद

श्रीवास्तव, बलराम, (सं0) 2021 वि0 सं0 — रूपमण्डन, वाराणसी

श्रीवास्तव, ए0 के0, 1972 — फाइण्ड स्पॉट आफ कुषाण क्वायंस, लखनऊ

श्रीवास्तव, के0 सी0, 1996 — प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद

शर्मा, जी0 आर0, बी0 डी0 मिश्र, डी0 मण्डल और जे0 एन0 पाल, 1980 — *हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलाजी,* वाल्यूम 1 नं0 1 –2, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं

पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,इलाहाबाद।

शर्मा, ब्रह्मदेव, 1954 — *हमारे क्षेत्र के दो सिद्धपीठ,* अशोक प्रिटिंग प्रेस, पडरौना।

शुक्ल , द्विजेन्द्रनाथ, 1956 — *प्रतिमा विज्ञान,* लखनऊ

शास्त्री, नेमिनाथ, 1974 — *तीर्थकर महावीर और उनकी देशना* दिगम्बर जैन विद्वतपरिषद्, सागर, म0 प्र0।

शर्मा, चन्द्रिका प्रसाद, 1998 — *कुशीनगर का भौगोलिक परिदृश्य,* गोरखपुर

शर्मा, रामशरण, 1968 — आस्पेक्टस आफ पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इस्टीटयूशन्स इन एन्सियन्ट इण्डिया, वाराणसी।

शर्मा, आर0 के0 ,1980 — द कल्चर्स एण्ड देयर टाइम्स, दिल्ली

शापेन्टियर, जे0, 1914 — द डेट ऑफ महावीर, इण्डियन एन्टीक्वरी, वाल्यूम XLIII, बाम्बे।

सिंह, सतीशचन्द्र, 1973 — *चेन्जेज इन द कोर्स ऑफ रीवर एण्ड इट्स इफेक्ट्स आन द अरबन सेटलमेंट इन द मिडिल गैंगेज प्लेन,* नेशलन ज्योग्राफिकल सोसायटी आफ इण्डिया, बी0एच0यू0,वाराणसी।

स्मारिका, 2000 — बुद्ध स्मृति पर्व, कुशीनगर

सरकार, एच0 — *स्टडीज इन अर्ली बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर आफ इण्डिया*

स्मिथ, वी0ए0, 1930 — *हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन,* आक्सफोर्ड।

सिंह, अजीत, 1991	*खजुराहों की शैव एवं शाक्त प्रतिमाएँ,* वाराणसी
सरकार, डी0सी0,1965	*सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स : बियरिंग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन,* कलकत्ता।
सरावगी, कन्हैयालाल, 1972	पावा समीक्षा, अशोक प्रकाशन, छपरा (बिहार)।
सांकृत्यायन, राहुल, 1949 (द्वि0सं0)	*साहित्य निबन्धावली,* इलाहाबाद
सामाजार्थिक समीक्षा, 2001–2002	जनपद कुशीनगर
सांख्यिकीय पत्रिका, 2001	जनपद कुशीनगर
सिन्हा, बी0पी0	*द कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ बिहार*
सिंह, कृपाशंकर	*लैंड यूज एण्ड न्यूट्रिशन इन पडरौना तहसील,* देवरिया (अप्रकाशित)
स्मिथ, वी0ए0, 1924	*अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया,* लन्दन (चतुर्थ संस्करण)
स्मिथ, वी0ए0, 1896	*द रिमेन्स नियर कसिया, इन द गोरखपुर डस्ट्रिक्ट,* इलाहाबाद
सिन्हा, के0के0, 1959	*एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*
हल्टज, ई0, 1969	*कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इडिकारम्,* वाल्यूम1, इण्डोलाजिकल बुक हाउस वाराणसी।
हैवेल, इ0बी0, 1972	*ए हैण्डबुक आफ द इण्डियन आर्ट,* वाराणसी
हेग, डब्लू, 1958	*कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया,* वाल्यूम, 3, दिल्ली।

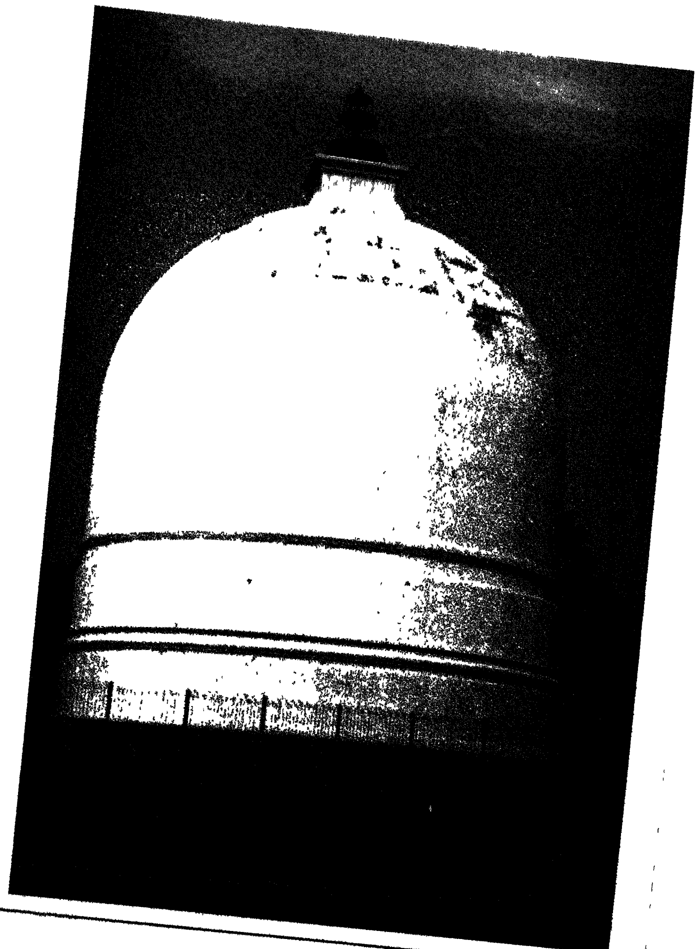

छायाचित्र संख्या:– 1. मुख्य स्तूप, कुशीनगर।

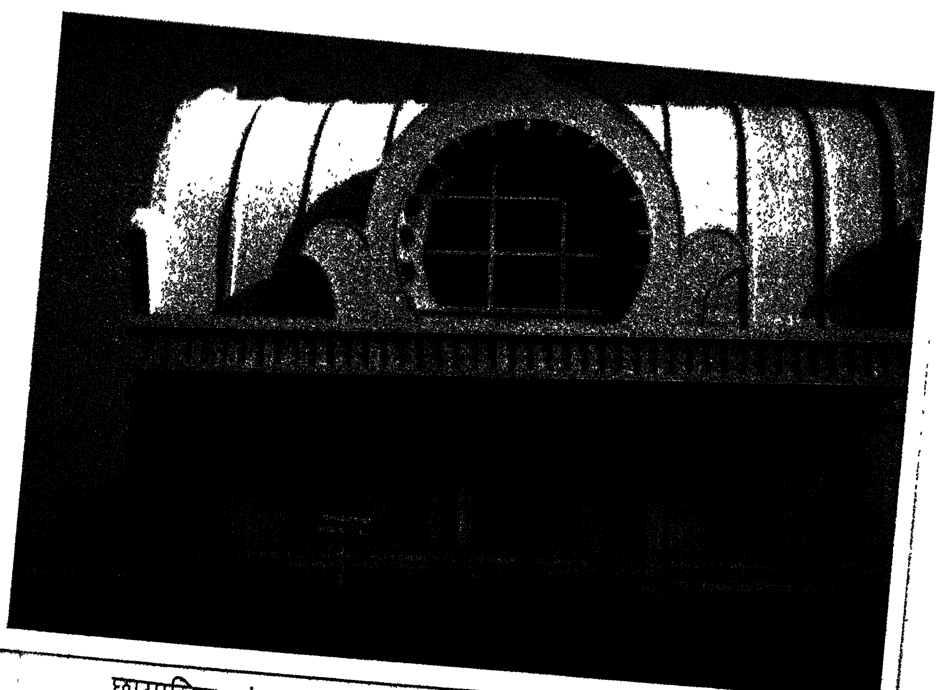

छायाचित्र संख्या:– 2. बुद्ध का महापरिनिर्वाण मंदिर, कुशीनगर।

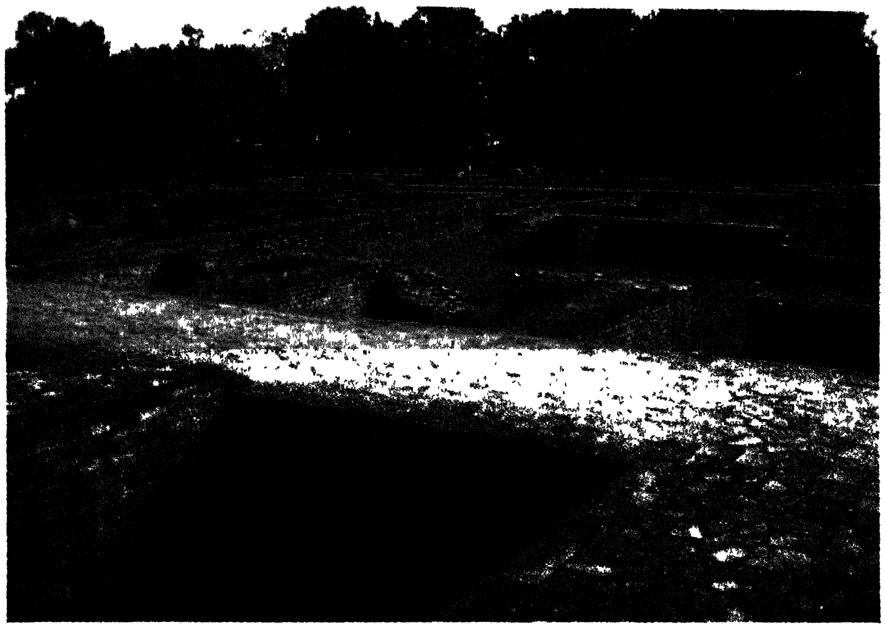

छायाचित्र संख्या:– 3. कुशीनगर के खण्डहर का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्या:– 4. बुद्ध की भूमि स्पर्श मुद्रा में प्रतिमा, कुशीनगर।

छायाचित्र संख्याः– 5. रामाभार स्तूप, कुशीनगर।

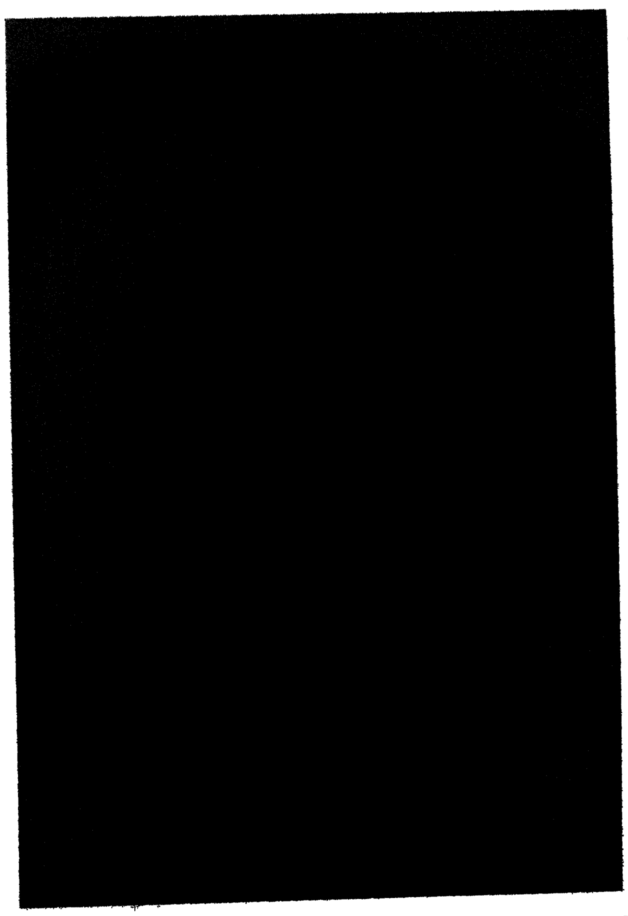

छायाचित्र संख्याः– 6. तीन स्तूप युक्त मिट्टी की मुहर (राजकीय बौद्ध संग्रहालय

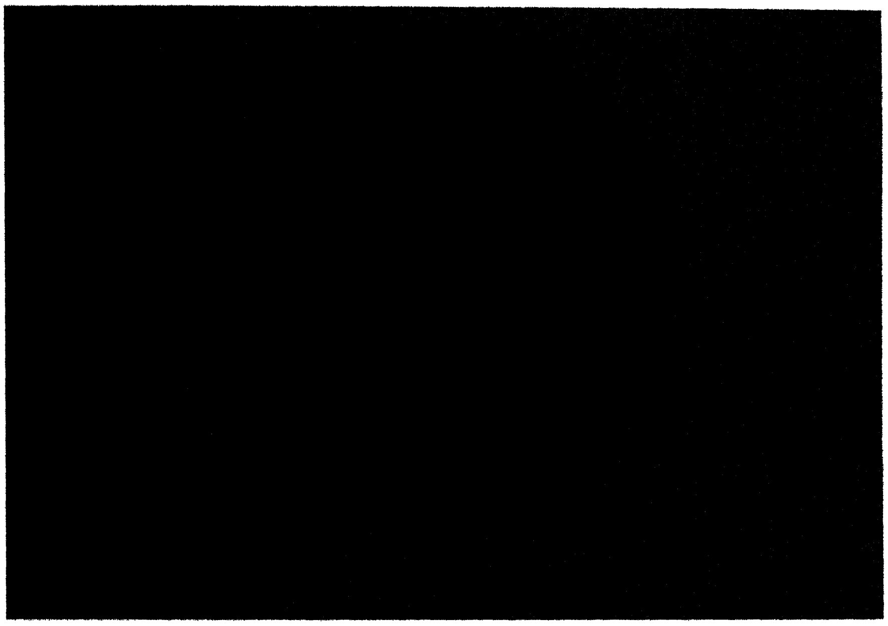

छायाचित्र संख्या:— 7. डिजाइनदार ठप्पा (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

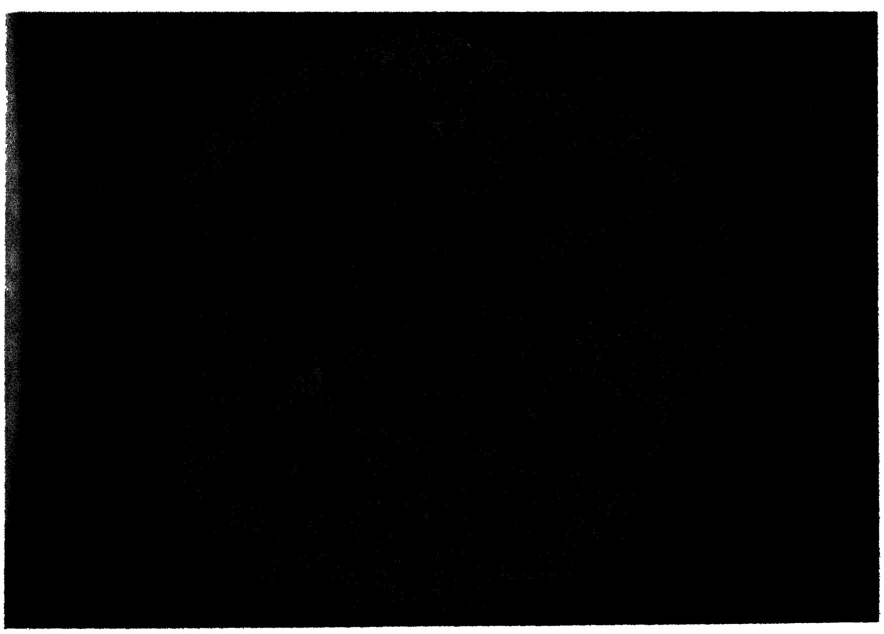

छायाचित्र संख्या:— 8. ध्यानावस्थित बुद्ध की मुहर (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

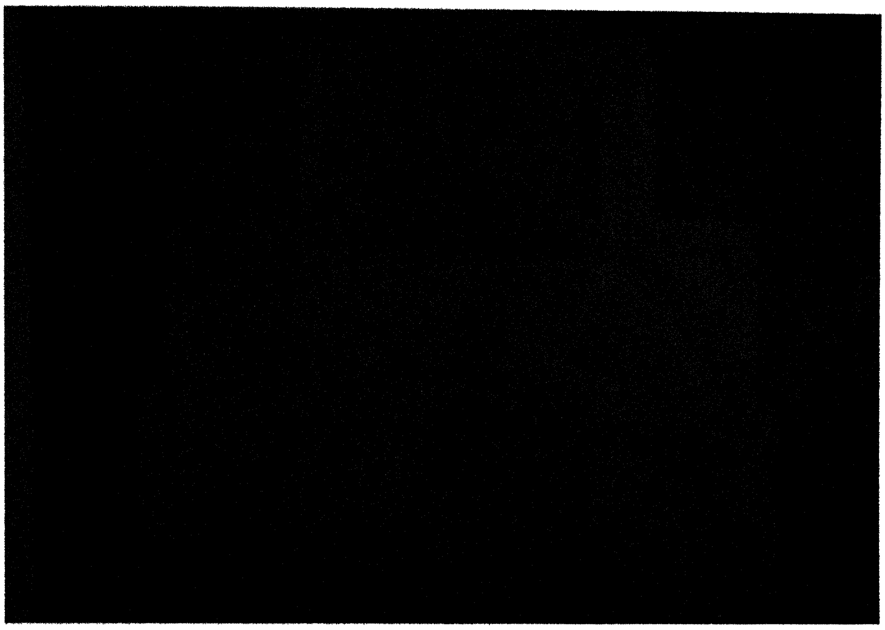

छायाचित्र संख्याः— 9. तीन ईंटों से निर्मित ध्यानी उपासक (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः— 10. काले पत्थर की सिररहित भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

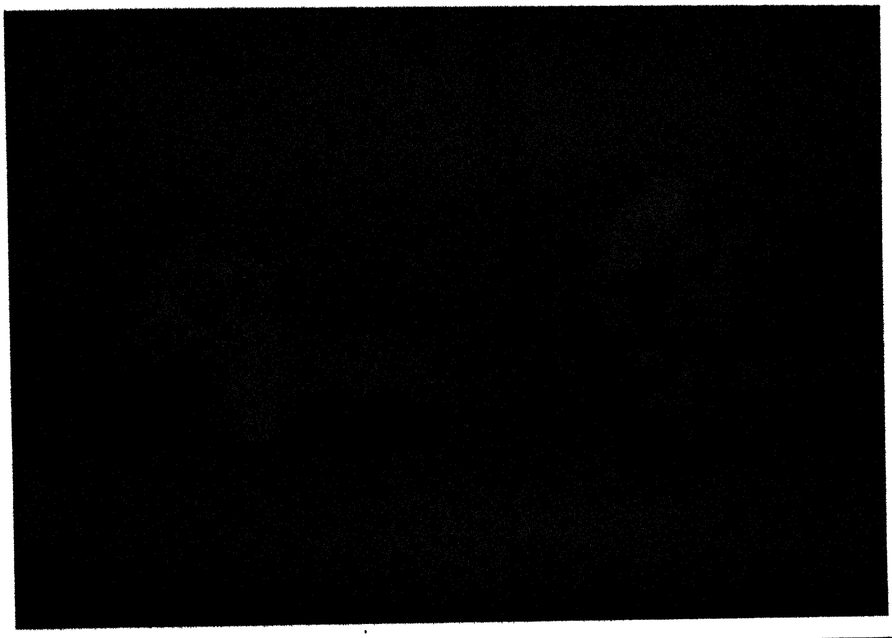

छायाचित्र संख्या:– 11. हस्ति एवं अश्व की मृण्मूर्ति (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

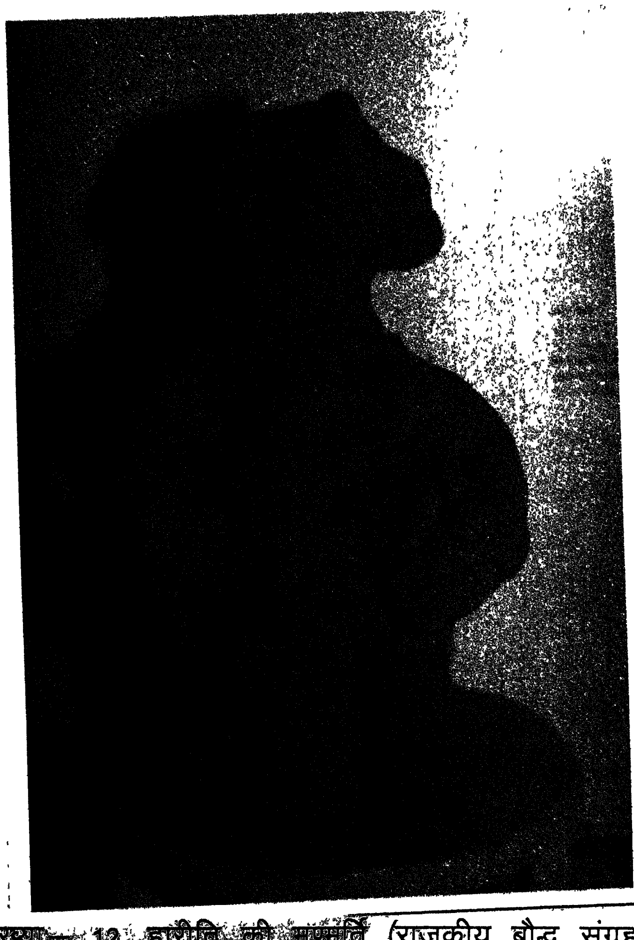

छायाचित्र संख्या:– 12. हारीति की मृण्मूर्ति (राजकीय बौद्ध संग्रहालय कुशीनगर के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः– 13. महापरिनिर्वाण विहार अभिलिखित मुहर (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

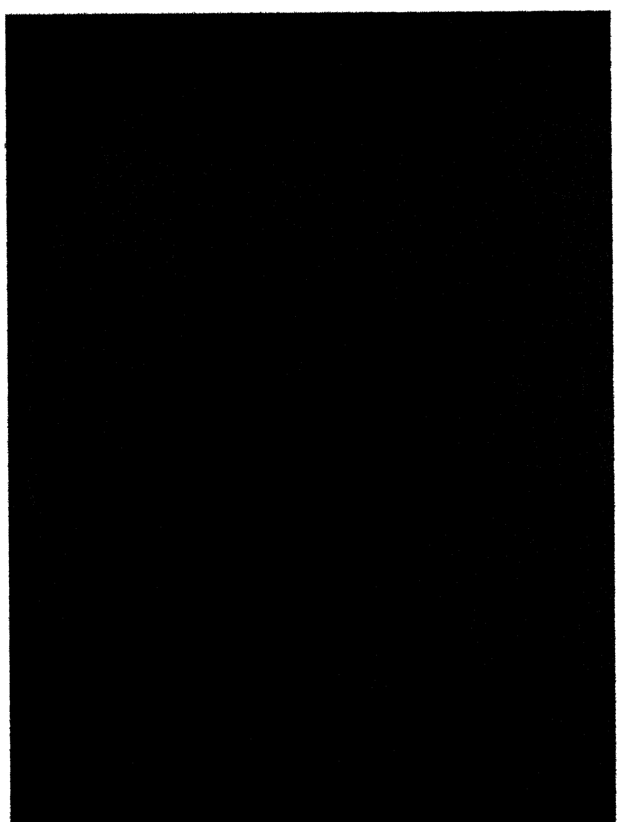

छायाचित्र संख्याः– 14. मुकुटबन्धन विहार अभिलिखित मिट्टी की मुहर जिसमें शीर्ष पर बुद्ध की जलती हुई चिता तथा प्रार्थनारत महाकश्यप को दिखाया गया है। (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

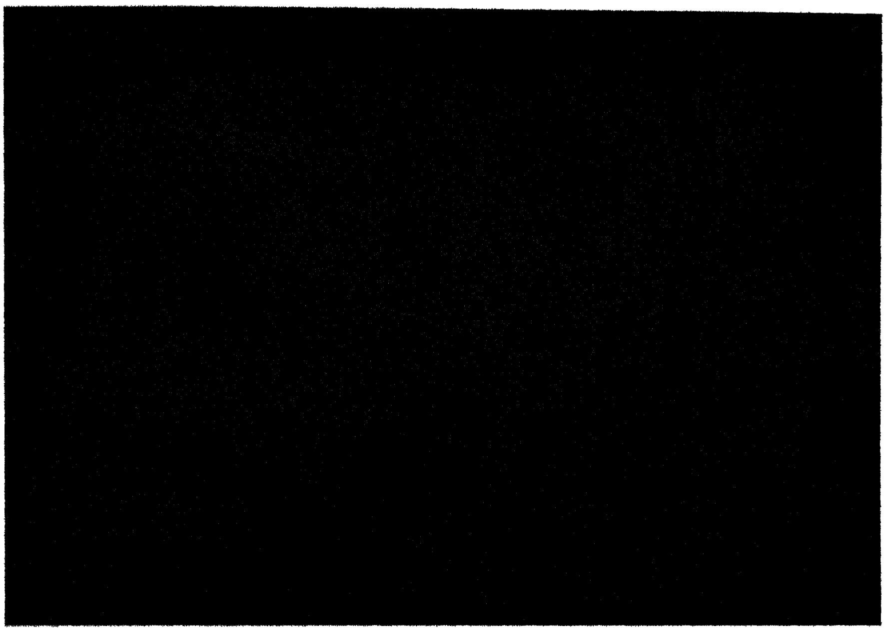

छायाचित्र संख्याः— 15. देवी की सेवा करते हुए दासियों की मृण्मूर्ति (सौजन्य से, बुद्धमित्र)।

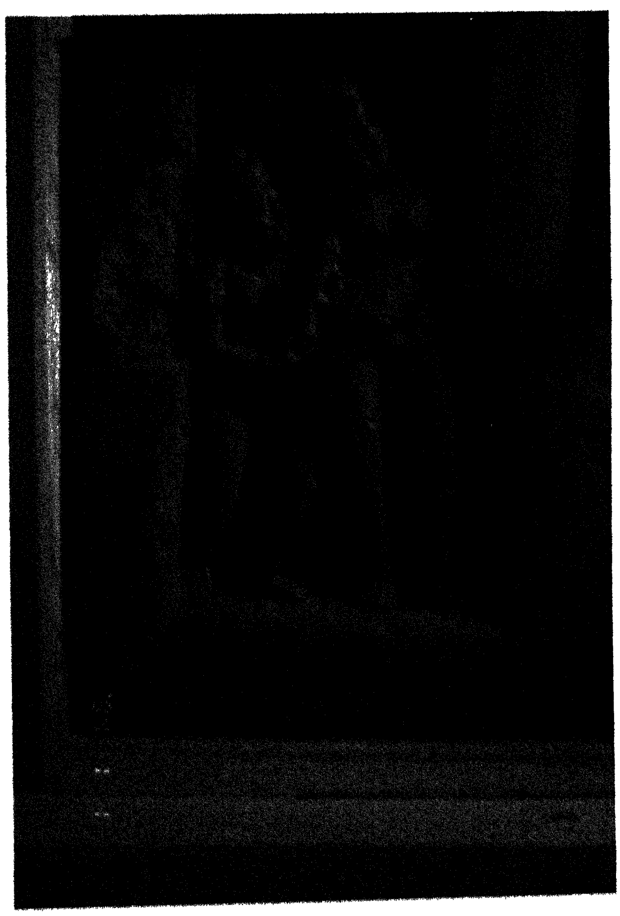

छायाचित्र संख्याः— 16. मिट्टी के फलक पर बुद्ध के जन्म का दृश्य (उत्तर प्रदेश राज्य संग्रहालय, लखनऊ के सौजन्य से)।

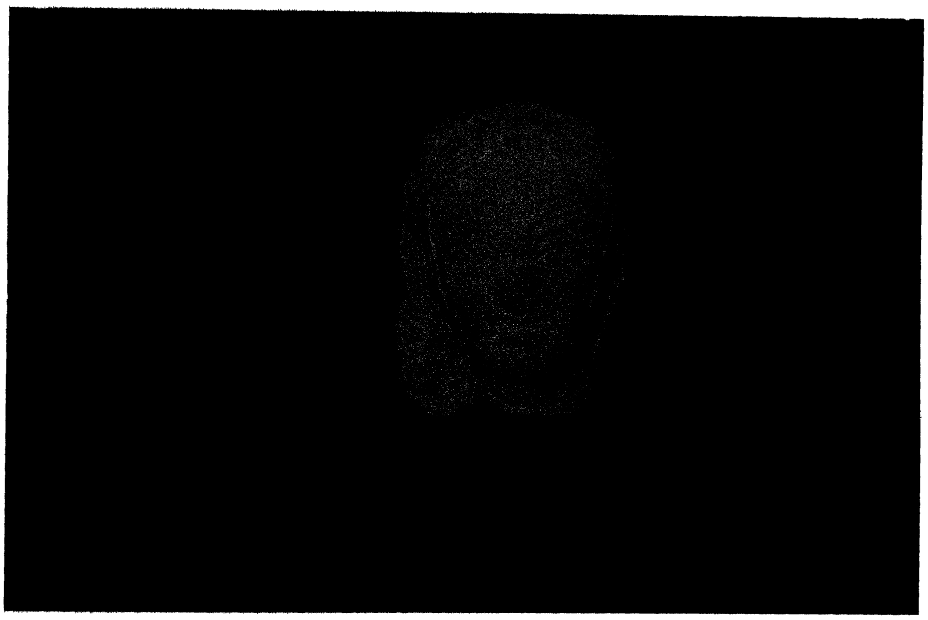

छायाचित्र संख्या:— 17. सठियाँव से प्राप्त नारी की मृण्मूर्ति (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

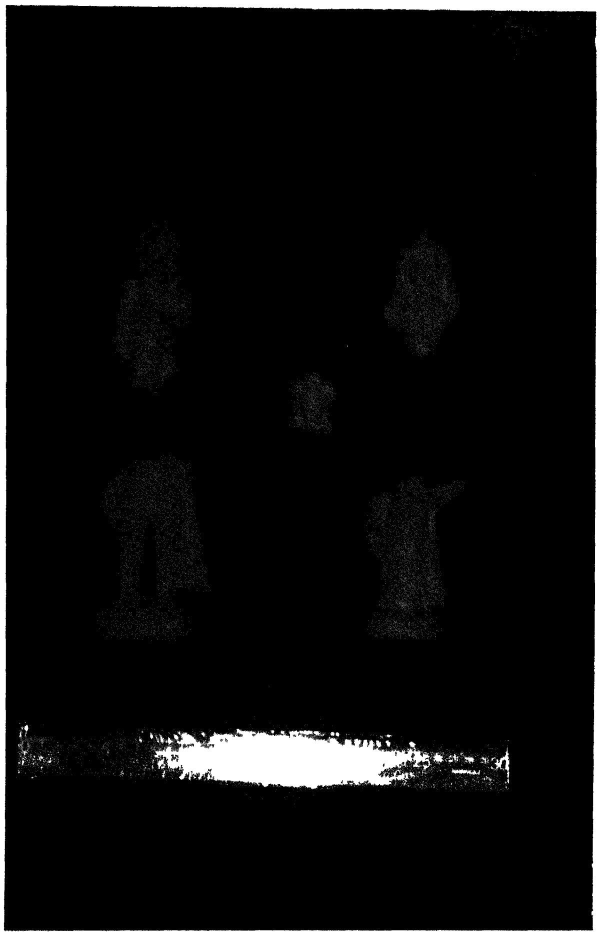

छायाचित्र संख्याः— 18. फाजिल नगर से प्राप्त अलंकरित मृण्मूर्तिया मूर्ति (प्राचीन इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

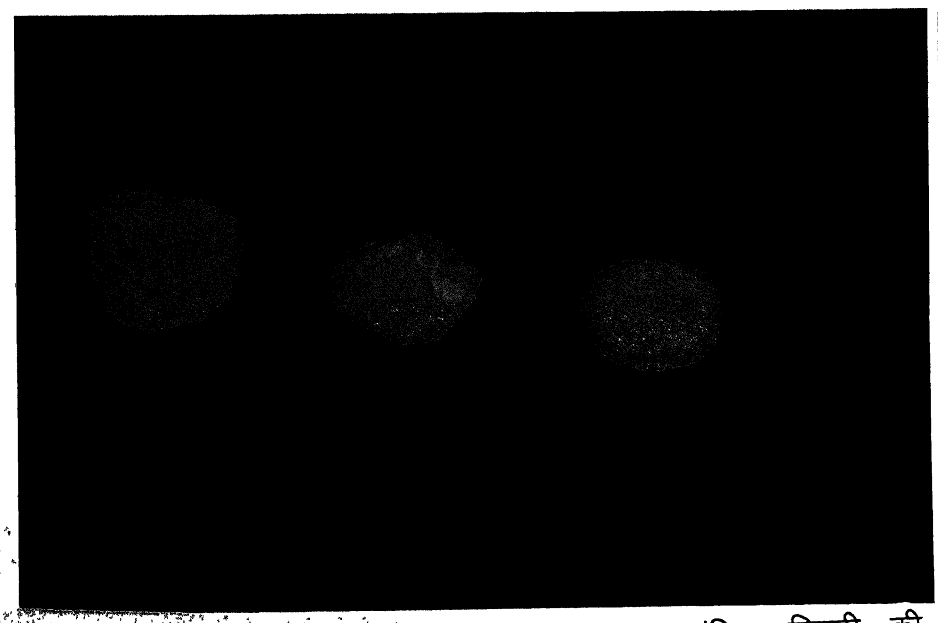

छायाचित्र संख्याः— 19. ब्राह्मी में श्रैष्ठिग्रामाग्रहारस्य अंकित मिट्टी की मुहर, गुप्तकालीन (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

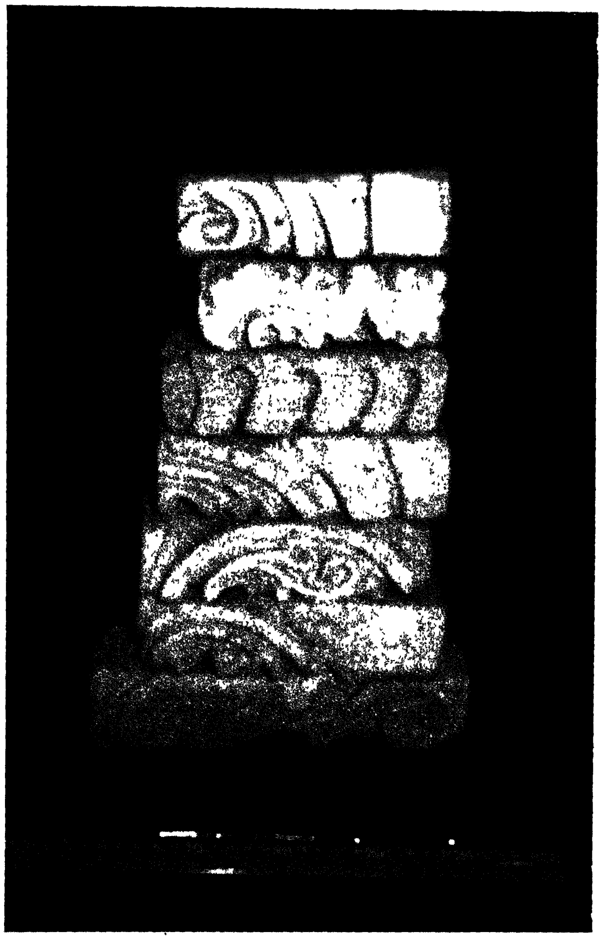

छायाचित्र संख्याः–20. गुप्तकालीन अलंकृत ईंटें उस्मानपुर (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः–21. शक, कुषाण तथा पह्लव कालीन मृण्मूर्तिया (प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)।

छायाचित्र संख्याः– 22. गंगुआ टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्या–23. काले प्रस्तर की उमा–माहेश्वर की आलिंगन मुद्राआ में प्रतिमा।

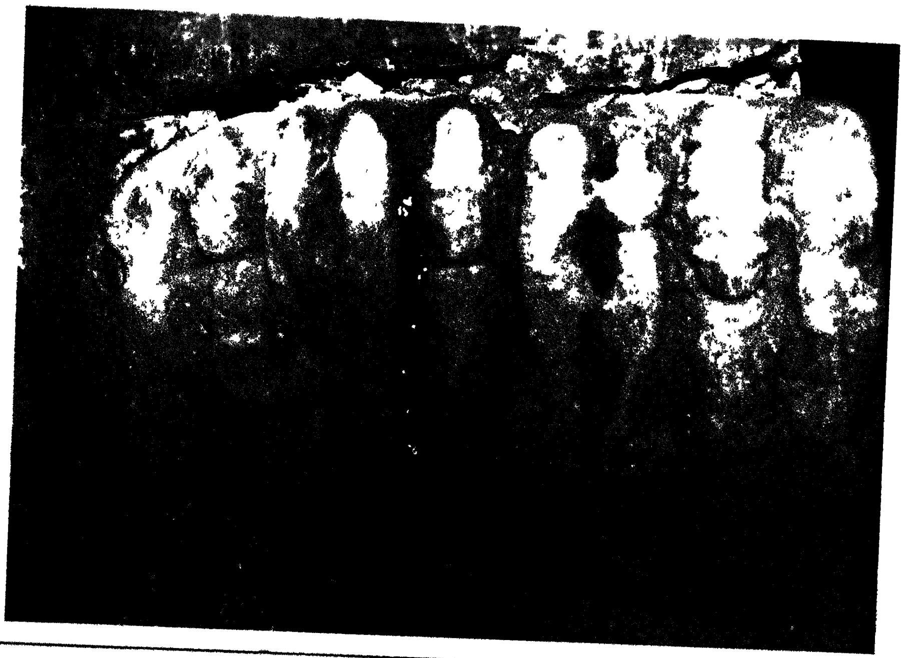

छायाचित्र संख्याः— 24. नवग्रह की खण्डित प्रस्तर प्रतिमा, शिव सरेया।

छायाचित्र संख्याः— 25. काले प्रस्तर की वामन मूर्ति शिव सरेया।

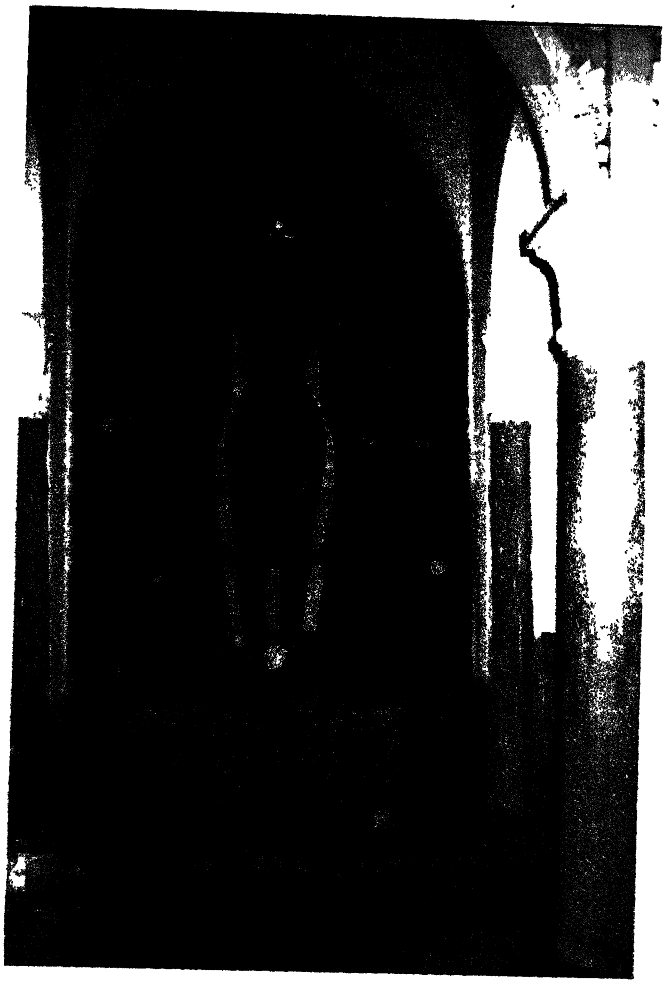

छायाचित्र संख्या:– 26. चतुर्भुजी विष्णु की वैकुण्ठ प्रतिमा, सरेयाँ।

छायाचित्र, संख्या:– 27. मातृ–शिशु की प्रतिमा– सरेयाँ।

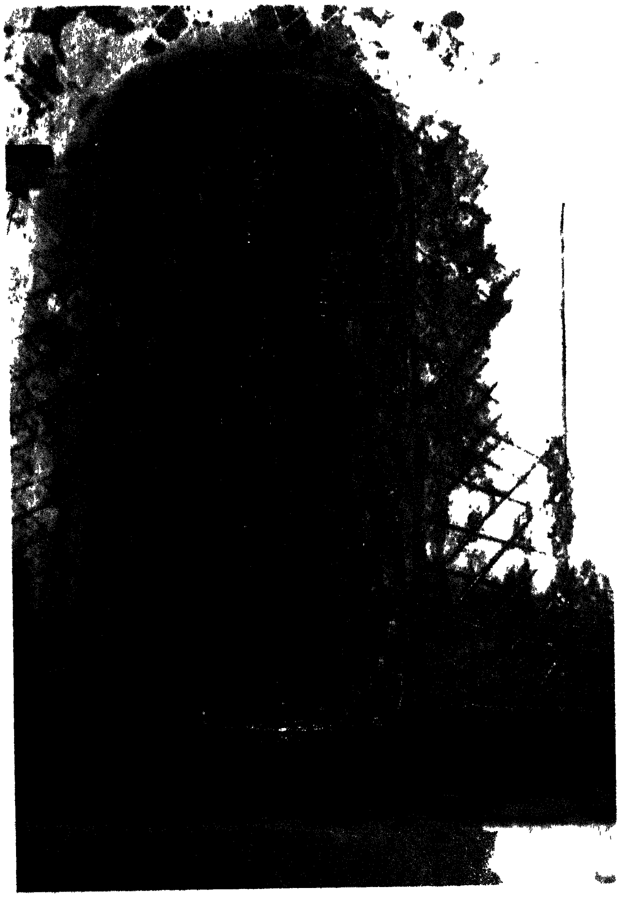

छायाचित्र संख्या:– 28. काले पत्थर की सूर्य प्रतिमा, सियरहा।

छायाचित्र संख्या:– 29. एकमुखी शिवलिंग प्रतिमा, सियरहाँ।

छायाचित्र संख्याः– 30. नृत्यरत चतुर्भुजी गणेश, सियरहाँ।

छायाचित्र संख्याः– 31. माहेश्वर की आलिंगन मुद्रा में प्रतिमा, पुरैना कटेया।

छायाचित्र संख्याः— 32. शिशु को दूध पिलाती स्त्री की प्रतिमा, पुरैना कटेया।

छायाचित्र संख्याः— 33. देवरिया वृत के स्तूपाकार, ईंट निर्मित टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 34. धारमढियाँ टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः– 35. बालुए पत्थर से निर्मित षोडसभुजी गणेश प्रतिमा, उजारनाथ।

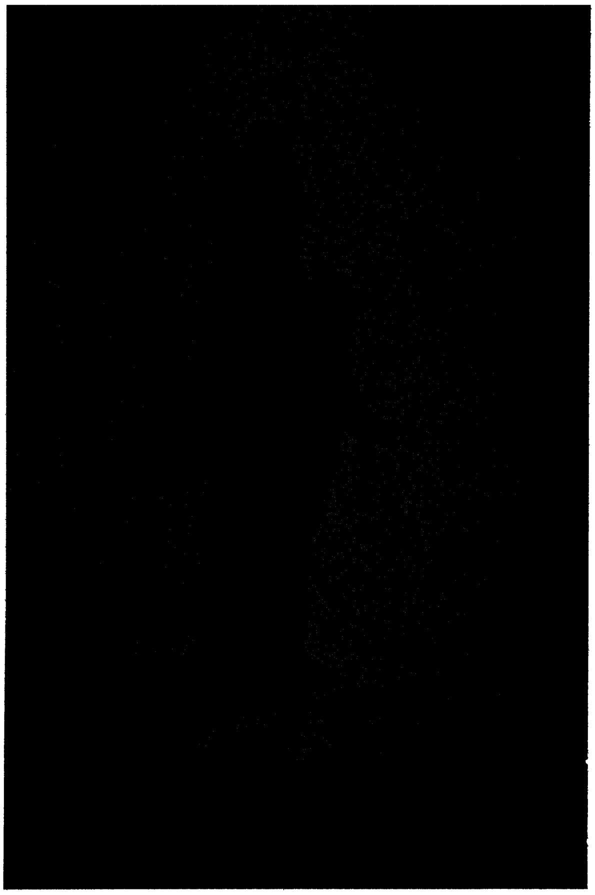

छायाचित्र संख्याः— 36. मंदिर में स्थापित चतुर्भुजी पार्वती की प्रतिमा, उजारनाथ।

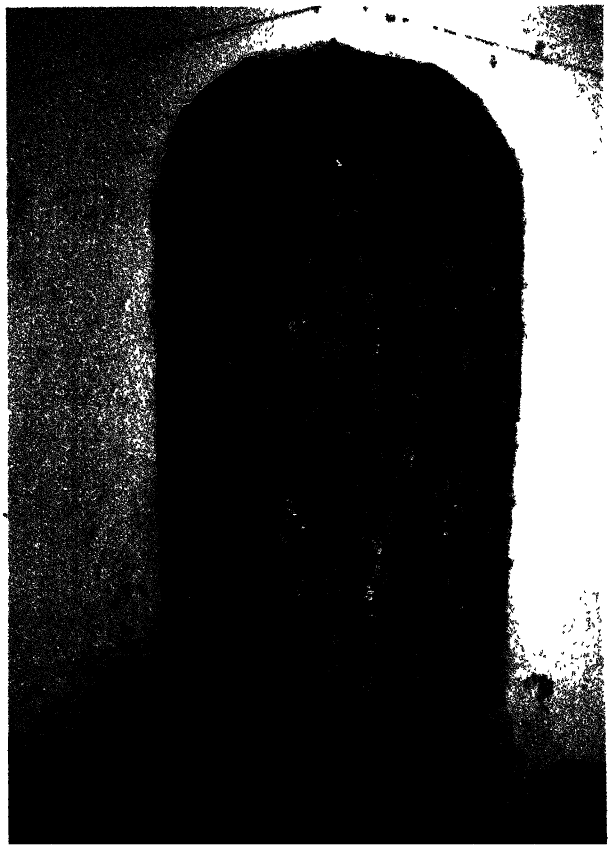

छायाचित्र संख्याः— 37. अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमा, सपही खास।

छायाचित्र संख्याः– 38. बलुआ पत्थर से निर्मित गुप्तयुगीन सूर्य की प्रतिमा, तुर्कपट्टी ।

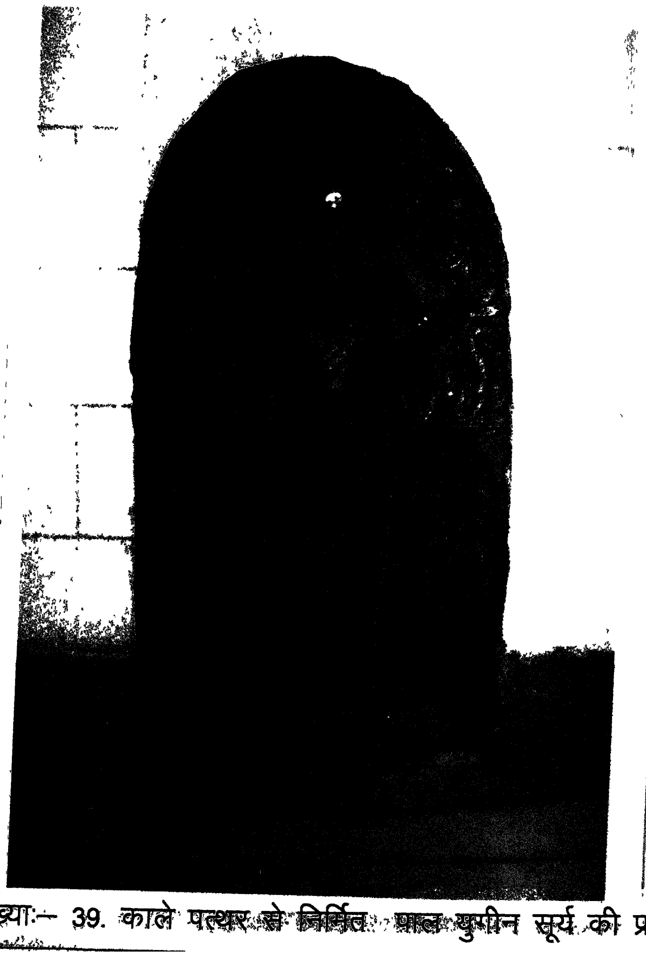

छायाचित्र संख्याः– 39. काले पत्थर से निर्मित पाल युगीन सूर्य की प्रतिमा, तुर्कपट्टी।

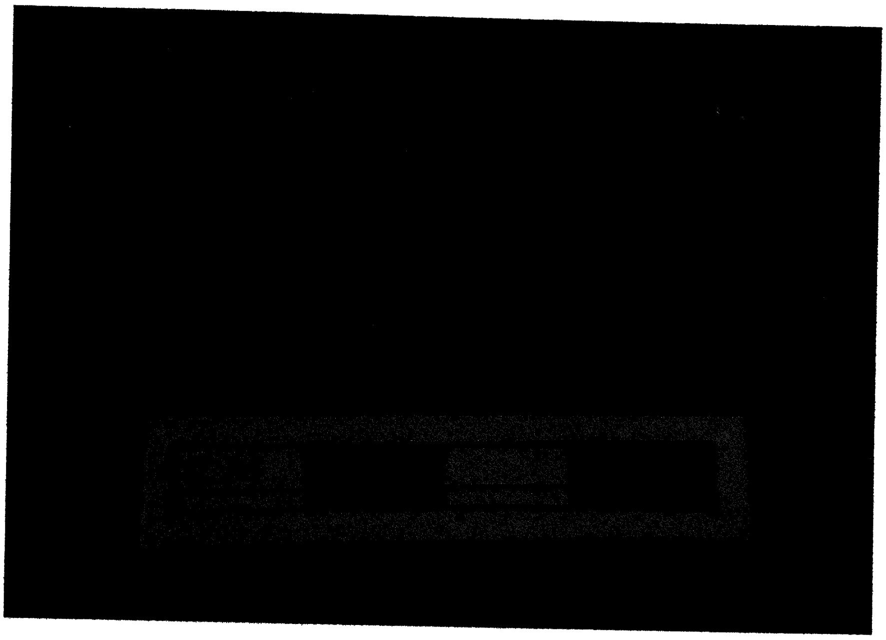

छायाचित्र संख्याः— 40. सपही टड़वाँ से प्राप्त अरबी लेखयुक्त ताम्रसिक्के।

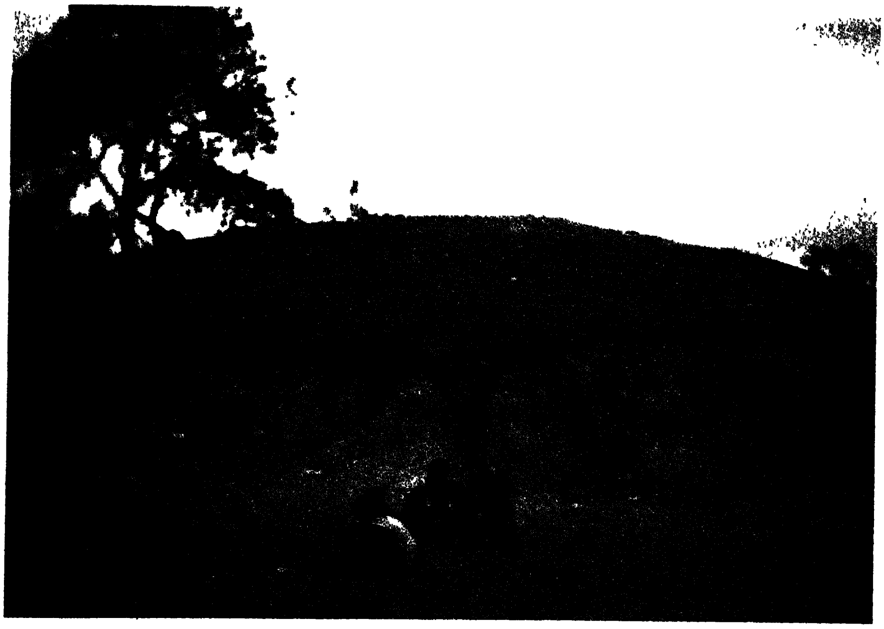

छायाचित्र संख्याः— 41. फाजिलनगर के टीले का विहंगम दृश्य।

छायाचित्र संख्याः— 42. सठियाँव टीले का विहंगम दृश्य।

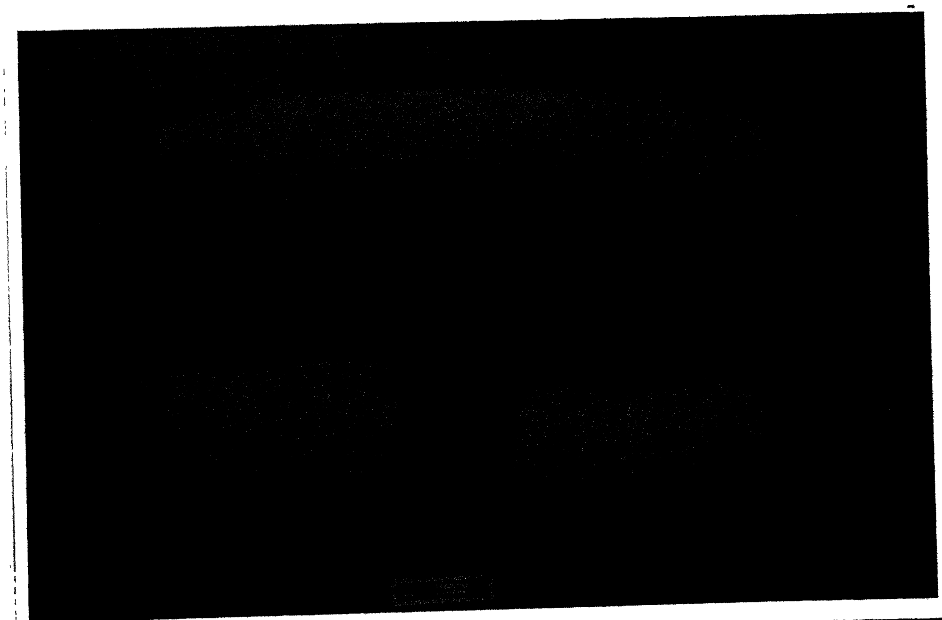

छायाचित्र संख्याः— 43. खाँचेदार मिट्टी का लोढ़ा, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः— 44. अलंकृत, लटकन, नदवाँ।

छायाचित्र संख्याः— 45. अलंकृत, दो कलश नदवाँ।

48

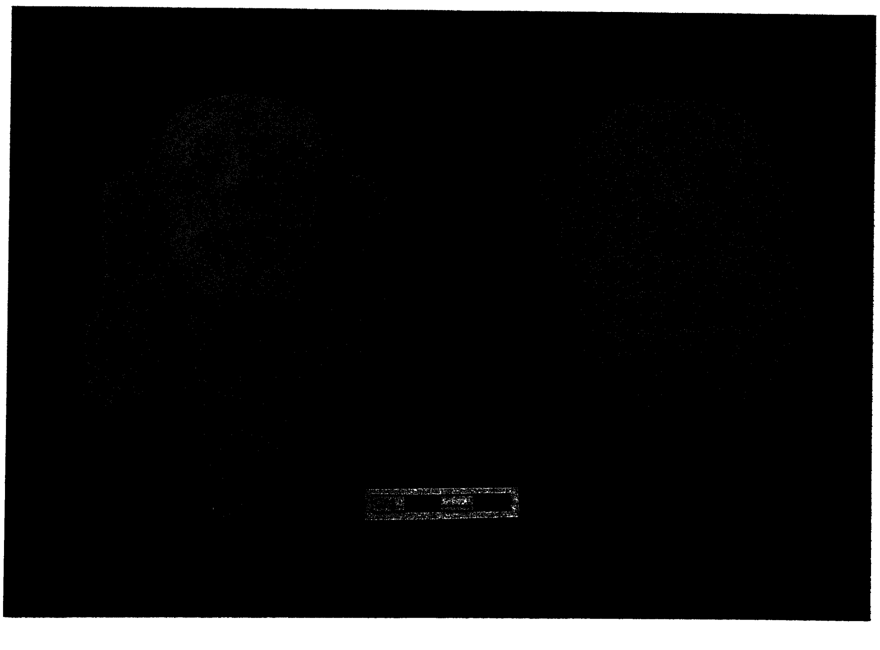

49

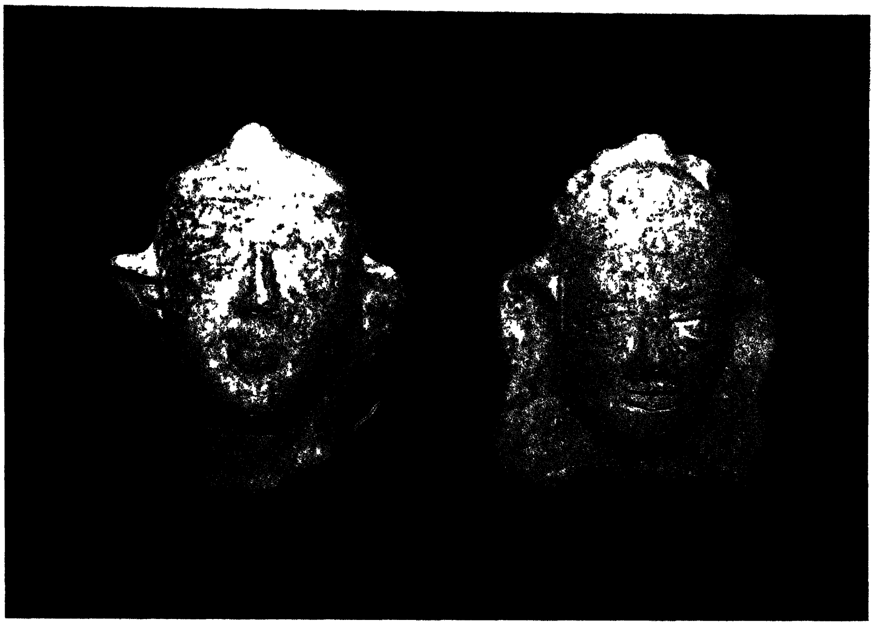

50

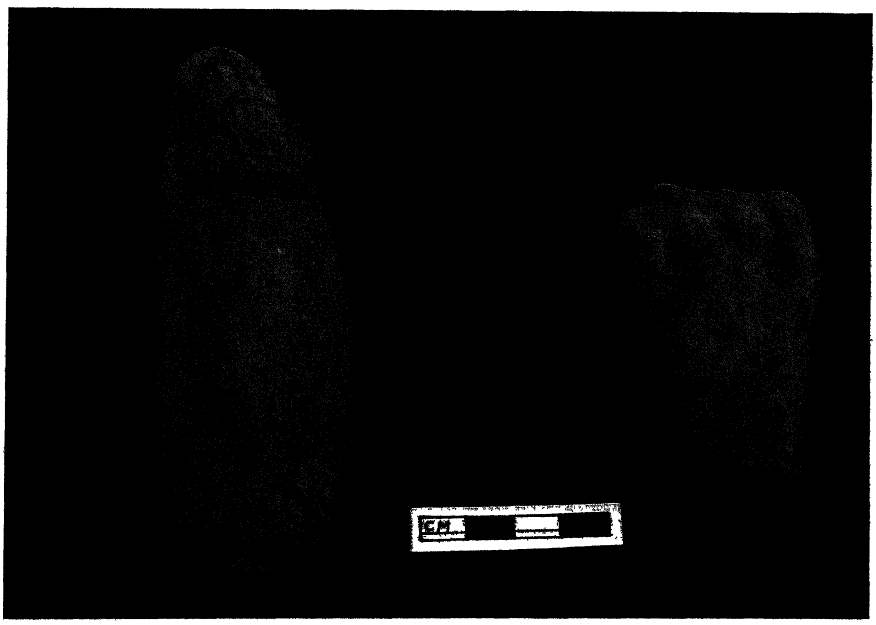

51 (I)

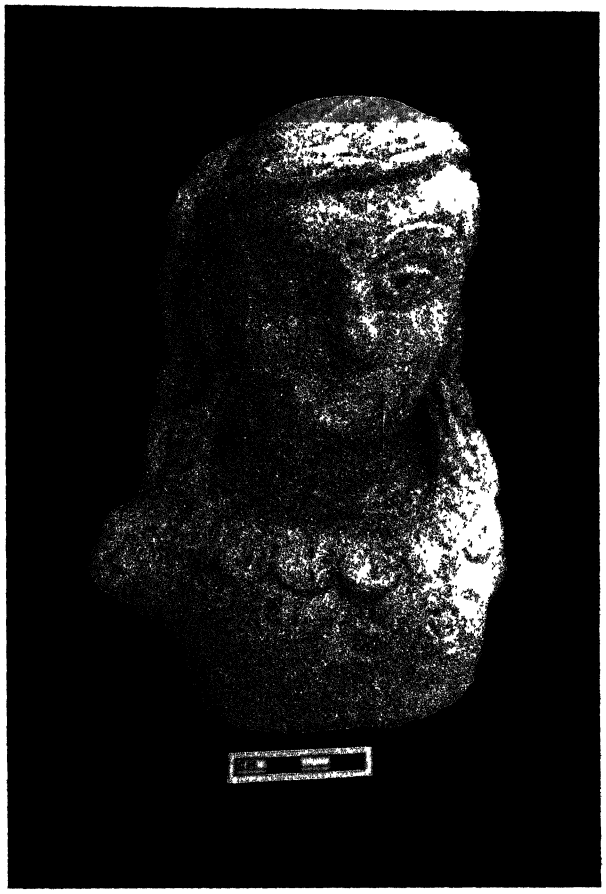

51 (II)

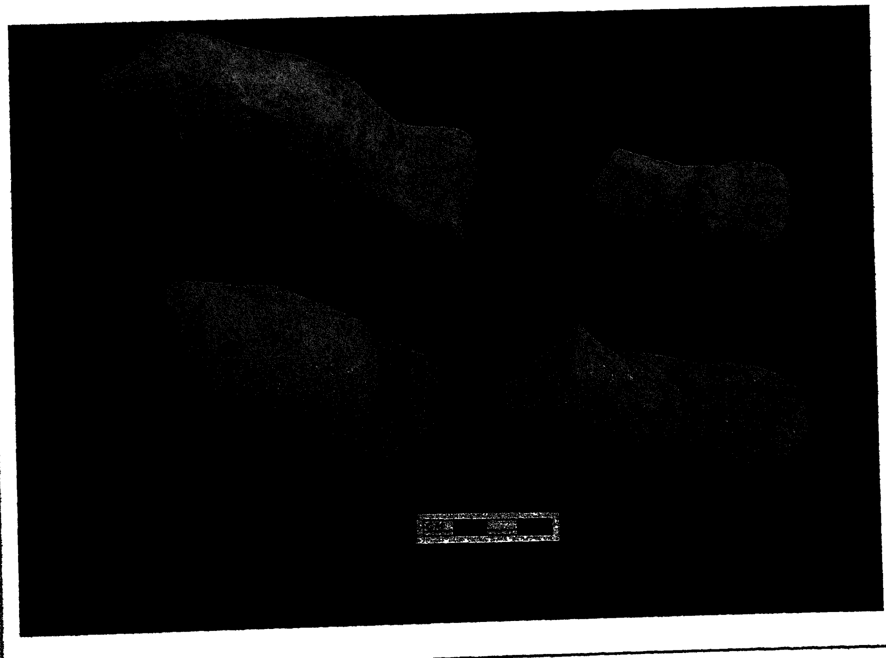

छायाचित्र संख्याः– 52. मृण्मूर्तिया के खण्डित पैर, नदवाँ।

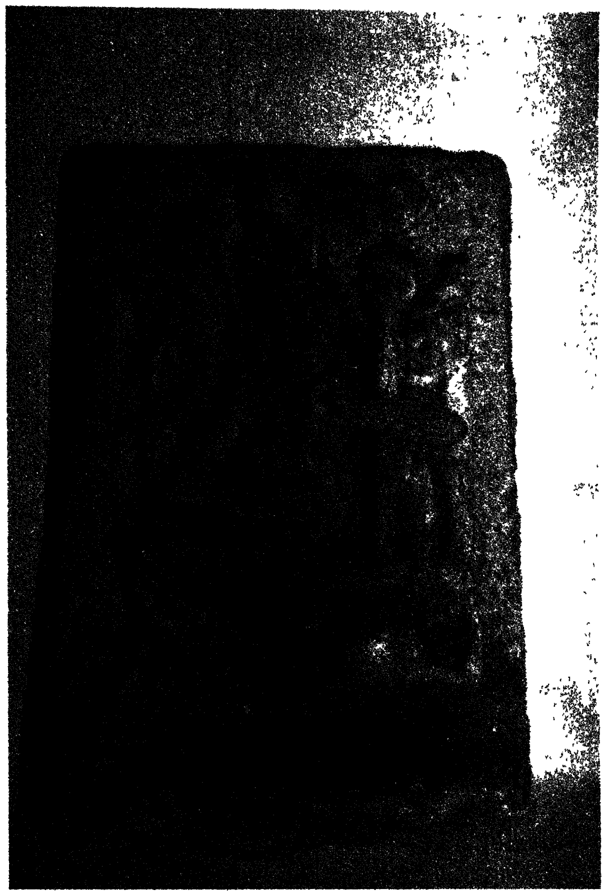

छायाचित्र संख्याः— 53. बलुये पत्थर से निर्मित चामुण्डा देवी की प्रतिमा, बेईली।

छायाचित्र संख्याः— 54. अष्टपदीय वृत्ताकार स्तूप, धनहाँ।

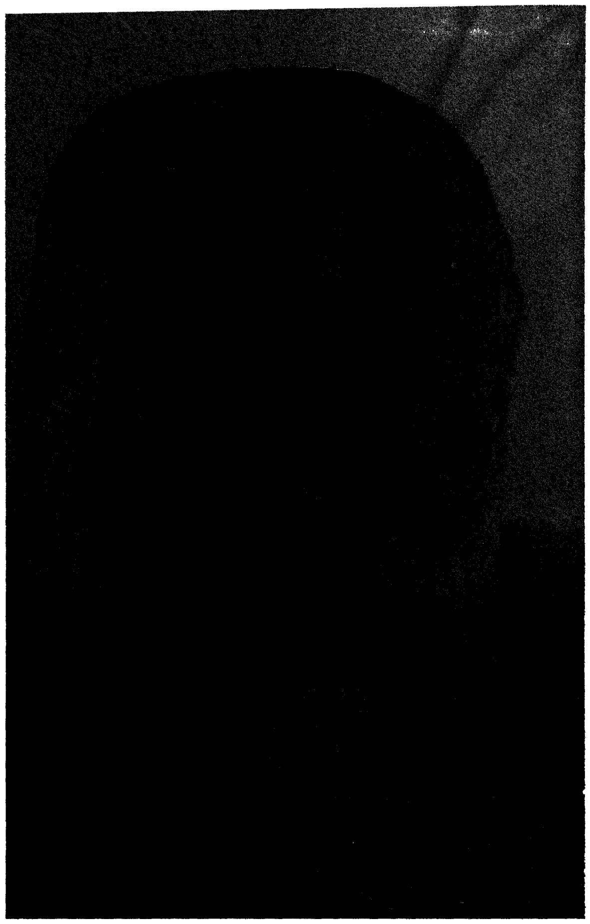

छायाचित्र संख्याः– 55. काले पत्थर की ब्रह्म की मूर्ति, बकुलहर ।

छायाचित्र संख्याः– 56. उस्मानपुर (वीरभारी) के टीले का विहंगम दृश्य ।

छायाचित्र संख्याः– 57. ईंट निर्मित वर्गाकार स्तूप, सुमही बुजुर्ग।

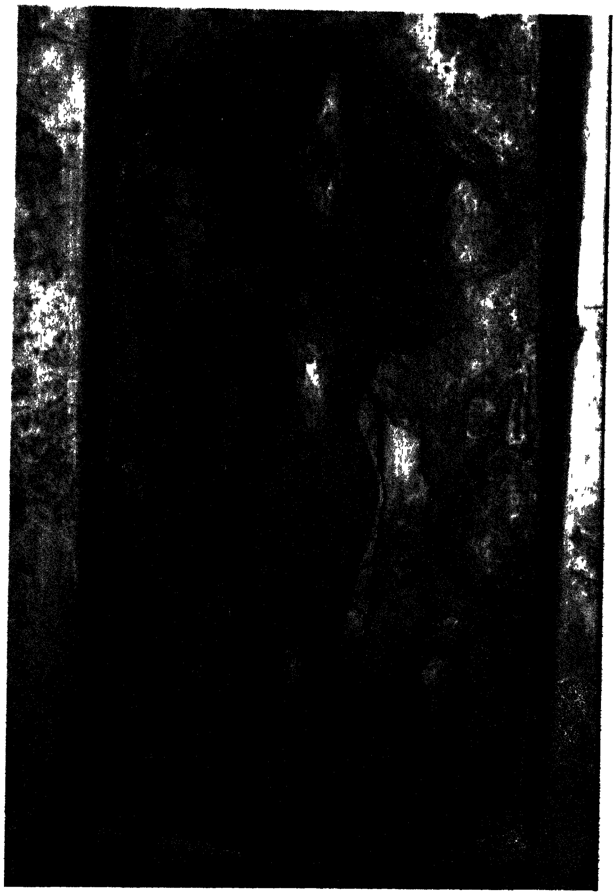

छायाचित्र संख्याः– 58. सूर्य प्रतिमा, छहूँ ।

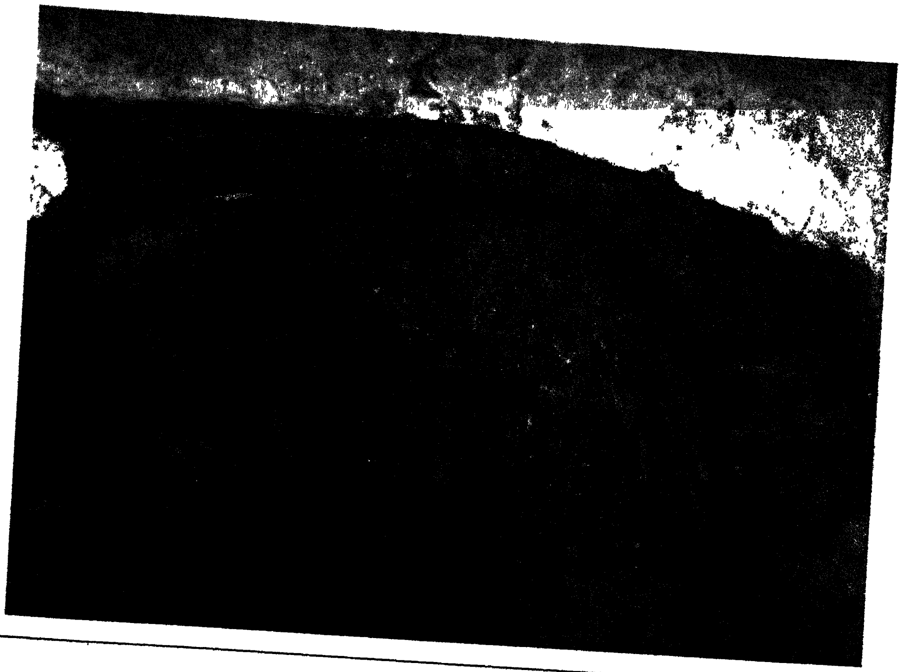

छायाचित्र संख्याः– 59. छः शिशुओं के साथ माँ वारा की प्रतिमा, छहूँ ।

छायाचित्र संख्याः–60. महापरिनिर्वाण स्तूप, कुशीनगर।

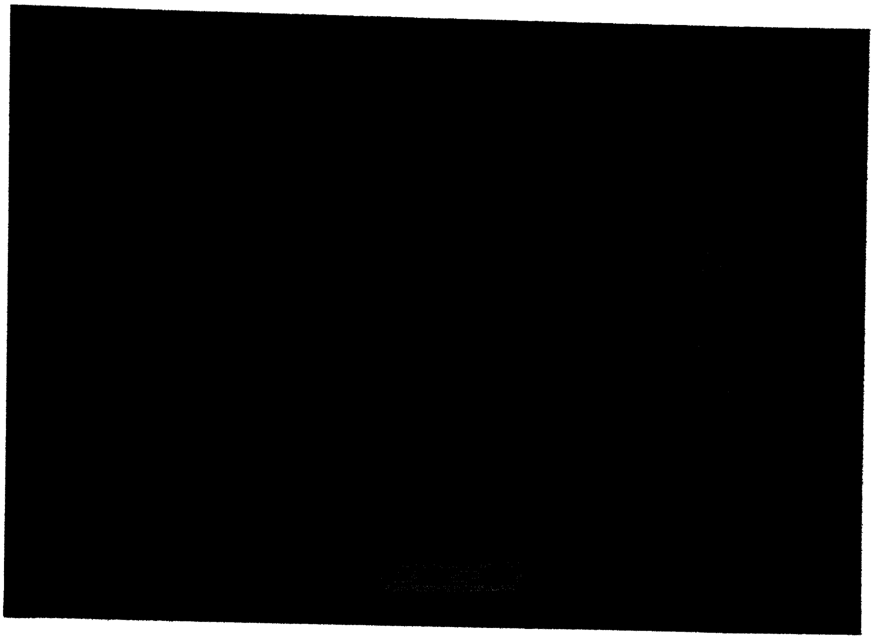

छायाचित्र संख्या:– 61. हत्थायुक्त कड़ाही, खिलौना गाड़ी, स्पिन्कलर पहियाँ, रस्सीछाप घड़े का टुकड़ा, बलडीह।

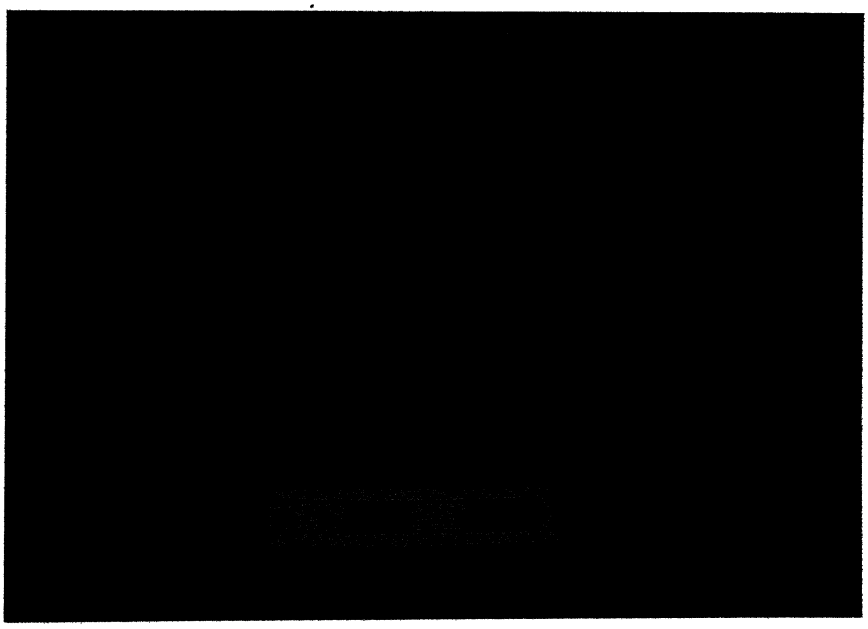

छायाचित्र संख्या:– 62. रस्सी के छाप युक्त मृद्भाण्ड, बलडीहा।

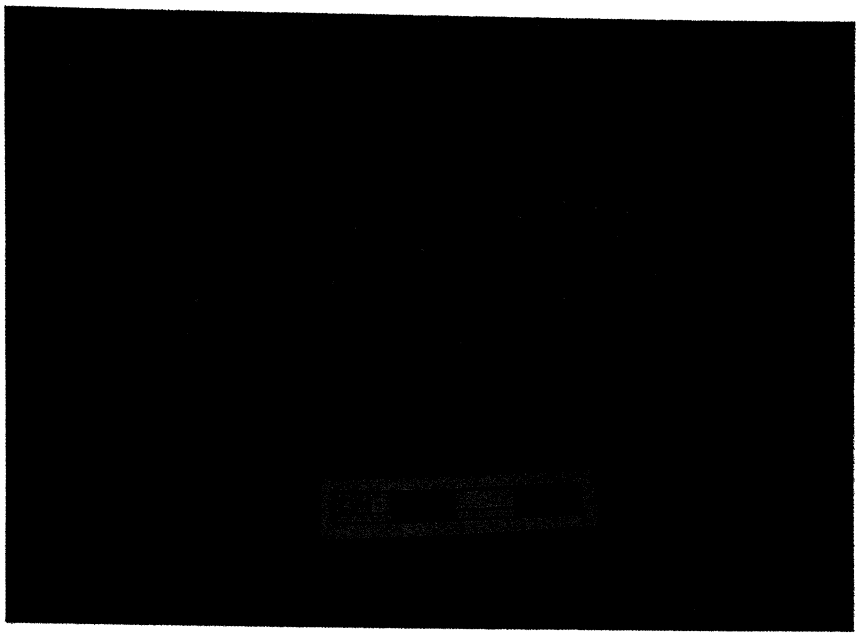

छायाचित्र संख्या:— 63. कैरिनेटेड हाड़ी, वड़गाँव ।

छायाचित्र संख्या:— 64. स्तूपाकार टीला, देवरहा।

छायाचित्र संख्याः– 65. वनमोर्चा से प्राप्त ईंटों से निर्मित चौड़ी दीवारें ।

छायाचित्र संख्याः– 66. पपउर टीले का विहंगम दृश्य ।

The University Library
ALLAHABAD
Accession No. T-993
Call No. 3774-10
Presented by 6955